IMPACT FACTOR 7.012 2023

Year 14 (01) Vol. XXVI
February 2023

ISSN : 0976-8149
UGC List No. 48216
I.S.O. 9001-2015

Manglam

Half Yearly Journal of Humanities & Social Sciences

मङ्गलम्

मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

A Peer Reviewed 'Refereed' Journal

Editor
Dr. Dinkar Tripathi

Manglam Sewa Samiti, Prayagraj (U.P.) India
(Regd. Under Society Registration Act 21, 1860)

सम्पादक :

डॉ० दिनकर त्रिपाठी

एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग

फीरोज़ गाँधी कॉलेज, रायबरेली–229001 (उ.प्र.) भारत

1304/A आचार्य द्विवेदी नगर, जेल रोड, रायबरेली–229001 (उ.प्र.) भारत

मो० : 91-7398180008

Email : drdinkartripathi@gmail.com

प्रकाशक :

मङ्गलम् सेवा समिति

शिवम् अपार्टमेन्ट, नया ममफोर्डगंज, प्रयागराज–211002 (उ.प्र.) भारत

मो० : 91-9044666672

Website : www.manglamallahabad.com

Email : manglamjournal01@gmail.com
manglamsewasamiti@gmail.com

तकनीकि सहयोग :

डॉ० (श्रीमती) वंदना त्रिपाठी

मो० : 91-7398180009

Email : tripathivandana01@gmail.com

आवृत्ति :

अर्द्धवार्षिक

प्रथम अंक : फरवरी

द्वितीय अंक : अगस्त

मूल्य :

विदेश में : **$13**

देश में : **₹1000**

मङ्गलम् (अर्द्धवार्षिक द्विभाषीय) शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री में दृष्टि, विचार और अभिमत लेखकों के अपने हैं, सम्पादक के नहीं। इनमें सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। अतः पत्रिका के सम्पादक एवं प्रकाशक पर इसकी कोई जिम्मेदारी नहीं है। विवाद माननीय न्यायालय प्रयागराज में ही विचारणीय होंगे।

PATRONS

- **Prof. P.C. Trivedi**, Ex. Vice Chancellor, Jay Narayan Vyas University, Jodhpur (Rajasthan)
- **Prof. Manoj Dixit**, Ex. Vice Chancellor, Dr. Rammanohar Lohia Avadh University Ayodhya (U.P.)
- **Prof. D.P. Tiwari**, Ex. Vice Chancellor, Veer Kunwar Singh Ara University Ara (Bihar)
- **Prof. Sri Prakash Mani Tripathi**, Vice Chancellor, Indira Gandhi National Tribal University Amarkantak (M.P.)
- **Prof. Sanjeev Kumar Sharma**, Ex. Vice Chancellor, Mahatma Gandhi Central, University of Bihar, Motihari (Bihar)
- **Prof. Suresh Chandra Pandey**, University of Allahabad, Prayagraj (U.P.)
- **Prof. Ram Hit Tripathi**, Ex. Principal, Pt. Mahadev Shukla Krishak Post Graduate College Gaur, Basti (U.P.)
- **Prof. R.N. Tripathi**, Member, Uttar Pradesh Public Service, Commission, Prayagraj (U.P.)
- **Prof. M.S. Kambli**, University of Mumbai, Mumbai (Maharashtra)
- **Prof. Umesh Prasad Singh**, Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)
- **Prof. Ramjee Tiwari**, University of Mumbai, Mumbai (Maharashtra)
- **Prof. A.K. Kaul**, Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)
- **Prof. A.K. Srivastav**, University of Lucknow, Lucknow (U.P.)

EDITORIAL BOARD

- **Prof. Rama Shankar Mishra**, University of Lucknow (U.P.)
- **Prof. Rajendra Singh Chauhan**, Himachal Pradesh University Shimla (Himachal Pradesh)
- **Prof. Anand Kumar Srivastav**, Ex. Principal, CMP College, University of Allahabad, Prayagraj (U.P.)
- **Dr. Diwakar Tripathi**, Dr. Rammanohar Lohia Awadh University, Ayodhya (U.P.)
- **Dr. Ritesh Tripathi**, C.M.P. Degree College, University of Allahabad, Prayagraj (U.P.)

- **Prof. Noor Mohhammad**, University of Delhi, Delhi
- **Prof. R.K. Mishra**, University of Lucknow (U.P.)
- **Prof. Geeta Tripathi**, Ganpat Sahai P.G. College, Sultanpur, Dr. Rammanohar Lohia Awadh University, Ayodhya (U.P.)
- **Prof. Awdesh Kumar Singh**, Feroze Gandhi PG College, RaeBareli, University of Lucknow, Lucknow (U.P.)
- **Prof. Lokesh Tripathi**, Baba Raghav Das PG College Deoria, Deen Dayal Upadhyay Gorakhpur University, Gorakhpur (U.P.)
- **Dr. Bhasker Shukla**, Hemwati Nandan Bahuguna Government P.G. College Naini, PRS University, Prayagraj (U.P.)
- **Dr. Vandana Tripathi**, Basic Education Board, Raebareli (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. Anand Prakash Tripathi,** Dr. Hari Singh Gour University, Sagar (Madhya Pradesh)
- **Prof. K.K. Pandey**, Ex. Principal, DAV College Lucknow (U.P.)
- **Prof. R.S. Aadha**, Jai Narayan Vyas University, Jodhpur, (Rajasthan)
- **Prof. Nagendra Pratap Chauhan**, B.R.A. Bihar University, Muzzaferpur, (Bihar)
- **Prof. Anupam Sharma**, Indira Gandhi National Tribal University, Amarkantak, (M.P.)
- **Prof. Mamta Mani Tripathi**, Udit Narayan P.G. College, Kushinagar, Deen Dayal Upadhyay Gorakhpur University, Gorakhpur (U.P.)
- **Dr. Meera Pal**, Uttar Pradesh Rajshree Tandon Open University, Prayagraj (U.P.)
- **Dr. Shyam Prasad Saidal**, Bal Kumari Mahavidyalaya, Narayangarh, Chitwan, (Nepal)
- **Dr. Digvijay Nath Rai**, Agra College, Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (U.P.)
- **Dr. Joydeb Garal**, University of Chittagong (Bangladesh)
- **Dr. Sanjay M. Wagh**, S. Gholap Arts Science & G. Pawar Commerce College, Shivle, University of Mumbai, Mumbai (Maharashtra)
- **Dr. Mohd. Younes Bhat**, Government Degree College Kulgam, University of Jammu (J & K)
- **Dr. Sheelam Bharti**, Mata Sundari College for Women University of Delhi, Delhi

सम्पादकीय

सृष्टि में मुनष्य मननशील, चिन्तनशील और सर्वश्रेष्ठ विवेकशील प्राणी है। ईश्वर ने मनुष्य को सद् असद् का सम्यक् ज्ञान प्रदान किया है। अन्य प्राणियों की अपेक्षा मुनष्य को नरीक्षीर विवेकिनी बुद्धि जन्मतः प्राप्त है। बुद्धि को तीक्ष्ण एवं विकसित किया जा सकता है; निरन्तर के प्रयास, अभ्यास शिक्षण तथा प्रशिक्षण के माध्यम से। सच्चे अर्थ में मुनष्य को मनुष्य बनाने में उत्तर संस्कार पूर्ण शिक्षा का ही विशेष योगदान होता है। मानव मूल्यों के सम्वर्धन में शिक्षा अग्निहोत्र में घी जैसा कार्य करती है। संस्कारों से मनुष्य वैसे ही परिष्कृत स्वरूप वाला बनता है, जैसे अनगढ़ काष्ठ को तक्षक काट छाँट और सुधार कर सुन्दरतम आकृति प्रदान कर देता है। जिसे देखकर कोई भी सह्रदय आकर्षित एवं आनन्दित होता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व शिक्षा अैर संस्कारों से उद्दीप्त और विभासित हो जाता है। सुसंस्कृत एवं उत्तम शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अपने सदाचारों से समाज में देव तुल्य आदर प्राप्त करता है। सुख, सुविधा, सम्मान एवं दीर्घ जीवन भी सरल तथा उसे मिलते है। धर्मशीलता के कारण उसका आचार, व्यवहार, रहन–सहन, वेश–भूषा तथा वउयाी का प्रयोग समाज में अनुकरणीय बन जाता है। पूर्ण मानव का स्वरूप भी इसी से प्राप्तव्य है। उपनिषद् ने सभी सामाजिक जनों को व्यवहार, ज्ञान, आचार, तथा जीवन शैली के विषय में सन्देह होने पर उक्तगुण एवं संस्कार सम्पन्न आदर्श व्यक्ति का अनुकरण करते हुए सीखने का निर्देशन किया है। साथ ही यह भी कहा है कि सुसंस्कृत धर्मनिष्ठ तथा विद्या विनय सम्पन्न श्रेष्ठजनों का आचार ही सामाजिक नियम है। व्यवहार संहिता है। अतएव श्रेष्ठजनों का अनुकरण करना चाहिए। यही उपनिषद् का आदेश है। यही उपदेश है। यही सनातन धर्म अर्थात् जीवन विधि है। शिक्षा ही आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं अन्य अनेक विध जीवन क्षेत्रों में विकास की गति उत्पन्न कर व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र को समृद्ध बनाती है। शिक्षा के उन्नय हेतु हमारे देश में समय–समय पर अनेकशः सुधारात्मक प्रयोग शिक्षा व्यवस्था में किए जाते रहे हैं। इसी अनुक्रम में भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति सन् 2020 ई0 क्रियान्वयन आमूलचूल परिष्करणो के साथ करने हेतु प्रस्तावित किया है। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति को वैश्विक परिदृश्य में नित नूतन हो रहे शैक्षिक परिवर्तनों, परिवर्धनों, ज्ञानोपलब्धियों, तकनीकों एवं

नवनवोन्मेषों से मण्डित किए जाने का लक्ष्य भी है। साथ ही प्राथमिक स्तर से लेकर डिग्री एवं शोध क्षेत्र के स्तर तक अनेक आयामों में मौलिक परितर्वनों तथा परीक्षा एवं शिक्षण कालावधियों में भी मूलभूत नूतनता समाविष्ट की गई है। इसे आगामी शिक्षा सत्र 2023–24 से देशस्तर पर क्रियान्वित किया जाना इस विश्वास के साथ प्रस्तावित है कि यह शिक्षा नीति वैश्विक प्रतिस्पर्धा में सफलता अर्जित कराने के साथ नागरिकों के अकादमिक उपलब्धियों, संस्कारों, मानवमूल्यों एवं आत्मिक विकास में उत्तमता की स्थापना करायेगी।

मङ्गलम् रिसर्च जर्नल का यह वर्ष 14(01) अंक 26, फरवरी 2023 पुष्प उक्त अपेक्षा एवं शुभ संकल्पों का आदर करते हुए सुधी अन्वेषों, अध्येताओं और जिज्ञासुओं से अनुभव भरे उत्तम सुझावों की अपेक्षा करता है।

दिनकर त्रिपाठी

(डॉ० दिनकर त्रिपाठी)
सम्पादक

ISSN-0976-8149

विषयानुक्रम

क्र.सं.	शोधपत्र/शोधार्थी	पृष्ठ
1.	प्रथम रश्मि : प्रकृति सौंदर्य की अभिव्यंजना *- डॉ० नियति कल्प*	1-8
2.	महिला सशक्तिकरण में राष्ट्रीय महिला आयोग की भूमिका *- डॉ० मुकेश कुमार वर्मा, रविकेश मीना*	9-16
3.	प्राचीन भारत में पशु पालन : सैंधव सभ्यता से उत्तर वैदिक काल तक *- डॉ० राजेश कुमार सिंह, गुंजन बैस*	17-22
4.	भारतीय राजनीति का शुद्धिकरण एक आवश्यकता : डॉ. अंबेडकर के संदर्भ में विशेष अध्ययन *- डॉ० राजेन्द्र कुमार गोठवाल, डॉ० अरुण कुमार*	23-30
5.	सुखमृत्यु : अस्तित्व बनाम अनस्तित्व–एक नैतिक अध्ययन *- डॉ० शीलम भारती*	31-40
6.	भारत का दिशा बोध : एक अध्ययन *- डॉ० हरिमोहन शर्मा*	41-47
7.	भारतीय परम्परा में पंचायती राज व्यवस्था का संक्षिप्त अनुशीलन *- डॉ० दिग्विजय नाथ राय*	48-53
8.	गोपाल कृष्ण गोखले एक रचनात्मक आलोचक *- डॉ० अभिलाष सिंह यादव*	54-57
9.	आजमगढ़ जनपद की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक यात्रा : एक अध्ययन *- डॉ० मनीष कुमार सिंह*	58-66
10.	प्राचीन भारतीय जीवनशैली एवं वर्तमान परिदृश्य *- डॉ० कौशल कुमार पाण्डेय*	67-73
11.	भारतीय राष्ट्रवाद एवं स्वामी विवेकानन्द *- डॉ० दिवाकर त्रिपाठी, राजबीर*	74-82
12.	कोरोना काल में कबीर की साधना पद्धति का महत्व *- डॉ० अजय सिंह चौहान*	83-92
13.	पूर्व राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पर चर्चा *- डॉ० अजय कुमार मिश्र*	93-99

14. जानकीहरणम् महाकाव्य में विम्बित पारिवारिक जीवन 100-101
- बलराम वर्मा, डॉ० आशा गुप्ता

15. उत्तररामचरितम् में सामाजिक परिदृश्य 107-112
- डॉ० आशीष प्रताप सिंह

16. शोषित वर्ग के हिमायती मुंशी प्रेमचंद का मर्तबा : कृषक–विमर्श के सन्दर्भ में 113-117
- डॉ० आजेन्द्र प्रताप सिंह

17. प्राचीन भारत में परिवार का उद्‌भव : एक अध्ययन 118-125
- डॉ० दिवाकर त्रिपाठी

18. मध्यगंगा के मैदान की मध्य पाषाणयुगीन संस्कृति : एक विवेचन 126-134
- डॉ० आनन्द गुप्ता

19. प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी चिंतन 135-143
- कल्पना यादव

20. ग्रामीण महिलाओं में पर्यावरण संबंधी धार्मिक पक्षों का अध्ययन 144-151
- ऋद्वीशा

21. सांप्रदायिकता भारतीय लोकतंत्र की चुनौती और पंथनिरपेक्षता का राजधर्म 152-159
- राकेश कुमार निषाद, डॉ० अभय सिंह

22. भारत में समान न्याय तक पहुंच में समस्यायें एवं समाधान 160-168
- मोहम्मद इरशाद, डॉ० मोहम्मद शाहिद

23. अर्वाचीन संस्कृतनाट्यकर्त्री : डॉ० नलिनी शुक्ल और उनके रुपक 169-171
- कु० अर्चना पाण्डेय

24. सामाजिक न्याय बनाम डिजिटल डिवाइड : सर्वे आधारित अवलोकनात्मक विश्लेषण 172-184
- आशा, यशस्वी शुक्ला

25. **Examining the Prospects & Challenges of India-China Cooperation in Counterterrorism & Cybersecurity** 185-195
- Prof. Arun Kumar Dixit, Akhilesh Dwivedi

26. **Dr. Ambedkar and Drafting of the Indian Constitution** 196-204
- Prof. Ashok Kumar Rai

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 01-08

प्रथम रश्मि : प्रकृति सौंदर्य की अभिव्यंजना

*डॉ० नियति कल्प**

सारांश

सुमित्रानन्दन पंत छायावाद के एक महत्वपूर्ण आधारस्तंभ हैं। प्रकृति के प्रति प्रबल आकर्षण और प्रेम उनके काव्य को असाधारण बनाता है, जिस कारण वे हिन्दी साहित्य में 'प्रकृति के सुकुमार कवि' के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनकी कोमल कल्पना उनके काव्य में स्पष्ट तौर पर दीख पड़ती है जिस कारण उनका काव्य असाधारण हो उठा है। पंत ने प्रकृति का मानवीकरण कर उसे साधारण मनुष्य की तरह विविध क्रियाकलापों में रत दिखलाया है। अपनी काव्य–यात्रा के बारे में बताते हुए पंत ने अपने काव्य सृजन का श्रेय अपनी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश के नैसर्गिक सौन्दर्य को दिया है जिसकी गोद में उनका बचपन व्यतीत हुआ।

1918 ई० से 1920 ई० तक कवि पंत द्वारा रचित अधिकांश रचनाएँ 'वीणा' नामक काव्य–संग्रह में संकलित हैं। उक्त काव्य–संकलन में 1919 ई० में रचित कविता 'प्रथम रश्मि' कवि–जीवन के अरुणोदय की सूचक है। प्रकृति–प्रेम और प्रकृति–सौंदर्य की अभिव्यंजना से परिपूरित 'प्रथम रश्मि' कविता छायावादी रचनाओं में विशिष्ट पहचान रखती है। सूर्य की पहली किरण के प्रस्फुटित होते ही प्रकृति में होने वाले बदलाव को कवि ने कविता के सुंदर और आकर्षक शब्दों के मजबूत ढाँचे में ढाला है। प्रकृति के मुग्धकारी सौंदर्य ने किशोर पंत को आश्चर्य में डाल दिया है। यद्यपि पंत को 'प्रकृति के सुकुमार कवि' की संज्ञा से उनकी रचनात्मक प्रतिभा को, उसकी व्यापकता को एक सीमा में आबद्ध कर उन्हें परिसीमित करने की चेष्टा की गई परंतु वर्तमान में पर्यावरण संकट को देखते हुए पंत के प्रकृति प्रेम की प्रासंगिकता स्वयंमेव सिद्ध है।

मनुष्य आरंभ से ही प्रकृति के सान्निध्य में फला–फूला है। प्रकृति आदिकाल से ही मानव की सहचरी रही है। प्राकृतिक व्यापारों ने मानव–मन को सहज रूप में आकृष्ट किया है और स्वभावतः भावुक प्राणी–कवि ने प्रकृति को अपनी प्रेरणा शक्ति के रूप में देखा है। यही कारण है कि हिंदी साहित्य

---

* **सहायक प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची**

में आदिकाल से आधुनिक काल तक प्रकृति सौंदर्य का चित्रण किसी–न–किसी रूप में होता रहा है। आधुनिक युग विशेषतः छायावादी युग के कवियों ने प्रकृति के साथ सहज तादात्म्य स्थापित कर उसमें मानवीय भावों का आरोप करते हुए प्राकृतिक सौंदर्य को विविध रूपों में चित्रित किया है। प्राकृतिक सौंदर्य उसे विविध तनावों यथा–मानसिक एवं शारीरिक तनावों से दूर करने में पूरी तरह सक्षम रहा है। आज भले ही मनुष्य प्रकृति के उपकारों को विस्मृत कर लगातार उसका दोहन कर रहा है परंतु प्रकृति ही उसके अस्तित्व का कारण है।

प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण में छायावादी कवि–चतुष्ट्य में कवि सुमित्रानन्दन पंत का स्थान अन्यतम है। उनके विपुल और असाधारण काव्य में प्रकृति के प्रति अनन्य प्रेम और आकर्षण ने ही उन्हें हिन्दी साहित्य के विस्तृत एवं व्यापक क्षेत्र में 'प्रकृति के सुकुमार कवि' के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनकी कोमल कल्पना एवं भावों की सुंदर सहजाभिव्यक्ति उनके काव्य में गहन रूप में नजर आती है। उनमें प्राकृतिक सुषमा का आकर्षण इतना प्रबल है कि उन्हें सर्वत्र प्रकृति का सचेतन सौंदर्य बिखरा हुआ दिखाई देता है। अपनी रचनाओं में उन्होंने प्रकृति की प्रत्येक धड़कन को महसूस किया है, उसके विभिन्न रूपों का दर्शन कर उसे अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। प्रसिद्ध आलोचक नंदकिशोर नवल ने लिखा है "सुमित्रानंदन पंत छायावादी कवियों में सर्वाधिक लोकप्रिय थे। इसके दो कारण थे – उनकी कोमल–कांत पदावली और उनका छंदों में लिखना। एक कारण यह भी था कि 'सरस्वती' को उनकी कविताएँ स्वीकृत होती थीं, जिससे उनके प्रचार–प्रसार में काफी मदद मिली। पंत जी नई चेतना के पाठकों का हृदय–हार हो गए और चारों तरफ नए कवि उनका अनुकरण करने लगे। उनकी तुलना में प्रसाद गूढ़ थे और निराला दुरूह, जो सर्वप्रथम अपनी मुक्तछंद की कविताएँ लेकर सामने आए ... रोमांटिसिज्म को जो 'विस्मय का पुनर्जागरण' कहा गया है, वह पंत जी की कविताओं को देख कर सही प्रतीत होता है।"[1] पंत का जन्म हिमालय की सुरम्य उपत्यका में स्थित कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। बचपन से ही मातृहीन कवि को कौसानी की उन्मुक्त प्रकृति ने अपनी और आकर्षित कर उसमें प्रकृति के प्रति एक अद्‌भुत सौंदर्यनिष्ठ कोमल भावना भर दी थी, और यही कोमल भावना उसके काव्य की जन्मदात्री बनी। पंत ने प्रकृति का मानवीकरण कर उसे साधारण मनुष्य की तरह विविध क्रियाकलापों में रत दिखलाया है। अपनी काव्य–यात्रा के बारे में बताते हुए कवि पंत ने लिखा है–

''अपने काव्य–जीवन पर दृष्टिपात करने पर मेरे भीतर यह बात स्पष्ट हो उठती है कि मेरे किशोर–प्राण मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौंदर्य को है जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूँ। मेरे भीतर ऐसे संस्कार अवश्य रहे होंगे जिन्होंने मुझे कवि–कर्म करने की प्रेरणा दी थी, किंतु उस प्रेरणा के विकास के लिए स्वप्नों के पालने की रचना पर्वत–प्रदेश की दिगन्त–व्यापी प्राकृतिक शोभा ही ने की, जिसने छुटपन से ही मुझे अपने रूपहले एकांत में एकाग्र तन्मयता के रश्मिदोल में झुलाया, रिझाया तथा कोमलकंठ वन–पाँखियों के साथ बोलना–कुहुकना सिखलाया। प्रकृति–निरीक्षण और प्रकृति– प्रेम मेरे स्वभाव के अभिन्न अंग ही बन गये हैं, जिनसे मुझे जीवन के अनेक संकट क्षणों में अमोघ सान्त्वना मिलीं''[2]

निःसंदेह पंत के कवि जीवन की नींव प्रकृति की गोद में ही पड़ी। परंतु अपनी काव्य–यात्रा के आगे बढ़ने के साथ प्रकृति प्रेमी पंत की रचनाओं का स्वर भी बदला। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–''पंत निरंतर गतिशील कवि रहे हैं। प्रारंभिक रचनाओं में प्रकृति के प्रति उनकी बाल–सुलभ जिज्ञासा और कुतूहल इतने आकर्षक सिद्ध हुए कि लोगों ने पंत को प्रकृति का कवि ही कहना शुरू किया पर पंत मानवीय सौंदर्य और अंतश्चेतना के भी उतने ही निपुण कवि हैं।''[3] निस्संदेह, आधुनिक युग के समस्त रचनाकारों में पंत का व्यक्तित्व सर्वाधिक परिवर्तनशील रहा है। उनके काव्य की यह गत्यात्मकता उन्हें छायावाद युग से नई कविता के युग तक ले आई है। पंत जी ने सदैव युगानुरूप काव्य का सृजन किया है। सर्वप्रथम उन्होंने छायावादी काव्य रचनाएँ कीं। छायावाद को व्यावहारिक जीवन के लिए अनुपयुक्त पाकर वे प्रगतिवादी बने और जब प्रगतिवाद का अत्यधिक उग्र और भौतिकवाद स्वर उनकी कोमल कल्पना को संतुष्ट न कर सका तो प्रगतिवाद का विरोध कर वे अरविन्दवादी दार्शनिक कवि बन गये। उनके काव्य में पाए जाने वाले उक्त परिवर्तन ऊपर से भिन्न प्रतीत होते हुए भी आंतरिक रूप से एक ही मूल प्रकृति और विचारधारा से जुड़े हुए हैं। सभी परिवर्तनों के बीच उनका कोमल व्यक्तित्व निश्चित रूप से विद्यमान है।

पंत जी की माता का निधन उनके जन्म के कुछ ही घंटे बाद हो गया था जिस कारण मातृहीन बालक को प्रकृति रूपी जननी ने सहज ही अपनी ओर आकर्षित किया। उनकी आरम्भिक रचनाएँ प्रकृति की गोद में ही लिखी

गयीं। प्रकृति सौंदर्य को कवि ने आलंबन, उद्दीपन, रहस्यात्मक आदि रूपों में लिया है जिसे नये उपमानों से अलंकृत कर उसने हर बार एक नयी और मौलिक सर्जना की है। पंत की काव्य–यात्रा का आरंभ सर्वप्रथम 1918 ई० से 1920 ई० तक में उनके द्वारा रचित 'वीणा' नामक काव्य–संग्रह से होता है। इस संकलन में पंत के किशोर जीवन की भावप्रधान रचनाएँ संगृहीत हैं जिसमें बालोचित सरलता एवं कोमलता है तथा प्रकृति के प्रति कवि का सहज जिज्ञासा भाव मुखरित हुआ है। वीणा में कवि की बालसुलभ कल्पना ने जहाँ एक तरफ शिशु हृदय की सरल एवं कोमल अनुभूतियों, उसके सहज कौतूहल का अभिचित्रण किया है तो वहीं दूसरी तरफ प्रकृति में चेतन सत्ता का आरोप कर उसे विश्व–जननी के रूप में प्रतिष्ठित किया है जिसके कई रूप कवि को नजर आते हैं। कवि की कल्पना यहाँ दो रूपों में विस्तार पाती है – प्रकृति चित्रण में और कौतूहल या जिज्ञासा भाव में। कवि पंत के उक्त काव्य –संकलन की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं– 'किरण', 'सरिता', 'चातक', 'प्रथम रश्मि' आदि। उक्त सभी भावनाप्रधान रचनाएँ हैं जो कवि की सूक्ष्म अंतर्दृष्टि की परिचायक हैं। 'वीणा' शीर्षक काव्य– संकलन मे सर्वप्रथम पंत प्रकृति के प्रति जिज्ञासा की भावना लेकर चलते हैं फिर प्रकृति के मुग्धकारी सौंदर्य से आकर्षित होकर उसे आत्मसात करना चाहते हैं। 1919 ई० में रचित कविता 'प्रथम रश्मि' कवि–जीवन के अरुणोदय की सूचक है। कवि के जीवन का मंगलमय प्रभात भी मानो इस प्रथम रश्मि के साथ आरंभ होता है। प्रकृति–सौंदर्य और प्रकृति–प्रेम की अभिव्यंजना से परिपूरित 'प्रथम रश्मि' कविता का छायावादी रचनाओं में विशिष्ट पहचान है। इसमें पहली बार कवि की उन विशेषताओं को हम अंकुरित होते देखते हैं जिसका विकास बाद में पल्लव में हुआ है। स्वयं पंत ने लिखा है– ''वीणा में प्रकाशित 'प्रथम रश्मि' नामक कविता ने काव्य–साधना की दृष्टि से नवीन प्रभात–किरण की तरह प्रवेश कर मेरे भीतर 'पल्लव' काल के काव्य–जीवन का समारंभ कर दिया।''[4] सूर्य की पहली किरण के प्रस्फुटित होते ही प्रकृति में होने वाले बदलाव को कवि ने कविता के सुंदर और आकर्षक शब्दों के मजबूत ढाँचे में ढाला है।

प्रस्तुत कविता में विस्मित किशोर मन की स्वाभाविक जिज्ञासा से जुड़ा प्रश्न है। प्रकृति के विभिन्न क्रिया –व्यापारों को देखकर उसका बालकों जैसा चपल, मधुर और भोला मन उत्सुक होकर गा उठता है। कविता की प्रारंभिक पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

''प्रथम रश्मि का आना रंगिणि!
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ, कहाँ हे बाल–विहंगिनि!
पाया, तूने यह गाना?''[5]

प्रथम रश्मि अर्थात सुबह की पहली किरण प्रभात के आगमन की सूचना देती है। सूर्योदय के साथ ही पूर्व दिशा में प्रथम किरण का फूटना उस भोर के आरंभ का परिचायक है जिसका प्रथम ज्ञान पक्षियों को न जाने कैसे हो जाता है और उनके कंठ से गान फूट पड़ते हैं। प्रकृति के मुग्धकारी सौंदर्य ने किशोर पंत को आश्चर्य में डाल दिया है। आधुनिक मनुष्य प्रकृति के करीब न रहने के कारण प्रकृति के रहस्यों से सर्वथा अनजान रहता है। इसी कारण कवि नन्हीं सी छोटी चिड़िया को संबोधित करता है। कवि हतप्रभ है कि आखिरकार स्वप्नावस्था में सुख से अपने घोंसले में सो रही चिड़ियों को प्रभात के आगमन की सूचना कैसे मिली? रात्रि की नीरवता के वातावरण में पक्षियों को प्रभात की सूचना सबसे पहले मिलना उनके अंतर्यामी होने का अनुभव कवि को कराता है।

पक्षियों द्वारा गाये जाने वाले जागरण गीत ने संसार में चारों ओर सुख और समृद्धि का ताना–बाना गूँथ दिया। चतुर्दिक व्याप्त निराकार अंधकार मानो ज्योतिपुंज के रूप में साकार हो उठा। रूप और वर्णहीन वस्तुएँ नाम और रूप से युक्त हो गईं और शीघ्र ही यह नाम रूपात्मक जगत् में प्रकट हुआ। सुप्त समीर चंचल हो उठा, पेड़ों के पत्ते आनंद से पुलकित हो उठे। फूलों के अधरों पर हँसी खेलने लगी। उन पर पड़े ओस बिंदु मोती के दानों की भाँति हिल उठे। नींद में अलसाई पलकें खुलीं, प्रभात की स्वर्णिम शोभा चारों ओर फैल गई। स्पंदन, कंपन और नवजीवन का जगत् में पुनः संचार हुआ।

निश्चय ही यह कविता पंत की सौंदर्य यात्रा का स्मारक चिह्न है जिसमें कवि की सुकुमार भावना और इंद्रधनुषी कल्पना की आलोक छटा का प्राधान्य है। साथ ही पंत का झीना–सा रहस्यवादी आवरण अपने पीछे आगामी दार्शनिकता का मोहक सौंदर्य भी छिपाये हुए हैं। उक्त कविता प्रश्न से ही प्रारंभ होकर प्रश्न पर ही समाप्त हो जाती है। कवि अपनी ढेर सारी जिज्ञासाओं का शमन पक्षियों के माध्यम से करना चाहता है।

प्रकृति में चेतना का आरोप छायावाद की मुख्य विशेषता है। 'प्रथम रश्मि' में भी प्राकृतिक उपादानों यथा– वृक्ष, कुसुम, समीरण सबमें चेतना का आरोप हुआ है। जैसे–

''सिहर उठे पुलकित हो द्रुम दल,
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम अधरों पर,
हिल मोती का–सा दाना!''[6]

अलंकारों का प्रयोग भी उक्त कविता में स्वाभाविक रूप से हुआ है। पक्षी के घोंसले के आस–पास मंडराते जुगनुओं के लिए श्प्रहरीश उपमान के प्रयोग द्वारा उपमा अलंकार की सुंदर योजना हुई है–

''सोयी थी तू स्वप्न नीड़ में,पंखों के सुख में छिपकर

झूम रहे थे, घूम द्वार पर,प्रहरी से जुगनू नाना।''[7]

वहीं तारों में दीपक के आरोप द्वारा रूपक का सुंदर निर्वाह निम्न पंक्तियों में हुआ है–

स्नेहहीन तारों के दीपक,
श्वास–शून्य थे तरु के पात,
विचर रहे थे स्वप्न अवनि में,
तम ने था मण्डप ताना!''[8]

'स्नेह' शब्द में श्लेष का चमत्कार भी दर्शनीय है। भाषा प्रांजल, संकेतात्मक और कवि की सूक्ष्मदर्शिता की परिचायक है। पंत जी की भाषा–सामर्थ्य के संबंध में बच्चन जी ने लिखा है " हिंदी ने पंत जी के माध्यम से युग की बहुमुखी नवीनता की माँग पूरी की है, उसके मुख में जीभ रखी है। पंत जी की अभिव्यंजना–शक्ति और प्रयास से हिंदी कितनी सक्षम हुई है इसका अनुमान तो किसी दिन भाषाविद् ही लगा सकेंगे। इस अनिवार्य और आवश्यक नवीन से परिचित होने के लिए हमें कुछ अपरिचित, अप्रचलित, क्लिष्ट के प्रति ग्रहणशील बनना होगा।"[9]

देखा जाए तो यह कविता एक ओर नये प्रभात, नयी सुबह की परिचायक है तो दूसरी ओर राष्ट्रीयता के प्रथम उन्मेष तथा नवजागरण के

प्रथम चरण की परिचायक भी है। साथ ही कविता में छायावादी जिज्ञासा एवं रहस्य भावना की विद्यमानता है ही। कवि पंत के संदर्भ में मुक्तिबोध ने लिखा है– ''पंतजी में वास्तव के प्रति विशेष उन्मुखता रही आयी। प्राकृतिक सौंदर्य उन्हें केवल उपमाएँ और रूपक ही नहीं देता रहा, वह पूरे रूपाकार के साथ उनके सम्मुख उपस्थित होता आया। उनके यौवनोन्मेषकाल में, प्राकृतिक सौंदर्य उनके लिए एक वातावरण स्थिति और परिस्थिति लेकर आया। निरूसंदेह पंतजी में कोमल संवेदनाओं से आप्लुत एक विशेष प्रकार की अंतर्मुखता थी।''[10]

निःसंदेह पंत की 'प्रथम रश्मि' कविता हिन्दी साहित्य जगत् में प्रकृति प्रेम के पर्याय के साथ –साथ प्रकृतिपरक कविताओं में मील का पत्थर है। यद्यपि कविवर पंत को प्रकृति के सुकुमार कवि' की संज्ञा से उनकी रचनात्मक प्रतिभा को, उसकी व्यापकता को एक सीमा में आबद्ध कर उन्हें परिसीमित करने की चेष्टा की गई परंतु वर्तमान में पर्यावरण संकट को देखते हुए पंत के प्रकृति प्रेम की प्रासंगिकता स्वयंमेव सिद्ध है। प्रकृति प्रेम की अभिव्यंजना, उसकी अभिव्यक्ति को आत्मसात किये पंत का काव्य वर्तमान संदर्भ में अत्यंत ही प्रासंगिक हो उठा है। अंधाधुंध भौतिक विकास के निमित्त पूरे विश्व में जिस तरह प्रकृति का दोहन हुआ है उसका दुष्परिणाम हमारे सामने है। मनुष्य का संतुलित विकास प्रकृति के सान्निध्य में ही हो सकता है। कोरोना महामारी में जब मजबूरन गतिविधियों को विराम देना पड़ा तो पर्यावरण पर उसके सुपरिणाम सबने लक्षित किये। लेकिन स्थिति पुनः अंधाधुंध दौड़ में सम्मिलित होने की बन गई है। मनुष्य ने अपनी गलतियों से सीख नहीं ली है। प्रकृति के सौंदर्य को देखने और उसे सराहने का अवकाश किसी के पास नहीं है। पंत का प्रकृति–प्रेम और उसमें डूबी उनकी रचनाएँ हमें अवश्य प्रेरित कर सकती हैं कि हम भी प्रकृति के सौंदर्य , उसके महत्व को समझें और जिस प्रकृति ने सृष्टि के आरंभ से ही मानव–जीवन का विकास और संरक्षण किया है उसी प्रकृति के प्रति हम भी कृतज्ञता का भाव रखें और उसे अपने व्यवहार में समाहित करें।

संदर्भ

1. *नंदकिशोर नवल, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, 2012 ई०, पृ० 224*
2. *सुमित्रानंदन पंत, रश्मिबन्ध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006 ई०, पृ० 10*

3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली 10, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013 ई०,पृ० 335
4. सुमित्रानंदन पंत, रश्मिबन्ध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006 ई०, पृ० 12
5. वही, पृ० 34
6. वही, पृ० 35
7. वही, पृ० 34
8. वही, पृ० 34
9. हरिवंशराय बच्चन, सुमित्रानंदन पंत, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, 1960 ई, पृ. 12
10. मुक्तिबोध, मुक्तिबोध रचनावली 5, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011 ई०,पृ० 447

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 09-16

महिला सशक्तिकरण में राष्ट्रीय महिला आयोग की भूमिका

डॉ० मुकेश कुमार वर्मा *
*रविकेश मीना***

सारांश

संयुक्त राष्ट्रसंघ के युनिवर्सल डिक्लेरेशन 1948 में महिला समानता को मानव जाति की शांति, न्याय व स्मृद्धि के लिए आवश्यक माना और यह सिद्धान्त रूप से स्वीकार किया गया कि जब तक मानव जाति का अपिरहार्य भाग महिला वर्ग को पुरूष अपने साथ नहीं लेगा, तब तक पुरूष समग्र विकास शांति व समृद्धि की कल्पना तक नहीं कर सकता। नारी उत्थान व विकास तथा नारी सशक्तिकरण के सन्दर्भ में भारत में राष्ट्रीय महिला अधिकार आयोग का 1992 में गठन किया गया है, जिसकी अध्यक्ष श्रीमती मोहिनी गिरी थी। भारतीय राष्ट्रीय महिला अधिकार का गठन नारी स्वतन्त्रता, समानता व न्याय के सन्दर्भ में वे प्रयास करने के उद्देश्य से किया गया है कि प्रथमतः नारी का शोषण व उत्पीड़न रूके और द्वितीय नारी विकास व सशक्तिकरण के सकारात्मक उपाय किये जायें ताकि राष्ट्रीय विकास की धारा में नारी का भी समुचित प्रभावी व सकारात्मक योगदान हो।

संकेताक्षर : महिला, राष्ट्रीय महिला आयोग, सशक्तिकरण, महिला उत्पीड़न।

शोध विस्तार

संविधान, कानून के समुचित पालन के लिए कई संस्थाओं का गठन किया जाता है। राष्ट्रीय महिला आयोग एक ऐसा ही निकाय है, जो महिलाओं और बालिकाओं के विकास, उत्थान, संरक्षण तथा सशक्तिकरण की दिशा में कार्यरत है। इसकी स्थापना महिलाओं को संवैधानिक तथा विधिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए की गई है, ताकि उन्हें किसी भी प्रकार के शोषण, हिंसा व उत्पीड़न से बचाया जा सके और उन्हें अतिशीघ्र न्याय दिलाया जा सके।[1]

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
** डॉक्टर फेलो (भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली) राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

इस आयोग की स्थापना अचानक ही नहीं हुई, बल्कि इसके गठन के प्रयास 70 के दशक से ही प्रारम्भ हो चुके थे। निरन्तर होते महिला शोषण व उत्पीड़न के फलस्वरूप सत्ता से संबन्धित लोगों द्वारा भी महिलाओं पर किए जा रहे अत्याचारों पर विचार–विमर्श किए जाते रहे। महिला संगठनों और विशेष रूप से जनवादी महिला समिति की ओर से भी यह मांग उठाई गई कि संवैधानिक अधिकारों से लैस राष्ट्रीय महिला ओयाग का गठन किया जाना चाहिए। इस मांग को लकर 10 वर्षों तक विचार–विमर्श होता रहा। यद्यपि इस बीच इसके दुरूपयोग संबंधी आशंका भी व्यक्त की जाती रही। इसी संघर्ष के बीच 1989 में जनता दल की सरकार बनी और राष्ट्रीय महिला गठन सम्बंधी विधेयक संसद में पेश किया गया। अन्ततः 31 जनवरी, 1992 को राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 (भारत सरकार का 1990 का अधिनियम संख्या 20) के अन्तर्गत इस आयोग का गठन किया गया। इसका गठन एक राष्ट्रीय सांविधिक निकाय के रूप में किया गया था।

भारत में राष्ट्रीय महिला अयोग की स्थापना 1992 में की गई, जबकि भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता 1948 में प्राप्त कर सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा–पत्र को सिद्धान्तः स्वीकार किया भारत में मानव अधिकार आयोग का स्वतन्त्र प्रभार है, जबकि राष्ट्रीय महिला आयोग अपना विधिक कार्यक्षेत्र है, जिसमें सामान्यतः व विशेषतः महिला उत्थान, विकास, समृद्धि व महिला सशक्तिकरण का ही विषय सार्वभौमिक रूप से मान्य है। महिला उत्पीड़न व शोषण पर कैसे नियन्त्रण पाया जाये और महिला सशक्तिकरण के लिए क्या उपाय किये जायें? नारीत्व को किस प्रकार सशक्त किया जाये व शोषणमुक्त किया जाये। यही राष्ट्रीय महिला आयोग का सारभूत कार्यक्षेत्र है।[2]

महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने, उन्हें शोषण एवं अत्याचार से मुक्त कराने तथा उनके संवैधानिक अधिकारों की क्रियान्वित को सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना इस दशक की एक विशेष उपलब्धि है। सन् 1990 में संसद द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया। इस अधिनियम की धारा–3 के अनुसार आयोग केन्द्र सरकार द्वारा नामित 5 सदस्य तथा एक सदस्य सचिव और एक उपाध्यक्ष की नियुक्ति का प्रावधान है। इन सदस्यों में एक–एक सदस्य अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति का होना अनिवार्य रखा गया है, ताकि पिछड़ी जाति की महिलाओं को भी

प्रतिनिधित्व मिल सके किन्तु आयोग के सदस्य सामाजिक, वैज्ञानिक, विधि विशेषज्ञ, औद्योगिक प्रबन्धन, प्रशासन, व्यापार संघ तथा सामाजिक–आर्थिक क्षेत्रों से जुड़े विशेषज्ञ होने चाहिए ताकि स्पष्ट व कानूनी राय दे सकें। राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 में राष्ट्रीय महिला आयोग के प्रमुख कार्य एवं अधिकार इस प्रकार हैं[3] :

- संविधान एवं अन्य कानूनों के अन्तर्गत महिलाओं के लिए किय गये सुरक्षा उपायों से जुड़े विषयों की जांच एवं परीक्षण करना।
- इन सुरक्षा उपायों के सम्बंध में समय–समय पर सरकार को प्रतिवेदन प्रस्तुत करना।
- इन सुरक्षा उपायों के प्रभावी क्रियान्वयन के सुझाव देना।
- महिलाओं से सम्बन्धित विधियों की समय–समय पर समीक्षा करना, उनमें संशोधन, परिवर्तन, आदि के सुझाव देना।
- संविधान एवं अन्य विधियों (कानूनों) में महिलाओं के लिए किये गये प्रावधानों का उल्लघंन किये जाने पर उन पर प्रभावी कार्यवाही करने के प्रयास करना।
- निम्नांकित मामलों से सम्बन्धित शिकायतों पर विचार कर उनके निवारण का प्रयास करना।
  - नारी अधिकारों से वंचित किया जाना।
  - विधियों का क्रियान्वयन नहीं किया जाना।
  - महिलाओं को राहत प्रदान करने के लिए निर्मित नीतियों, मार्ग निदेशकों आदि की अनुपालना नहीं किया जाना, आदि।
- महिलाओं के साथ भेदभावपूर्वक व्यवहार, शोषण आदि समस्याओं की जांच एवं उनका अध्ययन करना।
- महिलाओं के सर्वांगीण विकास की दिशा में कदम उठाना।
- जेल, रिमाण्ड होम्स, नारी निकेतन आदि का निरीक्षण करना और वहां की अव्यवस्थाओं के निवारण का प्रयास करना।
- महिलाओं को कानूनी सहायता उपलब्ध कराने हेतु कोष अथवा निधि की स्थापना करना।

➢ सरकार को समय –समय पर विशेष प्रतिवेदन प्रस्तुत करना आदि।

अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आयोग को अधिनियम की धारा 10 (4) के अन्तर्गत सिविल न्यायालय की कई महत्वपूर्ण शक्तियां प्रदान की गई हैं। अपने कर्तव्यों के निर्वहन में अथवा किसी मामले की जॉच करते समय, आयोग[4] –

- किसी भी व्यक्ति को समन कर सकेगा और उसका शपथ पर परीक्षण कर सकेगा।
- कोई भी दस्तावेज माँग सकेगा।
- शपथ पर साक्ष्य ले सकेगा।
- किसी भी न्यायालय अथवा कार्यालय से लोक अभिलेख मंगा सकेगा।
- साक्षियों एवं दस्तावेजों का परीक्षण कर सकेगा आदि।

समग्र देश में महिला सशक्तिकरण के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए आयोग के माध्यम से प्रत्येक राज्य में राज्य महिला आयोग का गठन किया है जो राष्ट्रीय महिला आयोग से निरन्तर सम्पर्क में रहते हैं। उनके सहयोग से आयोग अपनी सशक्त रणनीति तैयार करता है।

आयोग का गठन हुए अभी कोई अधिक समय नहीं हुआ है। अत्यन्त अल्पावधि में ही आयोग ने कई महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त की है। आयोग ने अपनी कार्यप्रणाली स्वयं सुनिश्चित की है। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आयोग ने प्रकोष्ठों की स्थापना की है। शिकायत एवं जांच प्रकोष्ठ आयोग का एक प्रमुख एकक है। यह प्रकोष्ठ राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 की धारा–10 के अन्तर्गत मौखिक और लिखित शिकायतों तथा समाचार–पत्रों में छपी रिपोर्टों पर स्वप्रेरणा से कार्यवाही करता है। आयोग को प्राप्त होने वाली शिकायतों में प्रायः महिलाओं के विरूद्ध विभिन्न प्रकार के यातना, परित्याग, बहु–विवाह, बलात्कार तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से इनकार पति द्वारा क्रूरता, अपहरण, महिलाओं के प्रति भेदभाव तथा कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के मामले शामिल होते हैं। अप्रैल से अक्टूबर 1996 की अवधि के दौरान आयोग द्वारा ऐसे 150 से अधिक शिकायतों का निपटारा किया गया।

1999 के दौरान आयोग को 4349 शिकायतें प्राप्त हुई थी, जिन पर शीघ्रता से कार्यवाही की गई। अप्रैल से दिसम्बर 2004 तक आयोग को महिला विरूद्ध विभिन्न अपराधों से सम्बन्धित 4212 शिकायतें प्राप्त हुई थी। आयोग को प्राप्त होने वाली शिकायतों को सरलता, शीघ्रता व परामर्श से सुलझाने का प्रयास किया जाता है[5] :

- पुलिस की उदासीनता के विशिष्ट मामलों को अन्वेषण हेतु पुलिस अधिकारियों के पास भेजा जाता है।
- यथोचित कर्यवाही हेतु विभिन्न राज्य प्राधिकरणों में उपलब्ध किन्तु असंगठित आंकड़ों को उपलब्ध कर एकीकृत किया जाता है।
- पारिवारिक समस्याओं को प्रायः परामर्श के जरिए हल किया जाता है।
- गंभीर अपराधों के लिए आयोग द्वारा जांच समिति गठित की जाती है, जो घटना स्थल पर जॉच करके विभिन्न गवाहों से पूछपाछ करके, सबूत जुटाकर सिफारिशों सहित अपनी रिपोर्ट देती है। ऐसे जांच कार्यों से हिंसा व अत्याचार की शिकार महिलाओं को तत्काल राहत और न्याय दिलाने में मदद मिलती है। सिफारिशों के कार्यान्वयन का परीक्षण आयोग द्वारा किया जाता है। प्राप्त होने वाली शिकायतों का महिलाओं के विरूद्ध अपराधों तथा सरकार द्वारा उनके उन्मूलन उपायों को जानने के लिए भी विश्लेषण किया जाता है ताकि उनका उपयुक्त समाधान खोजा जा सके।

आयोग का परामर्श प्रकोष्ठ पीड़ित एवं व्यथित महिलाओं को न केवल कानूनी परामर्श देता है, अपितु आपसी समझौते और राजीनामों के माध्यम से समस्याओं के समाधान का प्रयास भी करता है। परामर्शदाता बड़ी संवेदनशीलता के साथ सर्वमान्य हल निकालने का प्रयास करते हैं। आयोग ने असंख्य समस्याओं में समुचित परामर्श देकर आशातीत सफलता प्राप्त की है। राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा महिलाओं से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के मामलों को देखा व निपटाया जाता है। विशेष विषयों पर आधारित मामलों को प्रभावी ढंग से निष्पादित करने के लिए विशेषज्ञों की समितियां भी गठित की जाती हैं, जो

आयोग का विभिन्न विषयों पर सलाह व परामर्श देती हैं। यह विषय इनसे सम्बन्धित हो सकते हैं – कानून व विधान, राजनैतिक सशक्तिकरण, महिलाओं के लिए अभिरक्षा में न्याय, सामाजिक सुरक्षा, पंचायती राज, महिलाएं व मीडिया अनुसूचित जन जाति की महिलाओं का विकास, महिलाओं हेतु विकास के लिए कृषि कार्यों में प्रौद्योगिकी अंतरण तथा जनसंख्या नीति आदि।[6] अपने गठन के समय से ही आयोग द्वारा सराहनीय व प्रभावी ढंग से कार्य किया जाता रहा है। अपने कार्यकाल के दौरान आयोग ने कई ज्वलंत समस्याओं पर कार्यवाही की और महिलाओं के उत्पीड़न को रोकने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

महिलाओं से सम्बन्धित मामलों की जांच करते समय आयोग सिविल न्यायालय के समान कार्य करता है और किसी भी गवाह को बुला कर पूछताछ कर सकता है। यदि जरूरी हो तो शपथ पर साक्ष्य भी प्राप्त कर सकता है। किसी भी व्यक्ति को उपस्थित होने के लिए बाध्य कर सकता है। किसी भी न्यायालय के कार्यालय से किसी भी सार्वजनिक अभिलेख अथवा उसकी प्रतिलिपि को प्राप्त कर सकता है। आयोग को एक न्यायिक प्राधिकरण के समकक्ष माना जाता है इसलिए उसके समक्ष की गई प्रत्येक कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही समझी जाती है। महिलाओं की दिशा में राष्ट्रीय महिला आयोग एक सशक्त माध्यम है। अधिनियम की धारा–16 के अनुसार केन्द्र सरकार को महिलाओं से सम्बन्धित और प्रभावित करने वाले मामलों में परामर्श लेना होता है।[7]

आयोग द्वारा महिला उत्पीड़न से सम्बन्धित रिपोर्ट जुटाई जाती है और आवश्यकता पड़ने पर किसी मामले में उचित कार्यवाही भी की जाती है, ताकि पीड़ित महिला को उचित न्याय मिल सके। आयोग द्वारा महिला विकास व कल्याण के बारे में समुचित सिफारिशें भी सरकार को भेजी जाती हैं। महिलाओं के मध्य महिला कल्याणकारी कानूनों की जानकारी के प्रचार–प्रसार की समुचित व्यवस्था भी आयोग द्वारा की जाती है। आयोग महिला–पुरूषों में समानता स्थापित करने का कार्य करता है, दूसरी ओर महिलाओं के लिए निर्धारित नीतिगत निर्णयों व दिशा–निर्देशों को लागू करवाने के लिए सम्बन्धित प्राधिकरण से सम्पर्क स्थापित करता है। आयोग द्वारा संघ तथा किसी राज्य में महिलाओं के विकास की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए वहां का दौरा किया जा सकता है, जिसके दौरान आयोग के सदस्य जिला स्तरीय गैर सरकारी संगठनों

के साथ वार्ता करते हैं। राज्य स्तरीय सरकारी अधिकारियों के साथ बैठक कर विभिन्न विषयों पर चर्चा करते हैं। आयोग वंचित सामाजिक वर्गों की स्थिति व सशक्तिकरण के लिए गंभीर रूप से चिंतित रहता है। प्रतिवर्ष निर्धारित लक्ष्य के अनुसार आयोग द्वारा निर्देशित महिला संबंधी विषयों पर अध्ययन किए जाते हैं। जिनका महिलाओं पर गहरा व दूरगामी प्रभाव पड़ता है।[8]

भारतीय नारी का विकास बहुत धीमा है। आधुनिक भारत में नारियों की शिक्षा का पर्याप्त विकास हो गया है किन्तु इस पुरूष प्रधान समाज में आज भी नारी को बराबरी का दर्जा देने में सुगबुगाहट है। यही नहीं, समाज की रूढिवादी परम्परावादी एवं कम पढी–लिखी नारियों के विचारों में कुछ विशेष परिवर्तन आज भी नजर नहीं आता है। नारियों के केवल तबके में आया परिवर्तन पूर्ण समाज की नारियों का परिवर्तन कहना महज अतिश्योक्ति ही है।

नारी तो नारी है, देश व काल की सीमाओं से नारी के नारीत्व में कोई अन्तर नहीं आया। नारी तो किसी भी देश व समाज की हो, वह सदा नारी ही रही है, नारी ही रहेगी। पत्नी रूप में, माता रूप में, प्रियतमा रूप में या अन्य किसी अन्तरंग सम्बन्ध में नारी तो करूणा निराम्बुध के समान है जिसके सन्दर्भ में ही सुखभोग पुरूष का पौरूष अर्थवान व गौरवमान हुआ है।[9] अपनों से ही संघर्ष बहुत कठिन व दुष्कर है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि व्यक्ति अन्तस्चेतना व अहम् लेकर जीता है। जब समाज में साथ रहकर विवेक से सम्बंधों को मधुर करने के लिए जीवन जिया जाता है तो अन्तस्चेतना का मिलन आत्मदृ प्रियतमा से हो जाता है और जीवन चाहे व्यक्तिगत सम्बन्धों का हो, चाहे पारिवारिक, सामुदायिक व सामाजिक सम्बन्धों का हो, प्रेम, आत्मीयता, अनपत्व के जल में निमज्जित रहता है, वहां जीवन में शान्ति व आनन्द भाव रहता है।

आज नारी का विवेक चिंतित है। यह पुरूष की अन्तस्चेतना को प्रेम व शान्ति तथा स्नेह का संस्कार व संदेश देना चाहता है, किन्तु पुरूष का 'अहम' विवेकपूर्ण प्रत्युत्तर नहीं देता है, उसका अहम् 'नारी शोषण' का अभ्यस्त है। भारतीय समाज में पुरूष प्रधान मानसिकता का वर्चस्व है। जब तक इस समाज में जनचेतना का भाग महिला सशक्तिकरण न बन जाये तब तक राष्ट्रीय महिला आयोग का कार्य सरल नहीं हो सकता है। आज जब राष्ट्रीय महिला आयोग की उपलब्धियों का विवेचन होता है, तो प्रथमतः यह स्वीकार करना होगा कि आयोग की स्थापना हुए अभी ज्यादा समय नहीं हुआ और इससे इस

अवधि में बहुत कुछ अधिक अपेक्षा करना न्याय संगत नहीं होगा। यहां यह संतोष करना उचित होगा कि कम से कम महिलाओं को एक मंच या माध्यम तो मिला, जहां वे अपनी बात कह सकती हैं।

संदर्भ

1. *साधना ठाकुर (2018) भारत में महिला विकास कार्यक्रम, साधना प्रकाशन, कानपुर, पृ. 7*
2. *पी.डी. शर्मा (2017) महिला सशक्तिकरण और नारीवाद, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. 21–22*
3. *आशुतोष व्यास (2017) महिला सशक्तिकरण चुनौतियाँ और सम्भावनाएं, बुक एनक्लेव, दिल्ली, पृ. 78*
4. *उपरोक्त, पृ. 79*
5. *इन्द्राज सिंह (2018) महिला सशक्तिकरण, डायमंड बुक्स, न्यू देहली, पृ. 8*
6. *पूजा श्रीवास्तव (2019) सामाजिक संरचना में नारी सशक्तिकरण की अवधारणा, विकास प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 73*
7. *निखिल राज (2019) महिला सवलीकरण हवेन्स पब्लिकेशन, विलासपुर, पृ. 109*
8. *योजना, दिसम्बर 2020, पृ. 01*
9. *कुरुक्षेत्र, नवम्बर 2021, पृ. 49*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 17-22

प्राचीन भारत में पशु पालन : सैंधव सभ्यता से उत्तर वैदिक काल तक

डॉ० राजेश कुमार सिंह *

गुंजन बैस **

आरम्भिक काल से ही भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड कृषि एवं पशुपालन रहा है। मानव सभ्यता के विकास में प्रारम्भ से ही पशुओं का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। भूमि के अतिरिक्त मनुष्य के विभिन्न आर्थिक कार्यों के आधार पशु थे। पशुओं ने प्राचीन भारत के लोगों के आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन को काफी प्रभावित किया। पशुओं का कई दृष्टियों से महत्त्व था। सैनिक दृष्टि से भी अश्वारोही तथा रथारोही सैनिकों एवं हाथियों ने यहाँ के युद्धों में निर्णायक भूमिका निभायी है। अनेक विद्वानों ने प्राचीन भारत के आर्थिक जीवन का अध्ययन करते समय पशुओं के पालन सम्बन्धी विभिन्न पक्षों पर थोड़ा–बहुत लिखा है। ऐसे विद्वानों में एफ० ई० ज्वाइनर की पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ डोमेस्टिकेटेड एनिमल्स', ए० सी० दास की ऋग्वैदिक इंडिया जी० एस० धुर्ये की 'इकोनॉमिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन एन्शियेन्ट इंडिया' डोरिस श्रीनिवास की 'कान्सेप्ट ऑफ काउ इन द ऋग्वेद' तथा ज्ञानेश्वरी जायसवाल की प्रसिद्ध पुस्तक 'प्राचीन भारत में पशुपालन' काफी उल्लेखनीय है। उपरोक्त लेखकों ने अपनी पुस्तकों में पशुओं की उपयोगिता का वर्णन प्रसंगवश किया है। विद्वानों ने पशुपालन की महत्ता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि गाय–भैंस दूध एवं माँस के लिए पाले जाते थे और भेड़–बकरी दूध, माँस, खाल तथा ऊन के लिए। बैल, अश्व, गधे, खच्चर, एवं ऊँट भारवाही पशु थे और गाड़ी अथवा रथ भी खींचते थे। बैल और भैंस हल जोतते थे। हाथी एवं घोड़े युद्ध तथा सवारी के काम में आते थे। कुत्ते रखवाली के लिए पाले जाते थे और शिकार करने में सहायता करते थे। सभी पशुओं की खाल का किसी न किसी रूप में उपयोग किया जाता था। उनके सींग, खाल, लोम, पंजे, खुर, चर्बी, स्नायु, खोपड़ी आदि से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती

* सह आचार्य, इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ० राममनोहर लोहिया अवध वि०वि० अयोध्या, उ०प्र०

** शोध छात्र, इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ० राममनोहर लोहिया अवध वि०वि० अयोध्या, उ०प्र०

थीं। अर्थशास्त्र में पशुओं के गोबर, हड्डियों एवं माँस का खाद के रूप में उपयोग किये जाने का विवरण है।[1] गोबर को मिट्टी में मिलाकर मृत्पात्र बनाये जाते थे। गोबर से फर्श एवं दीवारों आदि की लिपाई भी की जाती थी। गाय का गोबर धार्मिक अनुष्ठानों में भी प्रयुक्त होता था।[2]

पशुओं को सामान्यतः तीन प्रमुख वर्ग में विभाजित किया गया है– पालतू, जलचर और वन्य पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, अश्व, गधा, खच्चर, ऊँट, कुत्ता, बिल्ली एवं सूअर प्रमुख हैं। महाभारत में पालतू पशुओं में गाय, बकरी, भेड़, अश्व, खच्चर एवं गधे को भी शामिल किया गया है।[3] इस सूची में बैल का उल्लेख ध्यातव्य है। ऋग्वेद में भी पशु शब्द मनुष्य के लिए आया है।[4] जलचरों में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ, कछुए, घड़ियाल, बत्तख, केकड़े, शंख, शुक्तियाँ एवं घोंघे आदि शामिल हैं। व्याघ्र, सिंह, तेंदुआ, भेड़िया, श्रृंगाल, भालू, गैंडा, बंदर के अलावे विभिन्न प्रकार के हिरण, हाथी एवं भैंसा प्रमुख वन्य पशु हैं। महाभारत में प्राप्य वन्य पशुओं की सूची में केवल सिंह, व्याघ्र, भैंसा, हाथी, भालू एवं बन्दर को ही रखा गया है।[5]

जब मनुष्य खानाबदोश था घूम–घूमकर भोजन का संचय तथा जंगली पशुओं का शिकार करता था तब से पशुपालन की परम्परा भारत में थी। प्राचीन गुहा चित्रों से ज्ञात होता है कि शिकार में जाते समय पालतू पशुओं को साथ ले जाना, पशुओं की पीठ पर बैठकर शिकार करना उनकी दिनचर्या थी। गुहाओं में अंकित चित्रों में वहाँ दो प्रकार के पशु स्पष्ट दीखते हैं– एक शिकारी पशु जो शिकारी के साथ हैं और दूसरा शिकार वाला वन्य पशु, जिस पर शिकारी तथा उसके शिकारी पशु कुत्ते आदि आक्रमण कर रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि पालतू पशु शक्ति के कारण मनुष्य का सहयोगी था और वन्य पशु इस जमात से अलग था। इसके बाद इन पालतू पशुओं के सहयोग से खेती भी प्रारम्भ हुई। ये पालतू पशु शिकारी पशुओं से भिन्न थे उत्पादन के सहयोगी के रूप में उत्पादन के लिए रखे जाने लगे। इनसे दूध तो प्राप्त होता ही था साथ ही ये खेती में जोताई, बोवाई, मड़ाई के काम आते होंगे और सामानों के ढोने के प्रयोग में लाए जाते होंगे। फिर धीरे–धीरे मनुष्य ने इन्हें अपने नियंत्रण में रखकर अपने आर्थिक जीवन को विकसित किया।[6]

भारत में पशुपालन की ओर लोगों की प्रवृत्ति के पीछे दो कारण थे– एक तो कुछ पशुओं को देवता का वाहन और देवांश का भागीदार माना जाता

था, जैसे– बैल को शंकर का वाहन सिंह को दुर्गा का वाहन और दूसरी ओर गौ को माता माना जाना आदि। यह परिस्थिति थी कि किस क्षेत्र में किस पशु को किस रूप में स्वीकार किया गया। पर विश्व में सर्वत्र पशुपालन का कार्य एक साथ नहीं प्रारम्भ हुआ। भारत में ही सर्वप्रथम इसकी महत्ता दीखती है। यहाँ पशुपालन का क्रम नव पाषाण काल से पहले माना जा सकता है।

सैंधव संस्कृति की अर्थव्यवस्था में पशुपालन महत्त्वपूर्ण था। इस संस्कृति के विभिन्न स्थलों में मिली पशुओं की हड्डियों, मुद्राओं और मृत्पात्रों आदि पर प्राप्य उनके चित्रों तथा ताम्बे, कांसे एवं मिट्टी आदि की बनी मूर्तियों से हमें विभिन्न वन्य तथा पालतू पशुओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

पालतू पशुओं में गाय, कूबड़युक्त एवं बिना कूबड़ वाला बैल, सूअर, भेड़, बिल्ली, बकरी, भैंस, कुत्ता एवं गधा प्रमुख थे। गाय और बैल की हड्डियाँ सर्वाधिक मात्रा में प्राप्त हुई हैं। बैलों की मूर्तियों के अतिरिक्त अनेक मुद्राओं आदि पर भी उनके अंकन मिलते हैं। बैल का सर्वत्र सजीव चित्रण हुआ है। कूबड़दार बैल संभवतः सर्वप्रथम दक्षिण एशिया में पालतू बनाया गया था और भारत में इसके प्राचीनतम अवशेष अभिनूतन काल में प्राप्त हुए हैं। मोहनजोदड़ों में हड़प्पा संस्कृति के ऊपरी सतह से घोड़े की हड्डियाँ मिली थीं। लोथल में भी अश्व की तीन मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। सैन्धव संस्कृति के बाद वाले उपकाल में इस क्षेत्र के लोगों को अश्व की जानकारी थी, किन्तु इन पशु के अंकनों एवं मूर्तियों के सर्वथा अभाव और केवल सुरकोटडा में ही इसकी हड्डियों के पाये जाने से स्पष्ट है कि अश्व का बहुत सीमित रूप में उपयोग किया जाता रहा होगा, यद्यपि सिन्धु घाटी तथा गांधार प्रदेश बहुत प्राचीन काल से ही उत्तम घोड़ों के लिए प्रसिद्ध रहे है।[7]

सैन्धव काल में सूअर पालतू एवं जंगली पशु था। कुत्ते की कई प्रजातियों के प्रमाण मिले हैं जिनका उपयोग सुरक्षा एवं शिकार के लिए किया जाता था। जलचरों में कछुआ, बत्तख, घड़ियाल एवं विभिन्न प्रकार की मछलियों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। वन्य पशुओं में व्याघ्र, गैंडा, हाथी, भैंसा तथा हिरण के चित्रण एक साथ मोहनजोदड़ों से प्राप्त प्रसिद्ध मुद्रा में शिव–पशुपति के साथ में मिलते हैं। बारहसिंगा, सांभर एवं भैंसे की भी मूर्तियाँ तथा अंकन प्राप्त हुए हैं। गैंडे के चित्रण आमरी के मृत्पात्रों तथा मोहनजोदड़ों की उपर्युक्त मुद्रा के अतिरिक्त कई अन्य मुद्राओं में प्राप्त हुए हैं।[8]

ऋग्वैदिक काल में कृषि तथा पशुपालन आर्यों के मुख्य धंधे थे। कृषि के लिए बैल और गाय की अत्यन्त आवश्यकता थी जिसको सम्पति के रूप में माना जाता था। इसी कारण गोचर भूमि का महत्व था, जहाँ गाय और बैल दिन में चरते थे।[9]

उत्तरवैदिक काल में भी जब आर्यों के जीवन में स्थायित्व आ चुका था और वे कृषि के लिए अनुकूल गंगाघाटी के मैदानों में बस गये थे, उनका मुख्य व्यवसाय पशुपालन ही रहा और अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वे बड़ी संख्या में पशु रखते थे। अथर्ववेद, वाजसनेयी संहिता, मैत्रायणी, तैत्तिरीय, काठक संहिताओं और शतपथ ब्राह्मण से पता चलता है। कि हल में छह, आठ, बारह और चौबीस बैल तक लगाये जाते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि हल काफी बड़ा और भारी होता था। उपज को बढ़ाने के लिए वे खाद के महत्त्व को भी समझते थे जो पशु के गोबर से ही तैयार होती थी।

उत्तरवैदिक ग्रंथों में पशुओं की वृद्धि के लिए देवताओं की स्तुतियाँ की गई हैं और नवीन चारागाहों की खोज के लिए पूषण देवता से प्रार्थना की गई है।[10] ऋग्वेद में पूषण को पशुओं का रक्षक भी कहा गया है।[11] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, गाय और बैल सभी का पोषण करते हैं, इसलिए उनका माँस नहीं खाना चाहिए और धर्म का अभ्युदय उन्हीं परिवारों में होता है जहाँ पशु बड़ी संख्या में पाले जाते हैं।[12] दान स्तुतियों में राजाओं एवं समृद्ध व्यक्तियों द्वारा बड़ी संख्याओं में पशुओं को दान में देने के विवरण मिलते हैं।

वैदिक लोग प्रायः बड़ी संख्या में गाय पालते थे, इसलिए विभिन्न लोगों की गायों को पहचानने के लिए उनके कानों तथा शरीर के अन्य अंगों पर चिन्ह अंकित कर दिये जाते थे। गाय दूध देती थी। गाय के दूध से दही, मक्खन तथा घी आदि बनाये जाते थे। गाय की चर्बी तथा खाल का विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता था। उसकी खाल रथों पर बिछायी जाती थी। खाल से चटाइयाँ तथा तरल पदार्थों को रखने के लिए थैले भी बनाये जाते थे। नवविवाहिता वधू को गाय की खाल पर बिठाए जाने का उल्लेख है।[13] क्रय–विक्रय की मानक वस्तु के रूप में गाय का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के एक मंत्र में एक व्यक्ति कहता है–''मेरी यह इन्द्र की प्रतिमा दस गायों को कौन खरीदेगा।'' अन्यत्र कहा गया है कि इस प्रतिमा को 100, 1,000 तथा

10,000 गायों में भी नहीं बेचा जाएगा।[14] गायों की संख्या के आधार पर लोगों की सम्पत्ति का अनुमान किया जाता था।

गाय की विविध उपयोगिताओं के कारण उसे अधन्या अर्थात् अवध्या माना गया है। वैदिक ग्रंथों में गाय का माँस खाने का भी उल्लेख मिलता है। यज्ञों में गायों, बैलों एवं बकरों आदि की बलि चढ़ायी जाती थी और उनका माँस भी खाया जाता था। याज्ञवल्क्य तथा अगस्त्य ऋषियों को भी गोमाँस खाने वाला बताया गया है।[15] उत्तरवैदिक ग्रंथों में गोयज्ञ, गवच्छ एवं गोविकर्ता के भी उल्लेख हैं। रामशरण शर्मा ने गोविकर्ता का अर्थ गाय मारने वाला लगाया है और गोयज्ञ एवं गवच्छ का अर्थ गाय की बलि। गोविकर्ता संभवतः शिकारियों का अधिकारी था जिसका कार्य माँस आदि का वितरण करना रहा होगा।[16]

वैदिककाल में बैल मुख्यतः गाड़ी, रथ खींचने, हल जोतने एवं बोझा ढोने के कामों में लगाये जाते थे। बैल का माँस भी खाया जाता था।[17] उत्तरवैदिक ग्रंथों में हल खींचने में 2, 4, 6, 12 और 24 बैलों तक के जोते जाने के उल्लेख हैं। इस काल में घोड़ा भी महत्त्वपूर्ण पशु था। उत्तरवैदिक काल में अश्वमेघ यज्ञ के प्रचलन से भी घोड़े की महत्ता का संकेत मिलता है। घोड़े रथ एवं गाड़ी खींचने, सवारी करने, बोझा ढोने तथा दौड़ में प्रयुक्त होते थे। उत्तरवैदिक काल में इन पशु का कदाचित् युद्ध में भी उपयोग होने लगा था। घोड़े के अतिरिक्त घोड़ियाँ फुर्तीली होने के कारण रथ एवं गाड़ियाँ अतिरिक्त खींचने के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती थीं।

उत्तरवैदिक काल तक आर्य लोग हाथी से भली–भाँति परिचित हो गये थे। उन्होंने उसे पालतू भी बना लिया था। ऐतरेय ब्राह्मण में सफेद दाँत वाले काले हाथी का उल्लेख है। हस्तिपालन ने उत्तरवैदिक काल में एक व्यवसाय का रूप ले लिया था। इस काल में ऊँट (उष्ट्र), खच्चर (अश्वतर) एवं खच्चरी (अश्वतरी) भी गाड़ी खींचने तथा बोझा ढोने के काम आते थे। ऊँट पर सवारी भी की जाती थी। खच्चरों की शक्ति की प्रशंसा की गई है।[18]

संदर्भ

1. *अर्थशास्त्र, 2/24*
2. *मिश्र, श्याम मनोहर, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, वाराणसी, 1997, पृ०.98*
3. *बोस,ए.एन, सोशल एण्ड रूलर इकोनॉमी ऑफ नॉदर्न इण्डिया, वाल्यूम–2, कलकत्ता, 1942–45, पृ०–97*

4. ऋग्वेद 3/62/14

5. बोस,ए.एन.पूर्वोक्त

6. स्हाय, शिवस्वरूप, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 1998,पृ.356

7. ऋग्वेद, 10/75/18

8. मिश्र, श्याम मनोहर, पूर्वोक्त, पृ. 100

9. जैन, कैलाशचन्द्र, प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएं मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल,, 1987 पृ.133

10. बंधोपाध्याय.एन.सी; इकोनामिक लाफ एण्ड प्रोग्रेस इन एन्शियेण्ट इंडिया, कलकत्ता, 1945, पृ. 139

11. ऋग्वेद, 3/1/2/12

12. शतपथ ब्राहमण, 18/8/1/3

13. ऋग्वेद, 5/48/18

14. ऋग्वेद, 4/24/10

15. तैत्तिरीय बाहमण, 2/7/11/1

16. शर्मा, रामशरण, आस्पेक्ट्स ऑफ पालिटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीट्यशन इन एन्शिएण्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1991 पृ. 149

17. वृहदारण्यक उपनिषद्, 6/3/13

18. बंधोपाध्याय,एल.सी. पूर्वोक्त. पृ. 143

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ.23-30

भारतीय राजनीति का शुद्धिकरण एक आवश्यकता : डॉ० अंबेडकर के संदर्भ में विशेष अध्ययन

*डॉ० राजेन्द्र कुमार गोठवाल**

*डॉ० अरुण कुमार***

सारांश

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र है। इसकी यह पहचान ही इसे विष्व में मान–सम्मान प्रदान करती है। वर्तमान में इसमें विकृति आई है जिसके कारण भारत की छवि विष्व बिरादरी में गिरी है। इसके पीछे मुख्य कारण भारतीय राजनीति का पतन है। भारतीय राजनीति में संविधान की अवहेलना, अपराधी प्रवृत्तियाँ, दलगत संकीर्ण स्वार्थता, आदर्ष विचारधाराओं का पतन, सत्ताधारी दलों का भ्रष्टाचार, क्षेत्रीयवादिता, जातियता आदि चरम अवस्था में पहुँच चुके हैं। सामान्य जनता भी भ्रष्ट राजनीति के दुष्प्रभाव से अछूती नहीं रही है। जनता वर्गों में लामबंद है। उसका अपना विवेक खो चुका है। परिणामस्वरूप वह दुःख भोग रही है और सत्ताधारी उसकी इस परिस्थिति की आड़ में सत्ता का सुख एवं विलासी जीवन जी रहे हैं। लोकतंत्र के चार स्तंभ कहे जाने वाली संस्थाऐं विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और मीडिया सत्ताधारियों के हाथों की कठपुतली बन चुके हैं।

समकालीन भारत में लोकतंत्र को बचाने के लिए आवश्यक है कि भारतीय राजनीति का शुद्धिकरण किया जाए। भारतीय राजनीति में भ्रष्ट आचरण की प्रवृत्ति स्वतंत्रता के बाद की परिघटना नहीं बल्कि इसका आवागमन स्वतंत्रता से पूर्व हो चुका था। 1940 में रानाडे के 101वें जन्म–दिवस पर डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इषारा करते हुए कहा कि ''भारतीय राजनीति में धन का प्रवेष हो चुका है। महापुरूष समाचार जगत की आड़ में अपना प्रभाव जमाने के लिए भारतीय राजनीति को पतन की ओर धकेल रहे हैं।उन्होंने अपने आधे अनुयायिओं को मुर्ख तो आधे अनुयायियों को पाखण्डी बनाया है।''

---

* असिस्टेंट प्रो., राजनीति विज्ञान, राजकीय कन्या महाविद्यालय, राजगढ़, अलवर (राज.)

** सह–आचार्य, राजनीति विज्ञान राजकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़, अलवर, (राज.)

दुर्भाग्य से उनकी चेतावनियों को सत्ताधारी और प्रभावकारी दलों ने उपेक्षित किया जिसका परिणाम वर्तमान भारत में स्पष्टतः दिखाई पड़ रहा है।

कुंजी शब्द – शुद्धिकरण, भ्रष्टाचार, राजनेता, लोकतंत्र

अध्ययन के उद्देश्य

1. भारत में लोकतंत्र के गिरते स्तर के कारणों की खोज करना।
2. भारतीय राजनीति का गिरता स्तर और उसका समाधान खोजना।
3. भारतीय राजनीति के शुद्धिकरण में डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारों का अध्ययन करना।

परिचय

डॉ. भीमराव अंबेडकर 'भारतीय संविधान निर्माता' के रूप में विख्यात है। वे एक कुषाग्र कानूनवेत्ता के अतिरिक्त एक कुशल और दूरदर्शी राजनेता भी थे। उनके लिए राजनीति राष्ट्र और जनसेवा का अवसर थी। उन्होंने अपने चरित्र को वर्तमान राजनीतिक दुर्गुणों से दूषित नहीं होने दिया। उनकी वाणी कठोर थी किंतु स्पष्ट। इसी कारण वे तत्कालीन भारतीय राजनीति के विवादित व्यक्ति रहे, परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे राष्ट्रभक्त नहीं थे या अन्य किसी राजनेता की राष्ट्रभक्ति से कम। उनकी निर्भीकतापूर्ण वाणी और तत्कालीन और भविष्य की समस्याओं पर प्रस्तुत दृष्टिकोण कुछ लोगों को परेषान करने वाले होते थे।

भारतीय लोकतंत्र के गिरते स्तर के कारण और राजनीति के शुद्धिकरण की आवश्यकता

भारत में लोकतांत्रिक संस्था कोई नई व्यवस्था नहीं अपितु प्राचीन भारत में भी यह प्रचलित थी। जिसमें धीरे–धीरे विकृतियों के आने के कारण और बाह्य आक्रांताओं की नीतियों की वजह से लुप्त होती चली गई।

"प्राचीन भारत में गणतांत्रिक शासन एवं प्रतिनिधिक विचार–विमर्ष की संस्थाऐं और स्थानीय स्वषासन की संस्थाएँ थी। इन संस्थाओं में वर्तमान लोकतांत्रिक संस्थाओं की भाँति नियमों का पालन किया जाता था।"[1]

राज्य का शासक किसी भी वर्ग से चुना जा सकता था यदि वह शासक बनने के योग्य हो। घनानंद, चंद्रगुप्त मौर्य, अषोक आदि दृष्टांत रूप में मौजूद है अर्थात् कोई जाति बंधन नहीं था।'' एक शूद्र भी अपनी योग्यता के बल पर शासक बन सकता था। शासक राज्यप्रमुख होने के पश्चात् भी अपनी मनमानी नहीं कर सकता था। उसे तात्कालिक शासन नियमों के अनुरूप आचरण करना पड़ता था। उसे शासक का पदग्रहण करने से पूर्व प्रजा–सेवा का प्रण लेना अनिवार्य था और यदि कोई शासक अपने पद के नियमों के विपरीत कार्य करता था तो उसे न केवल पद से वंचित होना पड़ता था बल्कि परिवार के सदस्यों से वंचित होना पड़ता था।''[2]

धीरे–धीरे प्राचीन लोकतांत्रिक शासन में जातीय एवं वर्ग संघर्ष और बाह्य आक्रांताओं की स्वार्थपूर्ण नीतियों ने लोकतांत्रिक संस्थाओं का अंत कर दिया। इसके बाद एक लंबे समय के पश्चात् 26 जनवरी 1950 को नये संविधान के साथ ही लोकतांत्रिक भारत का आगमन हुआ। एक नई आषा और विष्वास के साथ लोकतांत्रिक संस्थाओं ने कार्य प्रारंभ किया, परंतु शीघ्र ही राजनीतिक दलों और स्वार्थी गुटों के कारण लोकतांत्रिक संस्थाऐं बदनाम होने लगी और यह सिलसिला रुकने का नाम नहीं ले रहा। स्थिति यह आ गई कि लगता है भारत में लोकतंत्र का पूर्णतः अंत हो चुका है। जनता के शासन के स्थान पर नेताओं का शासन दिखाई देता है। नेताओं का चारित्रिक पतन हो चुका है। सत्ता और स्वार्थ के लिए अनैतिक और असंवैधानिक कार्य करने में कोई झिझक और शर्म नहीं है। संसद जैसी संस्थाऐं ''गप–षप'' की दुकानें नजर आने लगी। सरकारी मषीनरी जनसेवा की अपेक्षा सत्ता पक्ष की सेवा में लगी हुई है।

भारत जो दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र माना जाता रहा है। वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी में आलोचनाओं का षिकार हो रहा है।

इसी कारण यह आवश्यक हो जाता है कि भारत में राजनीति का शुद्धिकरण किया जाए क्योंकि ''जैसा राजा वैसी प्रजा'' का मुहावरा वर्तमान भारतीय राजनीति पर सही चरितार्थ होता है।

जैसा कि हमने पूर्व में लिखा है कि ''भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था अतिप्राचीन है और पूर्व में प्रचलित लोकतंत्र के पतन का मुख्य कारण

राजनीतिक चरित्र का पतन रहा है। नवभारत के लोकतंत्र की नींव रखते समय डॉ. अंबेडकर का 25 नवंबर 1949 को इसी संदर्भ में चिंताओं भरा उद्‌बोधन प्रासंगिक हो जाता है। जिसमें उन्होंने कहा था कि "26 जनवरी 1950 को भारत एक स्वतंत्र देष होगा। उसकी स्वतंत्रता का क्या होगा ? क्या वह अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कर सकेगा या फिर उसे खो देगा ?[3]

उन्होंने भारतीयों के चारित्रिक बिंदु पर इषारा करते हुए कहा कि "भारत ने अपनी स्वतंत्रता एक बार नहीं खोई बल्कि बार–बार अपने ही कुछ लोगों की कृतघ्नता तथा फूट के कारण आई और गई है .... यही विचार मुझे चिंताओं से भर देता है। इस तथ्य के कारण कि जाति और मत–मतांतर के रूप में हमारे प्राचीन दुष्मनों के साथ राजनीतिक मत–मतांतर के आधार पर राजनीतिक पक्ष बनते चले आ रहे हैं, यह चिंता और भी अधिक उग्र रूप धारण कर लेती है। क्या भारतीय मत–मतांतरों को देष से श्रेष्ठ मानेंगे या देष को इनसे श्रेष्ठ मानेंगे ?[4]

डॉ. अंबेडकर केवल संविधान निर्माता ही नहीं, बल्कि एक सच्चे राष्ट्रभक्त थे। उन्होंने समय–समय पर भारत की चिंताओं पर प्रकाष डाला है। उनकी चिंताऐं हमें आज प्रासंगिक दिखाई पड़ती है। अतः भारतीय लोकतंत्र और राजनीतिक शुद्धिकरण पर उनके विचारों का अध्ययन समीचीन होगा।

डॉ. अंबेडकर के राजनीतिक पतन पर विचार और चेतावनियाँ

लोकतंत्र और चुनावों के संदर्भ में विचार :– लोकतंत्र के संबंध में डॉ. अंबेडकर की धारणा बिल्कुल स्पष्ट थी। उनका मानना था कि "लोकतंत्र गणतंत्र और संसदीय सरकार से नितांत भिन्न है।" लोकतंत्र की जड़ें सरकार के प्रकार या श्रेणी में नहीं, बल्कि कहीं इनसे से भी बढ़कर हैं। प्राथमिक तौर पर यह सम्मिलित रूप में रहने की एक पद्धति है। इसकी जड़ों को सामाजिक संबंध में, समाज का निर्माण करने वाले लोगों के बीच सम्मिलित जीवन की शर्तों को तलाषा जाना चाहिए।"[5]

उनका मानना था कि लोकतंत्र के नाम पर राजाओं, सामंतों, नवाबों और अंग्रेज अधिकारियों के भारतीय संस्करण की अपेक्षा शुद्ध लोकतंत्र होना चाहिए जिसमें चुनावों में योग्य आम आदमी खड़ा हो सके। चुनावों का आधार धन का बल न हो क्योंकि धन के बल पर निर्वाचित प्रतिनिधि अपने स्वार्थ–हितों

को पूरा करने की कोषिष करते हैं। अतः उनका आग्रह था कि ''देष और समाज का उत्तरदायित्व निभाने वाला गरीब, योग्य और ईमानदार आम नागरिक ही देष की व्यवस्थापिका और विधानसभाओं में चुना जाए ताकि वह देष में सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को दूर करते हुए देष का भविष्य सुधारे।

वर्तमान में लोकतंत्र चुनाव की प्रक्रिया पूर्णतः मिट चुकी है, जिसका डॉ. अंबेडकर ने स्वप्न देखा था। व्यवस्थापिका और विधानसभाऐं स्वार्थों का अखाड़ा सिद्ध हो रही हैं। लोकतंत्र केवल दिखावे का साधन मात्र है।

राजनीतिक और पूंजीपतियों की सांठगांठ :– भारतीय राजनीति में राजनीतिज्ञों और पूंजीपतियों की सांठगांठ का मुद्दा वर्तमान में बहुत छाया रहता है किंतु यह घटना कोई नई नहीं बल्कि पुरानी है। नवभारत के शुरुआती दौर में डॉ. अंबेडकर ने जस्टिस रानाडे के जन्म दिवस (1940) पर तात्कालिक दो प्रमुख नेताओं की ओर इषारा करते हुए कहा था कि ''समाचार जगत की प्रषंसा के पीछे इन महापुरूषों ने अपने प्रभाव जमाने की जो भावना प्रदर्षित की है वह सभी सीमाऐं पार कर चुकी हैं और अपने अनुयायियों सहित देष की राजनीति का पतन किया है। अपने इस प्रभाव के जरिये अपने आधे अनुयायियों को मुर्ख और आधों को पाखण्डी बनाया है। अपनी इस सर्वोच्चता की स्थापना में उन्होंने बड़े औद्योगिक घरानों एवं पूंजीपतियों की सहायता ली है। संभवतः हमारे देष में प्रथम बार पैसे ने संगठित शक्ति के रूप में प्रवेष किया है।''[6]

संभवतः डॉ. अंबेडकर की यह चेतावनी दूरदर्षिता लिए हुए भारतीय राजनीति के शुद्धिकरण की ओर स्पष्ट संकेत था जिसे नहीं समझा गया। वर्तमान भारतीय राजनीति में राजनीतिज्ञों–पूंजीपतियों की सांठगांठ और उनके बीच धन का प्रवाह स्पष्ट दिखाई देता है।

राजनीतिक दलों की शुद्धता पर बल :– डॉ. अंबेडकर राजनीतिक दलों के ऐसे स्वरूप से परहेज करते थे, जो पूंजीपतियों के चंदों पर फलते–फूलते थे, चुनावों में जनता को गुमराह करते थे, जनता चुनाव जीतने का साधन मात्र थी। चुनाव जीतने के पश्चात् अपने पूंजीपति मित्रों के हितों को साधने का काम करते थे। जनता से उनका कोई सरोकार नहीं होता।

वे आम जनता के हित एवं समर्थन पर राजनीतिक दल की स्थापना के हिमायती थे। उन्होंने आम जनता के हित और समर्थन से इण्डियन लेबर

पार्टी, शेड्यूल कास्ट फेडरेषन और रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया जैसी पार्टियों की स्थापना की।

उन्हें अनेकों बार कांग्रेस में लाने का प्रयास किया। इस संदर्भ में स्वामी सहजानंद ने उनसे व्यक्तिगत संपर्क किया परंतु डॉ. अंबेडकर ने यह कहते हुए स्पष्ट मना कर दिया कि ''कांग्रेस आम आदमी एवं दलितों का भला करने वाली पार्टी नहीं।''[7]

प्रतिनिधियों के आचार–संहिता :– देष के प्रथम विधि–मंत्री के रूप में डॉ. अंबेडकर ने जनप्रतिनिधियों के लिए आचार–संहिता बनाने हेतु ''जनप्रतिनिधित्व विधेयक, 1950 में संसद में प्रस्तुत किया किंतु देष का दुर्भाग्य था कि उनके प्रयासों को तत्कालिक सरकार ने गंभीरता से नहीं लिया जिसका परिणाम यह है कि राजनीतिज्ञों का उच्छृखंल व्यवहार एक विकट समस्या के रूप में नजर आ रहा है।

मंत्रियों की वेतन निर्धारण :– 1937 में बंबई कौंसिल के सदस्य के रूप में डॉ. अंबेडकर ने मंत्रियों के वेतन निर्धारण के संदर्भ में कहा था कि ''मंत्रियों का वेतन निर्धारण 4 सिद्धांतों से नियंत्रित होना आवश्यक है। प्रथम – सामयिक स्तर, द्वितीय – योग्यता, तृतीय – जनतंत्र, चतुर्थ – प्रषासन की पवित्रता या निष्ठा अर्थात् देषवासियों के जीवन स्तर को ध्यान में रखकर जनप्रतिनिधियों का वेतन निर्धारित किया जाए।[8] परंतु वर्तमान में जनप्रतिनिधियों का वेतन निर्धारण जनप्रतिनिधियों के हाथों में जादुई छड़ी के रूप में है, जिस पर बिना चर्चा के सभी राजनीतिक दल सहमत हो जाते है और जब चाहे वेतन बढ़ोतरी का विधेयक पारित करवा लेते हैं बिना किसी समय व्यर्थ किये। इसके विपरीत सामान्य जनता के हित संबंधी विधेयक ऐसे ही लंबे समय तक अटके रहते हैं।

अतः मंत्रियों के वेतन निर्धारण हेतु जन समर्थन सहित शर्तें निर्धारण आवश्यक हो गया है।

मंत्रियों की योग्यता एवं अयोग्यता संबंधी विधेयक :–मंत्रियों की योग्यता एवं अयोग्यता के संबंध में डॉ. अंबेडकर ने मई, 1951 में संसद में विधेयक प्रस्तुत किया था, परंतु सांसदों की अनिच्छा के चलते वह विधेयक पारित नहीं हो सका। यह देष का दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है ? जिस देष में जनप्रतिनिधि

आपराधिक प्रवृत्ति से युक्त हो, उस देष का विकास कैसे संभव हो सकता है। वर्तमान में भारतीय राजनीति इसी संक्रमणकाल के दौर से गुजर रही है। यह कहना कोई अतिषयोक्ति नहीं होगा। अतः देश के सत्ताधारकों की योग्यता–अयोग्यता का निर्धारण आवश्यक है।

व्यक्ति पूजा के प्रति आग्रह – डॉ. अंबेडकर इस तथ्य से भली–भाँति परिचित थे कि भारत की भूमि व्यक्ति पूजा के लिए उर्वरा है तथा राजनेता व्यक्ति पूजा की आड़ में जनता को मुर्ख बनाने से बाज नहीं आयेंगे। इसलिए उन्होंने ''गांधी, जिन्ना और रानाडे'' शीर्षक भाषण में व्यक्ति पूजा से विरोध करते हुए ''कार्लाइल की उस उक्ति का सहारा लिया जिसमें उन्होंने महापुरूषों के संदर्भ में लिखा था कि ''वे अनेकों बैंक नोटों के समान है। बैंकों के नोटों की भाँति वे स्वर्ण के प्रतीक है। हमें देखना है कि वे जाली नोट तो नहीं''[9] डॉ. अंबेडकर ने उक्त उक्ति के आधार पर कहा कि ''मैं मानता हूँ कि महापुरूषों की पूजा में अधिक सचेत रहना चाहिए। इस कारण इस देष में हम एक ऐसी स्थिति में पहुँच चुके हैं कि जहाँ प्रत्येक मोड़ पर बोर्ड पर लिखा होगा कि ''जेबकतरों से सावधान की अपेक्षा लिखा होगा कि ''महापुरूषों से सावधान''... .... नायक तो निकल गये हैं, नीम हकीम भीतर घुस गये हैं।[10]

आज डॉ. अंबेडकर के द्वारा विभूति–पूजा की चिंता स्पष्ट दिखाई दे रही है। भारतीय राजनीति में महापुरूषों की अपेक्षा नीम हकीम घुस आये हैं। जो जनता को मुर्ख बनाकर लूट रहे हैं। भोली जनता उन्हें नायक मानकर भक्ति–पूजा कर रही है।

निष्कर्ष

जिस तरह वर्तमान भारतीय राजनीति का चारित्रिक पतन हो रहा है और राजनीति दूषित दिखाई देती है। उसने भारतीय लोकतंत्र की धज्जियाँ उड़ा दी है। संवैधानिक संस्थाऐं इन नायकों की वजह से खेल का मैदान बन चुके हैं। जनप्रतिनिधियों के द्वारा आम नागरिकों को मुर्ख बनाकर लूटा जा रहा है। जनता इनके धोखों से अंजान रहकर नायक पूजा में व्यस्त रहती है किंतु जब उनके समक्ष अपने नायक का राज खुलता है, तब तक वह ठगा महसूस करती है। उक्त संदर्भ में निःसंदेह डॉ. अंबेडकर के द्वारा भारतीय राजनीति के शुद्धिकरण के किये प्रयास और अषुद्धियों के विरूद्ध प्रस्तुत चेतावनियाँ निःसंदेह प्रासंगिक और उपयोगी है।

संदर्भ

1. *कश्यपु सुभाष ''संसदीय लोकतंत्र का इतिहास'' पृ.1, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि.वि.,*
2. *कश्यपु सुभाष ''संसदीय लोकतंत्र का इतिहास'' पृ.2–3 हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि.वि.,*
3. *संविधान सभा वाद–विवाद, खण्ड 5, पृ. 977, भारत सरकार*
4. *संविधान सभा वाद–विवाद, खण्ड 5, पृ. 978, भारत सरकार*
5. *रतु, नानक चंद, ''बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर संस्मरण और स्मृतियाँ'' पृ. 120–121, सम्यक् प्रकाषन दिल्ली*
6. *बाबा साहेब अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय खण्ड (1), पृ. 273, अंबेडकर प्रविष्ठान, भारत सरकार, दिल्ली*
7. *हर्ष, हरदान ''डॉ. भीमराव अंबेडकर जीवन और दर्षन'' जयपुर, पृ. 29, पंचषील प्रकाशन, जयपुर*
8. *हर्ष, हरदान ''डॉ. भीमराव अंबेडकर जीवन और दर्षन'' जयपुर, पृ. 191, पंचषील प्रकाषन, जयपुर*
9. *हर्ष, हरदान ''डॉ. भीमराव अंबेडकर जीवन और दर्षन'' जयपुर, पृ. 277 पंचषील प्रकाषन, जयपुर*
10. *हर्ष, हरदान ''डॉ. भीमराव अंबेडकर जीवन और दर्षन'' जयपुर, पृ. 277, पंचषील प्रकाषन, जयपुर*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ.31-40

सुखमृत्यु : अस्तित्व बनाम अनस्तित्व–एक नैतिक अध्ययन

डॉ० शीलम भारती *

''निःस्वार्थ बुद्धि से, शान्त चित्त से, किसी भी जीव की भौतिक या आध्यात्मिक भलाई के लिये दिया गया दुःख या उसका प्राणहरण शुद्ध अहिंसा हो सकता है''

सारांश

जीवन प्रकृति का अनमोल उपहार है। प्रत्येक व्यक्ति का यह प्राकृतिक अधिकार है कि वह गुणवत्तापूर्ण एवं गरिमामय जीवन व्यतीत करे। कभी–कभी परिस्थियाँ इतनी कष्टकारी हो जाती हैं कि व्यक्ति के अस्तित्व पर ही प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या उसका जीवन सार्थक है या घनघोर कष्ट एवं पीड़ा को सहते हुए आगे का जीवन भी इसी प्रकार व्यतीत करे। यहीं से सूखमृत्यु की नैतिकता और अनैतिकता पर प्रश्न उठनें लगतें हैं। इस शोधपत्र में सुखमृत्यु की नैतिकता और अनैतिकता पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

मख्य शब्द – सुखमृत्यु, नैतिकता, मानवता, चिकित्सा विज्ञान

महात्मा गांधी (नवजीवन, 30.09.1928)

जन्म और मृत्यु जीवन के दो सार्वभौमिक सत्य हैं। मानव का सम्पूर्ण जीवन इन्ही दो सत्यों के चारो तरफ घूमता है। प्रकृति का अनमोल उपहार 'जीवन' है। प्रत्येक व्यक्ति का यह प्राकृतिक अधिकार है कि वह गुणवत्तापूर्ण एवं गरिमामय जीवन व्यतीत करें। किंतु कभी – कभी परिस्थितियां इतनी इतनी जटिल एवं कष्टकारी हो जाती है कि मृत्यु ही एक मात्र सर्वोत्तम एवं अंतिम विकल्प प्रतीत होता है। ऐसी परिस्थिति में जीवन अप्राकृतिक तरीकों से समाप्त करना ही श्रेयकर जान पड़ता है। जब एक व्यक्ति अपनी समस्याओं से घबराकर अन्य उपलब्ध विकल्पों पर बिना विचार किए स्वयं अपने से अपना जीवन समाप्त कर लेता है, तब वह आत्महत्या कहलाती है। परंतु जब एक व्यक्ति उपलब्ध सभी समाधानों पर विचार कर, कोई अन्य समाधान ना मिलने पर

* असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, माता सुन्दरी कालेज फार वूमेन, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आग्रह पूर्वक अपने जीवन का अंत करने की प्रार्थना करता है या उसका कोई निकट संबंधी उसका जीवन समाप्त करने की प्रार्थना करता है, तब वह इच्छा मृत्यु कहलाती हैं। मुख्य रूप से इच्छा मृत्यु उन लोगो से संबंधित है, जो गंभीर रूप से बिमार है, व जिनका दिमाग मृत्य हो चुका है, व जिनके पुनः स्वास्थ्य होने की सम्पूर्ण सम्भावनाएं समाप्त हो चुकी हैं, एवं इसके साथ ही वे अपने आगे का जीवन बीमारी एवं पीड़ा के साथ संघर्ष करते हुए नही बिताना चाहते हैं। सुख – मृत्यु वास्तव में कम से कम पीड़ा वाली मृत्यु है। सुख–मृत्यु को विभिन्न रूपों में वर्गीकृत किया गया है–

ऐच्छिक सुखमृत्यु– ऐच्छिक सुखमृत्यु में एक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार मृत्यु का वरण करता है। ताकि वह अपने कष्टों से मुक्ती पा सके। ऐच्छिक सुख मृत्यु में बीमार व्यक्ति की सहमति सम्मिलित होती है।

अनैच्छिक सुखमृत्यु – अनैच्छिक सुख–मृत्यु में बीमार व्यक्ति की सहमति सम्मिलित नही होती है। इसमें एक व्यक्ति सतत् निष्क्रिय अवस्था में होता है और वह प्रतिक्रिया देने में समर्थ नही होता है। जैसे अबोध बच्चे या जिनका मस्तिष्क मृत्य हो, लेकिन शरीर के अंदरूनी अंग कार्य कर रहे हो,

सक्रिय सुख–मृत्यु – सक्रिय और निष्क्रिय सुख–मृत्यु, व्यक्ति को सुख मृत्यु प्रदान करने की विधि पर आधारित है जबकि ऐच्छिक और अनैच्छिक सुख–मृत्यु व्यक्ति के निर्णिय पर आधारित है। सक्रिय सुख–मृत्यु में एक व्यक्ति को सुख–मृत्यु प्राकृतिक कारणो से ना देकर बाहरी हस्तक्षेप के माध्यम से दी जाती है। जैसे – लेथल इंजेक्शन या जहरीली दवाओं के सम्मिश्रण का प्रयोग कर अमुक व्यक्ति की जीवन लीला समाप्त करना।

निष्क्रिय सुखमृत्यु– इसमें जीवन का अंत करने के लिये प्राकृतिक कारणों का उपयोग किया जाता है , जैसे जीवन रक्षक यंत्रों का प्रयोग बंद कर देना।

गरिमापूर्ण एवं गुणवक्तापूर्ण जीवन प्रत्येक व्यक्ति का प्राकृतिक, सामाजिक एवं वैधानिक अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति को ''जीवन का अधिकार'' मिला हुआ है। कुछ लोगो का यह विचार है कि यदि व्यक्ति को गरिमामय एवं गुणवत्तापूर्ण जीवन जीने का अधिकार मिला है तो व्यक्ति को यह अधिकार मिले की वह गरिमापूर्वक अपने जीवन का अंत कर सकें। यही से सुख– मृत्यु

की नैतिकता और अनैतिकता पर चर्चा आरंभ हो जाती है। जब एक व्यक्ति अत्यन्त घनघोर पीड़ा में व सतत निष्क्रिय अवस्था में रहता है। उसका अस्तित्व जैविक रूप से तो बना है। लेकिन वह बाहरी दुनिया के साथ मनोवैज्ञानिक सम्पर्क बनाने में अक्षम है। यहीं पर यह प्रश्न उठता है कि क्या वास्तव मे।अमुक व्यक्ति के जीवन का अस्तित्व अर्थपूर्ण है। सतत निष्क्रिय अवस्था में व्यक्ति किसी क्रिया पर प्रतिक्रिया व्यक्त नही कर पाता है। इसके साथ ही चिकित्सा विज्ञान में उपलब्ध संसाधनों एवं साधनों के माध्यम से उसके पुनः स्वास्थ्य होने की समस्त सम्भावनाएं समाप्त हो चुकी हों। ऐसी घनघोर कष्ट, पीड़ा एवं सतत निष्क्रिय अवस्था में व्यक्ति को सुख–मृत्यु दिये जाने और नही दिये जाने की नैतिकता पर चार्च आरंभ हो जाती है। टोनी ब्लैण्ड, डायना, प्रिटी, टेरीशिएयवों, अरूणा शानबाग के मामलों में (केस) सुख–मृत्यु की मांग की गयी।

गांधी अहिंसा के समर्थ थे। गांधी का जीवन अहिंसा का जीवन्त उदाहरण है। लेकिन गांधी विशेष परिस्थितियों में सक्रिय– सुख–मृत्यु के पक्ष में थे। उनका कहना था कि '' केवल मरण में से ही किसी आदमी को या पशु को थोड़े समय के लिये बचा लेने में अहिंसा है– यह मान्यतन एक वहम है। (नवजीवन, 30.09.1928 [5]) गांधी के आश्रम मे। एक बछड़ा था जो अपंग था और घनघोर कष्ट में था। गांधी को बछड़े का कष्ट न देखा गया और उन्होने बछड़े के प्राणहरण का निश्चय किया। लेकिन आश्रम के कुछ लोग गांधी के इस निर्णय के विरोध में थे। परन्तु गांधी अपने निर्णय पर अड़िग रहे और बछड़े को जहर का इंजेक्शन लगवाकर उसकी आत्मा को दुःखो से मुक्त करवाया। इन्ही दिनों एक और घटना हुयी। एक पारसी अभिनेत्री ने अपने प्रेमी के निरन्तर अनुरोध पर उसे गोली मार दी थी क्योंकि अभिनेत्री का प्रेमी एक रोग के कारण घनघोर कष्ट में था। गांधी का मानना था कि हत्या यदि नेकनीयती से की जाये तो वह निश्चित ही मेरी परिभाषा और समझ के अनुसार हिंसा नही मानी जायेगी। (खण्ड 32, पृष्ठ–472, 30.12.1926)[2]

गांधी को पत्र लिख कर एक व्यक्ति ने अपने चार महीने के अबोध बालक के बीमारी का संदर्भ देकर उस बच्चे के जीवन के विषय में निर्णय लेने के लिये गांधी से सलाह मांगी।

गांधी का मानना था कि किसी भी स्थिति में बच्चे के प्राणहरण नही किया जा सकता है क्योंकि बच्चे के लालन–पालन का उत्तरदायित्व माता

पिता पर है। यहां पर बालक के पिता का स्वार्थ गांधी को अधिक दिखाई देता है क्योंकि उस व्यक्ति ने पत्र में लिखा था कि उसके सर पर कर्ज का बोझ है, और वह बच्चे की बीमारी का खर्च नही उठा सकता है। गांधी के अनुसार सामान्य तौर पर ऐसा जान पड़े कि प्राण जाना निश्चित ही है, उस प्राणहरण में अपना कोई स्वार्थ न हो, तभी प्राण हरण किया जा सकता है। (खण्ड–38, पृष्ठ–71, 18.11.1928)[2]

गांधी शुद्ध अहिंसावादी थे। लेकिन उनका मानना था कि जबरजस्ती से कष्ट सहन करवाना भी एक प्रकार की हिंसा है। अतः यदि विशेष परिस्थिति में प्राण हरण से व्यक्ति की आत्मा दुःख–मुक्त हो जाती है तो वह शुद्ध अहिंसा है। अहिंसा की परीक्षा का आधार भावना पर रहता है। (नवजीवन, 30.09.1928)

सुख मृत्यु के पक्ष में तर्क

सुख मृत्यु की नैतिक स्वीकार्यता के पक्ष में विभिन्न तर्क दिये गये है। सबसे पहला तर्क गुणवत्तापूर्ण जीवन का है। सुखवादियों के दृष्टिकोण से देखें तो एक व्यक्ति के गुणवत्तापूर्ण जीवन का आकलन इसी बात से किया जा सकता है कि उसे कितना सुख या आनंद मिला एवम् उसकी कितनी मनोकामनाएं पूर्ण हुई। वह अपने जीवन में कितना संतुष्ट है। एक व्यक्ति जो लगातार सतत निष्क्रिय अवस्था में है। वह अपनी खुशियों, प्रसन्नता एवं आनंद से लगातार वंचित है। वह अपनी क्षमताओं का प्रयोग नही कर पा रहा है। उसका जीवन लगातार नकारात्मक रूप से आनंद से दूर हो रहा है। अर्थात वह गुणवत्तापूर्ण जीवन से दूर होता जा रहा है। सतत निष्क्रिय अवस्था में व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता एवं गारिमा लगभग शून्य हो जाती है। वह पूरी तरह से दैनिक कार्यो के लिये भी दूसरे व्यक्तियों की दया दृष्टि पर आश्रित रहता है। उपरोक्त परिस्थितियों अमुक व्यक्ति के घर के सदस्यों के लिये बहुत ही कष्टकारी होती है। अपने मामूली से दैनिक कार्य के लिये भी दूसरों की दया दृष्टि पर निर्भर रहता है। ऐसी परिस्थिति में अमुक व्यक्ति यदि अपना जीवन गारिमामय एवं गुणवत्तापूर्ण रुप से नही व्यतीत कर पा रहा है एवं वह पूरी तरह से दूसरों की दया दृष्टि पर निर्भर है तो उसके सक्रिय सुख मृत्यु देना ही नैतिक रूप से श्रेयकर एवं उचित है। ऐसी परिस्थिति में सक्रिय सुख मृत्यु, निष्क्रिय सुख मृत्यु से अधिक श्रेयकर है, क्योंकि निष्क्रिय सुख मृत्यु में उसे लगातार अत्यंत दुखद परिस्थिति में रहने की अधिक संभावना है, जबकि

सक्रिय सुख मृत्यु में यह सम्भावना समाप्त हो जाती है। यहां पर सुख मृत्यु की विधि की नैतिकता से अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन की गरिमा एवं गुणवत्ता है। पीटर सिंगर के अनुसार मृत्यु को चुनने के बाद (नैतिक रूप से स्वीकार्य क्रियाविधि के रूप में) हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए की यह सर्वोत्तम संभव तरीके से आए।

दूसरा तर्क संसाधनों के उपयोग पर आधारित है, यह तर्क कर्त्तव्यशास्त्र (Deontology) की अपेक्षा उपयोगितावादी (Hedonism) दृष्टिकोण पर आधारित है। यह तर्क कर्त्तव्य की अपेक्षा कार्य के परिणाम पर अपना ध्यान केंन्द्रित करता है। एक व्यक्ति जो लगातार सतत निष्क्रिय अवस्था में है उसके उपर धन , संसाधन, समय व शक्ति का प्रयाग हो रहा है जबकि उसके निकट भविष्य में स्वस्थ होने की संभावना शून्य है। हम इन संसाधनों, समय व शक्ति का प्रयोग ऐसे व्यक्ति पर कर सकते हैं जिसके स्वस्थ होने की संभावना अधिक है। स्वस्थ होने के पश्चात वो समाज में अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं। इसके साथ ही संसाधनों का प्रयोग दूसरे चिकित्सा अनुसंधानों पर किया जा सकता है। जिसका सकारात्मक लाभ व्यक्तियों एवं समाज को मिलेगा। पीटर सिंगर के अनुसार एक गंभीर रूप से विकलांग एवं कष्ट से पीड़ित छोटे शिशु जो अपने भविष्य के विषय में कोई इच्छा व्यक्त नही कर सकते हैं कि गैर स्वेच्छिक सुख मृत्यु निम्नलिखित आधारों पर उचित हो सकती है। जब एक विकलांग शिशु की मृत्यु एक सुखी जीवन की श्रेष्ठ संभावनाओं के साथ एक और शिशु के जन्म की ओर ले जाएगी, तो विकलांग शिशु की हत्या होने पर खुशी की कुल मात्रा अधिक होगी।[9]

एक व्यक्ति जिसके जीवन की गुणत्ता ना के बराबर है। उसके ऊपर लाखों का खर्च करने से श्रेयकर है कि हम इन लाखों रूपयों का प्रयोग चिकित्सा विज्ञान के विकास में खर्च करें। जिससे हमें अधिक सकारात्मक परिणाम आने की संभावना है।

अगला तर्क व्यक्तिगत स्वायत्ता से संबंधित है। जॉन स्टुअर्ट मिल व्यक्तिगत स्वतंत्रता के समर्थक थे। उनका मानना था कि एक व्यक्ति के पास व्यक्तिगत स्वायत्ता एवं निर्णय क्षमता का अधिकार होना चाहिए। स्वायत्तता के आधार पर हम कह सकते है कि एक व्यक्ति को यह अधिकार होना चाहिये कि जब उसका जीवन अत्यन्त कष्टकारी हो जाए एवं उपचार की समस्त

संभावनाए समाप्त हो जाए, तो उसे अपने जीवन को समाप्त करने का अधिकार होना चाहिए। यदि व्यक्ति को हम मरने का अधिकार नही प्रदान करते है तो यह उसकी स्वयात्तता का हनन होगा।

सुख मृत्यु के विपक्ष में तर्क

सुख मृत्यु की नैतिकता की चर्चा बिना विपक्ष से संबधित तर्क रखे पूरी नहीं हो सकती है। सुख मृत्यु के विपक्ष से संबंधित प्रथम तर्क जीवन की पवित्रता का है। यह तर्क मुख्यता धार्मिक भावनाओं से संबंधित हैं। हिन्दू, इस्लाम, इत्यादि धर्मो में यह माना गया है कि सभी मनुष्य ईश्वर द्वारा निर्मित है जब ईश्वर ने मनुष्य को बनाया है तो वही उसके प्राण हरण कर सकता है। ईश्वर के अतिरिक्त किसी के पास यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरों का प्राण हरण करें। प्राण हरण एक जघन्य अपराध है। मदर टेरेसा धार्मिक आधार पर सुख मृत्यु के विरूद्ध थी। उनका मानना था कि ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति के लिये एक नियति निर्धारित की है, यदि हम किसी व्यक्ति को पहले ही सुख मृत्यु देकर मार देते हैं तो ईश्वर ने उसके लिए जो योजना बनाई हे हम उसका हम उसका अंत कर देते है, मदर टेरेसा के अनुसार "मेरे लिये, मानवजाति के लिए, जीवन ईश्वर का सबसे सुंदर उपहार है, इसलिये गर्भपात और इच्छामृत्यु द्वारा जीवन को नष्ट करने वाले लोग और राष्ट्र सबसे गरीब हैं। मै इसे कानूनी या अवैध नही कहती। लेकिन मुझे लगता है कि जीवन को मारने के लिये कोई मानव हाथ नहीं उठना चाहिये, क्योंकी जीवन ईश्वर का जीवन है, हम में।" यह तर्क निष्काम कर्म एवं कर्तव्य के लिए कर्तव्य की अवधारणा के अनुकूल है। यदि व्यक्ति घनघोर कष्ट में है तो उसे अपने कर्मो का ही फल मिल रहा है। व्यक्ति को अपने कर्मो का फल पूर्ण रूप से भोगना चाहिए, यही नियती है, तथा धार्मिक आधार पर हम सुख मृत्यु का समर्थन नही कर सकते है।

विपक्ष का दूसरा तर्क है जीवन की गुणवत्ता से संबंधित है। जीवन की गुणवत्ता और गरिमा का आधार केवल प्रसन्नता सुख आनन्द या मनोकामना की पूर्ति ही नही है बल्कि जीवन की गुणवत्ता का आधार निरपेक्ष मूल्य एवं सद्‌गुणो पर आधारित है। कोई भी मनुष्य अपने सद्‌गुणो और मूल्यों के कारण महान बनता है ना कि सांसारिक सुखो का आनंद लेने के कारण इसलिये जीवन की गुणवत्ता जीवन को बनाए रखने में है ना कि उसको छीन लेने में है।

तीसरा तर्क संसाधनों के सर्वोत्तम प्रयोग से संबंधित है। सर्वोत्तम प्रयोग के आधार यदि हम किसी को सुख मृत्यु देते है तो यह बहुत ही निकृष्ट कोटि का तर्क होगा। समाज में कुछ लोग ऐसे है जिन पर संसाधनों का प्रयोग हो रहा है लेकिन परिणाम में समाज को अधिक नही मिल रहा है , जैसे अधिक आयु के वृद्ध , शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकलांग जन, आबोध अत्यंत बीमार बच्चे लकिन इन लोगो की देख भाल समाज उपयोगिता वादी दृष्टिकोण से नही बल्कि कर्तव्य वादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण से करता है। यादि हम संसाधनो के सर्वोत्तम प्रयोग पर ही अपना ध्यान देते है तो ऐसे लोगो को भी सुख मृत्यु के नाम पर मृत्यु दे देनी चाहिए। जिससे समाज के संसाधनों एवं धन का दुरूपयोग बच सके लेकिन हम ऐसा नही करते है, क्योंकि या नैतिकता एवं मानवता के आधार पर उचित नही है। समाज नैतिकता एवं मानवता पर आधारित है ना की उपयोगिता पर। यादि नैतिकता का निर्धारण परिणाम के आधार पर होता है, और परिणाम के आधार पर हम सुख मृत्यु के औचित्य को सिद्ध करते हैं तो समाज एक घातक दिशा की ओर बढ़ने लगेगा।

चौथा तर्क व्यक्तिगत स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता से संबंधित है यह सत्य है कि व्यक्ति के पास जीने का अधिकार है लेकिन इस अधिकार से मरने का अधिकार नही मिल जाता है। जन्म एवं मरण दो सार्वभौमिक सत्य है। स्वतंत्रता का अधिकार एवं स्वायत्तता का अधिकार इन्ही दोनो सार्वभौमिक सत्यों के बीच दिया गया है। यदि व्यक्ति को मृत्यु को अधिकार दे दिया जाए तो उसके सारे अधिकर तुरंत ही समाप्त हो जायेंगे। स्वतंत्रता का अधिकार तभी तक है जब तक व्यक्ति जीवित है। यदि हम मृत्यु का अधिकार देते हैं तो हम समाज में निराशावाद का प्रसार करेंगे जो कि सम्पूर्ण मानवता के लिये बहुत ही खतरनाक है। यदि स्वतंत्रता और स्वायत्तता के आधार पर हम सुख मृत्यु को नैतिक आधार पर उचित मानते है तो हमें गंभीर रूप से तनाव में रहने वाले व्यक्तियों के लिये आत्महत्या को भी संवैधानिक एवं नैतिक रूप से मान्य कर देना चाहिए। लेकिन हम ऐसा नही करते हैं अतः तार्किक रूप से यह सिद्ध हुआ कि स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता का अधिकार जीने के लिये है ना कि मृत्यु के लिये है।

अगला तर्क अनुसंधान से संबंधित है यदि हम सुख मृत्यु को स्वीकार कर लेंगे तो विकास की सारी संभावनाएं समाप्त हो जाएंगी। यह संभव है कि वर्तमान में सतत निष्क्रिय व्यक्ति के लिए कोई उपचार नही है, लेकिन संभव

है कि भविष्य में अनुसंधान के माध्यम से कोई उपचार निकल आए। चिकित्सा विज्ञान के इतिहास से यह सिद्व हुआ है कि चिकित्सा विज्ञान निरंतर विकास करता जा रहा है। सुख मृत्यु को यदि हम नैतिक रूप में स्वीकार्य लेते है तो इसके दुरूपयोग की संभावना बढ़ जायेगी। अंग प्रत्यारोपण, संपत्ति एवं राज पाठ के लिए सुख मृत्यु का दुरूपयोग हो सकता है, यदि कोई व्यक्ति गंभीर रूप से बीमार है तो उसके निकट संबंधी किसी लालचवश सुख मृत्यु दिए जाने की मांग कर सकते है, इसलिए हमें सुख मृत्यु को अस्वीकार्य कर देना चाहिए। यदि हम सुख मृत्यु को नैतिक मानते हैं तो यह मरने का अधिकार नही बल्कि मारने का अधिकार होगा।

निष्कर्ष

यदि हम ध्यान पूर्वक देखें तो सुख मृत्यु की नैतिकता एवं अनैतिकता का प्रश्न सिद्धांत एवं व्यवहार का है। सैद्धांतिक दृष्टि से सुख मृत्यु अनैतिक लगती है। लेकिन व्यावहारिक जीवन की क्लिष्ट एवं जटिल परिस्थितियों को देखते हुए सुख मृत्यु नैतिक प्रतीत होती है। सुखवादी, फलवादी एवं हेतुवादी दृष्टिकोण से हम सुखमृत्यु को नैतिक नही मान सकते है। महात्मा गांधाी अहिंसा के पुजारी थे। उन्होंने सर्म्पूण संसार को अहिंसा की राह पर चालने के लिए प्रेरित किया। महात्मा गांधी बहुत ही व्यवहारिक चिंतक थे उनका मानना था कि अहिंसा का अर्थ केवल दूसरो को कष्ट पहुंचाना ही नही बल्कि बलपूर्वक किसी को कष्ट में रहने देना भी एक प्रकार की हिंसा ही है। इसलिए उन्होने अपने आश्रम में बछड़े को सक्रिय सुख मृत्यु प्रदान की। सुख मृत्यु की नैतिकता एवं अनैतिकता पर विचार करते हुए हमें बहुत ही निष्पक्ष एवं व्यावहारिक रहने की आवश्यकता है। इसके साथ ही हमें परिस्थितियों की जटिलता पर भी ध्यान देना चाहिए। जो लोग सुख मृत्यु के पक्ष में है उन्हें निष्पक्ष , धार्मिक एवं आशावादी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, इसके साथ ही जो लोग सुख मृत्यु के विपक्ष में है उन्हे मानतावादी एवं पंथनिरपेक्ष दृष्टिकोंण अपनाने की आवश्यकता है। समय, परिस्थिति, उपलब्ध चिकित्सीय उपचार एवं मानवता पर विभिन्न व्यक्तियों के दृष्टिकोण अलग अलग हो सकते हैं। इसलिए कुछ देशो ने सक्रिय सुख मृत्यु और कुछ देशो ने निष्क्रीय सुख–मृत्यु को अपने अपने यहां वैधानिक माना है। कुछ देशो ने सुख मृत्यु को पूर्ण रूप से अवैधानिक माना है। सुख मृत्यु की नैतिकता की बहस व्यक्ति एवं दृष्टिकोण के अनुसार बहुत लम्बी है। गांधी की महानता का प्रमुख कारण यह

है कि उन्होने अहिंसा का प्रयोग व्यवहार में किया। गांधी ने भी माना कि जब व्यक्ति के शरीर के साथ – साथ उसकी आत्मा भी कष्ट में हो तो उसकी आत्मा को कष्ट से मुक्ति देने में कोई हिंसा नही है। आत्मा खुद कष्ट सहन करें, यह उसका स्वभाव ही है। लेकिन दूसरे से कष्ट सहन कराना आत्मा के स्वभाव से उल्टी बात हो गयी। अहिंसा के मूल में ही दूसरों को होन वाला दुःख सहन न करने की बात है (खण्ड–63 , पृष्ठ– 414)

अतः समय परिस्थिति, असहनीय कष्ट, पीड़ा एवं उपचार की संपूर्ण संभावना समाप्त होने पर ही सुख मृत्यु को स्वीकार्य करना चाहिए। अहिंसा की परीक्षा का आधार भावना पर रहता है (नवजीवन, 30.09.1928[5])। इसके साथ ही सुख मृत्यु के समर्थकों को धार्मिक आधार पर एवं सुख मृत्यु के विपक्ष में खड़े लोगो को पथंनिरपेक्ष एवं व्यक्तिवादी दृष्टिकोंण से तथ्यों को समझाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. *एम.के.गांधी, द कॉलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी इन हिन्दी (वॉल्यूम 1 से 97) इम्पोर्टेन्ड बुक्स, खण्ड –32, पृष्ठ –472, खण्ड 38 पृष्ठ–71, खण्ड 63 पृष्ठ–414*
   http;//www.mkgandhi.org/ebks/collected-works-of-mahatama-gandhi-hindi.html.
2. *कंस्ट्रेक्टिव प्रोग्रामः इट्स मीनिंग एंड प्लेसः एम.के.गांधीः नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1941, प्रयुक्त संस्करण 1948*
3. *डाईम्मॉक मार्क; फिशर, एन्ड्रिव. चैप्टर 7. यूथनेशिया इन : एथिक्स फर ए–लेवल : फार ए क्यू ए फिलॉसोफी एण्ड ओसीआर रेलिजिअस स्टडीज (ऑन लाईन) कैम्ब्रिज : ओपन बुक पब्लिर्शस्, 2017(जेनेरेटड 04 सेप्टेम्बर 2020). एविलेबल आन द इंटरनेट*
   <http;//books.openedition.org/obp/4427>
   ISBN:9791036500787.
4. *जे चालिहा एण्ड ई. ली जॉली, द जॉय इन लविंग, पृ–174*
5. *नवजीवन (1919–1931) : गुजराती साप्ताहिक, कभी – कभी सप्ताह में दो अंक भी ; 7 सितंम्बर, 1919 को प्राथम बार प्रकाशित ; गांधी जी द्वारा संपादित और अहमदाबाद से प्रकाशित*

6. *बोरमन, विलियम. गांधी एंड नॉन वायलेंस. एल्बेः स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यू यार्क प्रेस 1986*

7. *रेचल, जेम्स. 'ऐक्टि एंण्ड पैसिव यूथनेशियाः बायोमेडिकल एथिक्स एण्ड ला, 5 (1979): 511—16,*

https://doi.org/10.1007/978-1-4615-6561-1_33/20

8. *वेलेमन, जे. डेविड, बेयोन्ड प्राईस : ऐसे आन बर्थ एंड डेथ (कैम्ब्रिज, ओपेन बुक पब्लिर्शस, 2015) http:/doi.org/10.11647/OBP.0061; फ्रीली एविलेबल ऐट https://www.openbookpublishers.com/reader/349 DOI:10.11647/OBP.0061*

9. *सिंगर, पीटर. प्रैक्टिकल एथिक्स (कैम्ब्रिज : यूर्निवसिटी प्रेस, 2011) पृष्ठ —163 http:/doi.org/10.1017/cbo9780511975950 DOI:10.17/cbo9780511975950*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ.41-47

भारत का दिशा बोध : एक अध्ययन

डॉ० हरिमोहन शर्मा *

ब्रिटिश शासनकाल में उस समय के भारत में जितने भी आंदोलन चले और देश की जितनी भी राजनीति थी, उन सभी का उद्देश्य था कि हम अंग्रेजों से स्वतंत्रता प्राप्त करें यानि हम स्वराज्य प्राप्त करें। स्वराज्य के बाद स्वतंत्र भारत में भारत के विकास की दिशा क्या होगी? हम किस दिशा में अग्रसर होंगे, इस पर बहुत कम विचार हुआ। यह भी नहीं कहा जा सकता कि कुछ भी विचार नहीं हुआ, जैसा कि महात्मा गाँधी जी ने सन् 1909 में 'हिंद स्वराज्य' में स्वराज्य के बाद भारत का दिशा बोध क्या हो, उस पर अपने विचार रखें। उससे पहले लोकमान्य तिलक ने भी ''गीता रहस्य'' में अपने विचार व्यक्त किए, जिसमें कि पूरे स्वतंत्रता आंदोलन की भूमिका क्या होगी। पं. दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, ''लोकमान्य तिलक ने भी ''गीता रहस्य'' लिखकर सम्पूर्ण आंदोलन के पीछे की तात्विक भूमिका क्या होगी, इसका विवेचन किया था। साथ ही उस समय दुनिया में जो भिन्न–भिन्न विचार सारणियाँ चल रही थी, उनकी भी तुलनात्मक दृष्टि से आलोचना की थी... अतः देश के आजाद होने के बाद स्वभाविक रूप से यह सवाल हम सब लोगों के सामने आना चाहिए था, कि अब हमारे देश की दिशा क्या होगी? किन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि देश की स्वतंत्रता के बाद भी जितना गम्भीर रूप से इस प्रश्न के विषय में विचार करना चाहिए था, उतना गम्भीर रूप से लोगों ने विचार नहीं किया और आज भी जब 16–17 वर्ष देश को स्वतंत्र हुए हो गए, हम यह नहीं कह सकते कि कोई दिशा निश्चित हो गई है।''

इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि देश स्वतंत्र होने के बाद भारत का दिशा बोध क्या हो? इस पर गम्भीर रूप से विचार नहीं हुआ। यह अवश्य है कि समय–समय पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस या दूसरे राजनैतिक दलों ने जो प्रस्ताव स्वीकार किये, उनमें भी इस तरह के विचार आए थे। उस समय भारत की दशा व दिशा का जितना गम्भीर अध्ययन होना चाहिए था, उतना अध्ययन नहीं हुआ। यह अवश्य है कि भारतीय जनसंघ एवं भारतीय साम्यवादी दल का अपना वैचारिक दृष्टिकोण स्पष्ट रहा। जहाँ एक विचार

---

* **एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

भारतीय सनातन धर्म की परम्परा से प्रभावित था, वहीं दूसरी ओर साम्यवादी दल मार्क्स, लेनिन व अन्य साम्यवादी विचारकों से प्रभावित था। जहाँ सनातन परम्परा से प्रभावित विचार शाश्वत सत्य जैसे कि 'सर्वे भवन्तु सुखिन', 'एक सत्यं विप्रा बहुआ वदन्ति' पर आधारित थे। वहीं दूसरी ओर साम्यवादी विचार के लोग 'सर्वहारा की तानाशाही' एवं सिर्फ अपने साम्यवादी विचार को ही सत्य मानते थे, अन्य विचारों को पूर्णतया नकारते थे। एक अन्य वर्ग चाहे वह समाजवादी दल हो या कांग्रेस, वह तो अपने आप में भ्रमित था। यह भी कहा जा सकता है कि उस समय के प्रधानमंत्री की नियत ठीक हो सकती है परन्तु वह भ्रमित, दिशाहीन एवं आत्ममोहित व्यक्ति बन गए थे। उनकी भ्रमित, दिशाहीन स्वयं आनन्दित भोगवादी प्रवृत्ति भारत के बहुत ही घातक साबित हुई। आज आर्थिक विकास का प्रश्न हो, तो हमारे से बाद स्वतंत्र हुए देश चाहे चीन, दक्षिणी कोरिया या द्वितीय विश्वयुद्ध से पराजित एवं बुरी तरह से नष्ट देश जर्मनी या जापान आदि सभी देशों ने अपना विकास काफी तेजी से किया। पं. नेहरू जैसे विश्व इतिहास की समझ रखने वाले व्यक्ति की गलतियाँ देश विभिन्न रूप से चाहे पाक के सम्बन्ध हो, चीन का प्रश्न हो या देश के सभी लोगों के सामाजिक न्याय एवं Gender Equality पर आधारित Common Civil Code क्या प्रश्न हो या सामाजिक ढाँचे में जातिवादी एवं विभाजनकारी मानसिकता का आज भी बोलबाला हो, यह चिन्तनीय है, एवं स्वतंत्रता के बाद की कांग्रेस की भ्रमित नीति का परिणाम है। कई प्रकार के भ्रमित विचारों से कांग्रेसी सरकारें भी प्रभावित रही हैं, और उन्होंने भी अधिकतर कांग्रेस की नीतियों को चलाया। यह परिस्थितियाँ क्यों बनी तो इस हम पं. दीनदयाल जी के इस विचार से समझ सकते हैं– ''समय–समय पर कांग्रेस या दूसरे दल के लोगों ने कल्याणकारी राज्य, समाजवाद, उदारमतवाद, आदि का ध्यये अवश्य घोषित किया। विविध नारे लगाए गए हैं, परन्तु ये जितने नारे लगाने वाले लोग हैं, उनके सामने उनकी विचारधाराओं का, नारे से अधिक कोई महत्त्व नहीं रहता। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि इसका मुझे अनुभव है। एक बार एक सज्जन से बातचीत हो रही थी, वह कह रहे थे कि कांग्रेस के विरुद्ध मिल जुलकर अपने को एक मोर्चा बनाना चाहिए, ताकि अच्छी तरह से लड़ सके। राजनीतिक दृष्टि से समय–समय पर इस प्रकार की नीतियाँ लेकर दल चलते हैं, और इसीलिए उनके इस प्रस्ताव में कोई अनुचित बात नहीं थी। परन्तु बात करते–करते मैंने सहज में पूछ लिया कि 'हम लोग शायद मोर्चा

तो बना लेंगे परन्तु थोड़ा बहुत कार्यक्रम पर भी विचार कर लिया जाए तो बहुत अच्छा होगा। कौन–सा आर्थिक कार्यक्रम लेकर चले? इन प्रश्नों पर भी विचार करना चाहिए।

इस पर उन्होंने सहज भाव से कह दिया कि इसकी कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, आपको जो पसन्द हो स्वीकार कर लीजिए। हम तो घोर समाजवादी कार्यक्रम से लेकर बिल्कुल पूँजीवाद कार्यक्रम तक जो आप चाहे उसका समर्थन कर देंगे। उनको किसी भी कार्यक्रम में कोई आपत्ति नहीं थी। उद्देश्य केवल इतना ही था कि किसी न किसी तरीके से कांग्रेस को हरा देना चाहिए। आज भी बहुत बार लोग कहते हैं कि कम्युनिस्टों तथा बाकी सब दलों से मिलकर भी कांग्रेस को हरा दिया जाए।'' उपरोक्त विचार को प. दीनदयाल ने 22 अप्रैल 1965 में व्यक्त किये थे। यह विचार आज भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। जहाँ एक ओर 'कांग्रेस मुक्त भारत' की चर्चा होती है दूसरी और कांग्रेस, साम्यवादी, समाजवादी आदि दल भाजपा से मुक्ति चाहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है अधिकतर दल भारत की दशा व दिशा को समझने या सही दिशा में आगे बढ़ाने की जगह अपने स्वार्थ यानि अपने परिवार की राजनीतिक सत्ता को स्थापित करने की चिंता में है, उनके साथ परिवारवादी एवं भोगवादी संस्कृति से प्रभावित कुछ अन्य नेता भी शामिल है, यह चिंता का विषय ही है, इस पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। ऐसा इसलिए भी जरूरी है इस भूमण्डलीकरण के दौर में भ्रमित व स्वार्थी, अयोग्य एवं अति महत्वकांक्षी राजनेता न केवल इस देश का, परन्तु सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के विचार, सर्वे भवन्तु सुखिनः एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के कल्याण की सनातन विचारधारा को भी नष्ट करने में लगे हें। इस प्रकार की राजनीति व भारत की दिशा को तय करने वाले लोग विदेशी प्रभुत्व की भाषा व संस्कृति से काफी प्रभावित हैं, जैसे पं. जवाहरलाल नेहरू थे। आज की पीढ़ी के बहुत से नेता भारतीय भाषाओं, संस्कृति, लोक कथाओं व आंचलीय भेषभूषा, बोली व खान–पान आदि से भी लगभग पूर्णतः अनभिज्ञ हैं या अनजान बनने पर गर्व महसूस करते हैं। ऐसे लोग लोककल्याणकारी सनातन संस्कृति को नष्ट ही नहीं करेंगे, बल्कि उन्हें इस बात का आभास भी नहीं होगा, वह कोई गलत कार्य कर रहे हैं। इस कारण ऐसा प्रतीत होता है कि देश काल का ज्ञान एवं सही दृष्टि यानि समझ न होने के कारण वह इस कार्य को अनजाने में कर रहे हैं। अतः उन्हें सही मार्ग पर लाने व संवाद के द्वारा सत्य सनातन विचारों से अवगत कराने की

विशेष आवश्यकता है। इसके कर्मयोग के सिद्धांत को अपनाते हुए, सभी लोगों के विवेक को जागृत करने की आवश्यकता है। ''विवेक की आवश्यकता इसीलिए होती है कि अविक्षिप्त मनुष्य का कोई काम चाहे उसमें फलाशा हो या अथवा न हो बिना उद्देश्य और विधान के नहीं होता है। उद्देश्य और विधान दो–दो प्रकार के होता हैं–

1. देव और आसुर – देव विधान से, दैव उद्देश्य के साधन में लगे रहने से सत्व का विकास होता है। देव उद्देश्य और देव विधान की विपरीत लक्षण वाले उद्देश्य और विधान को आसुर उद्देश्य और आसुर विधान कहते हैं। आसुर उद्देश्य और आसुर विधान से सत्व का संकोच होता है। बिना विवेक के उद्देश्य और विधान की पहचान नहीं हो सकती है। अतः बिना विवेक के कर्मयोग नहीं हो सकता।'' यह जानना भी आवश्यक है कि मानव इच्छाएँ होती है और वह अनन्त हैं, एक के पूरा होने पर दूसरी इच्छा जागृत हो जाती हैं, इच्छा पूरी न होने पर दुःख, राग, द्वेष आदि होते हैं। इससे विवाद व समस्याएँ बढ़ती हैं, जो कि व्यक्तिगत भी हो सकती है और सामाजिक भी और कभी तो ऐसी इच्छाएँ पृथ्वी लोक से बाहर अन्तरिक्ष में कार्य करने में भी समस्याएँ पैदा करती है। श्री बद्रीसाह ठुलधारिया के अनुसार, ''मनुष्य में अन्य प्राणियों की अपेक्षा इच्छा अधिक प्रबल होती है जो समुद्र के समान कभी भरती नहीं, दावानल के समान सदा बढ़ती रहती है, पवन के समान कभी शांत नहीं होती; अपरंच प्रकृति ने उसके लिए वह उदारता नहीं दर्शायी है जो उसने अन्य जीवों के लिए की है; अतः अन्य जीवों की अपेक्षा मनुष्य में पंचेन्द्रिय और कामादि षड्मनोविकार अधिक प्रबल रहते हैं।..... अपनी चिति और विराट का योगक्षेम करना, दैशिक धर्म को निभाते हुए, बिना किसी को हानि पहुँचाए अपना व्यक्तिगत हित साधन करना और उक्त दो कार्यो के विघ्नों को हटाना मनुष्य का प्राकृतिक हित कहा जाता है। मनुष्य के प्राकृतिक हित की व्याख्या से मानवी स्वतंत्रता और परतंत्रता का अर्थ अच्छी तरह समझ में आ सकता है; और यह भी सिद्ध होता है कि मन में जो इच्छा उठे अथवा अपनी समझ में जो बात अच्छी हो उसके साधन में किसी का हस्तक्षेप न होने से सदा मनुष्य का प्राकृतिक हित नहीं होता है और अपनी इच्छा और हित को पीछे रखकर दूसरे की इच्छा और हित के अनुसार चलने से सदा मनुष्य के प्राकृतिक हित में अन्तराय नहीं होता है।

मानवी स्वतत्रंता के तीन अंग होते हैं–

1. शासकीय, 2. आर्थिक और 3. स्वभाविक.... बिना इन तीन प्रकार की स्वतंत्राताओं के कोई मनुष्य अपना प्राकृतिक हित–साधन नहीं कर सकता।

अतः यह आवश्यक है कि मानव जाति के विकास में स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण योगदान है। यह समझना भी जरूरी है कि जगत की जननी प्रकृति ने मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाया है। यह प्राणी भी अन्य जीवों की तरह सुख की इच्छा से कार्य करता है और इसका सुख किस प्रकार का है, इससे भी मनुष्य के स्वभाव एवं उसका मानवजाति के साथ–साथ सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति दृष्टिकोण का भी पता चलता है। क्या भारत की दयनीय स्थिति के लिए हम स्वयं जिम्मेवार है? स्वार्थी होना और समाज व देश के प्रति कर्तव्य से विमुख होना, इस का प्रमुख कारण है। चित्ति व विराट का क्षीण होना मुख्य रूप से हमारी पराधीनता का कारण रहा है। स्वतंत्र दैशिक विचार के लिए जनमानस से जुड़े सात्विक विचार एवं सक्षम नेतृत्व सत्य सनातन परम्परा पर आधारित कर्मयोग के सिद्धांत से प्रेरित शासन व्यवस्था ही भारत की दुर्दशा को दूर करके इसके दिशा बोध को सही रास्ते पर ले जा सकती है। यह दिशा बोध न केवल भारत को, बल्कि संसार के समस्त प्राणियों के जनकल्याण के लिए परम आवश्यक है। इस दिशा बोध में विकास के जिस मार्ग को अपनाना होगा, वह वर्तमान में शोषण पर आधारित अर्थव्यवस्था के स्थान पर प्रकृति के पोषण व सदुपयोग पर आधारित अर्थव्यवस्था को अपनाना होगा। इसके साथ कोई संकीर्ण एवं एकांगी विचारधारा इस पृथ्वी पर कभी भी शासन सही रूप से नहीं कर सकती। विभिन्न विचारों के सम्मान देते हुए, एकता में अनेकता के भाव वाली बहुरंगी संस्कृति को अपनाना होगा और विभिन्न विचारों को सम्मान देते हुए मतभेदों व मनभेदों को भी सुलझाना होगा। भारत की धरती में विविधता में एकता का बोध, यहां की सनातन धर्म की संस्कृति में है। भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के जानकर जानते हैं कि विचारों का भारतीय मूल्यों की दृष्टि में हमेशा ऊँचा स्थान रहा है, जिसमें विचारक उस विचार के उद्देश्य के प्रति प्रेम और आदर में अपने को डूबा हुआ महसूस करता है। ऐसा चिंतन दार्शनिक होने की अपेक्षा धार्मिक अधिक है। यही कारण है कि धर्म दर्शन ने हमेशा भारत के सांस्कृतिक जीवन में प्रमुख स्थान बनाया है। सनातन संस्कृति ने ब्रह्माण्ड की व्याख्या देने और विचार गढ़ने में विविधता की

अभिव्यक्ति को एकता में बदलने का प्रयत्न किया है जोकि सर्वजन हिताय की भावना वाला शासन तंत्र ही कर सकता है। अतः भारत का दिशा बोध–सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय के लिये कैसे काम करे। ऐसे नेतृत्व व नीति के साथ काम करते हुए हमें पिछले 75 वर्षों की यात्रा का हर पच्चीस वर्ष के पड़ाव का विश्लेषण करते हुए अगले 25 वर्ष की एक दिशा निर्धारित करें, जिससे भारत व विश्व में समानता, एकता, सहयोग एवं समरसता तथा शान्ति को बढ़ावा मिले और सभी प्राणियों एवं प्रकृति के साथ न्याय हो। पंचतत्व का सही प्रयोग करे, आज के तकनीकी युग में अन्तरिक्ष व अन्य ग्रहों का भी यह शोषण की जगह, पोषण पर ध्यान दें। भारतीय सनातन दृष्टि जो कि विश्व शान्ति, न्याय एवं समरसता पर आधारित है। यह विचार ही जो समाज व सभ्यता रखेगी, उसे ही विश्वगुरु का स्थान मिलेगा, चाहे वह विश्व के किसी भी भाग, समाज या विचारधारा का है, क्योंकि सत्य सनातन विकास यात्रा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की है और अनतर जारी रहेगी। इस दृष्टि से भारत के दिशा बोध में पिछले 1500 साल के कालखण्ड में आए, तेज परिवर्तन के अध्ययन के साथ–साथ अपनी गलतियों से सीख लेते हुए, नए भारत व विश्व के निर्माण की ओर हम अग्रसर हो।

संदर्भ

1. *दीनदयाल उपाध्याय, ''एकात्म मानववाद'', जागृति प्रकाशन, नोएडा, उ.प्र. 2008*
2. *बद्रीसाह, ठुलधारिया, ''दैशिक शास्त्र'', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1953*
3. *डा. एस. आबिद हुसैन, 'भारत की राष्ट्रीय संस्कृति'', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, भारत, 1987*
4. *महात्मा गाँधी, ''हिन्द स्वराज'', शिक्षा भारती, दिल्ली, 2016*
5. *बजरंग लाल गुप्ता, ''पं. दीनदयाल उपाध्याय, व्यक्ति विचार, और समसामयिकता'', किताबवाले, दिल्ली, 2022*
6. *वी.आर. मेहता, ''भारतीय राजनीतिक चिन्तन के आधार'', मनोहर, नई दिल्ली, 2015*
7. *श्री स्वामी करपात्री जी महाराज, ''मार्क्सवाद और रामराज्य'', गीता प्रैस गोरखपुर, सम्वत् 2070*

8. *दीनदयाल उपाध्याय, ''राष्ट्र जीवन की दिशा'', लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, सम्वत् 2017, युगाब्द, 5116*
9. *श्यामचरण दुबे, ''भारतीय समाज'', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014*
10. *वसंत मून, ''डा. बाबासाहब आंबेडकर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 1996*
11. *जवाहर लाल नेहरू, ''हिन्दुस्तान की कहानी'' सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, नई दिल्ली–2020*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 48-53

भारतीय परम्परा में पंचायती राज व्यवस्था का संक्षिप्त अनुशीलन

डॉ० दिग्विजय नाथ राय *

पंचायतों की प्राचीनता की अनन्तधारा : (वैदिक काल)

निःसंदेह पंचायत प्रथा की प्राचीनता भारत भूमि की एक अटूट प्राचीन विषेषता है। 'स्वषासन' यह प्रथा सृष्टि के प्रयास से ही किस प्रकार फूली है। उसके पर्याप्त आधार हमें वैदिक साहित्य से भली–भॉति मिल जाते हैं। उस समय इसे 'सभा' या 'समिति' की संज्ञा दी जाती थी।

मानव सृष्टि शुरू होते ही जीवन की यात्रा को सुखमय बनाने के लिए सामाजिक संगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई। जिससे व्यक्ति को समाज के लिए और समाज को व्यक्ति के लिए कुछ कर्तव्य करना अपेक्षित हैं– 'यजुर्वेद 40' में इसका आभास इस प्रकार मिलता है।

''अन्धूतमः प्रविषान्ति ये संभुतिमुवासते।
ततो भूय इव ते तमो या उसंभूत्याः छंरताः।। (यजुर्वेद 40)

मानव सृष्टि के आरम्भिक काल में मानवीय जीवन को आनन्दमय बनाने के उद्देश्य से जनषक्ति एकत्रित हुई और उत्क्रान्त होकर ''विराड्'' या वैराज की स्थापना की, जिसमें सभी स्त्री–पुरूष भाग लेकर नियम बनाते थे। इसे प्रारम्भिक राजविहीन शासन कहा जा सकता है। इस वैराज्य शासन का दर्षन अथर्ववेद (8/19/10) में इस प्रकार हैं–

विराड्वा इद्मग आसीत् तस्या जातायाः सर्वमविभेदिय, मेवेद भविष्यतीर्ति'' (अथर्ववेद 8/10/10)। वैराज्य अथवा राज्य विहीन शासन में कोई शासक नहीं होता था। फलतः सभी व्यक्तियों को नियमों का निर्माण एवं कार्यान्वयन करना पड़ता था। जो छोटे गांव या समाज में ही संभव था। इसके कार्यान्वयन में कठिनाईयॉ महसूस हुई। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए एकत्रित जनषक्ति पुनः उत्क्रान्त हुई और 'ग्राम सभा' में परिणत हुई–

स्साउद क्रमात् या सामायान्व क्रामत् अथर्ववेद (8/10/1(8),

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा (उ0प्र0)

अथर्ववेद के पृथ्वी सूत्र 56 के अनुसार, वैदिक कालीन ग्रामीण सभाओं और संघो का प्रभावषाली अस्तित्व था, जिसमें क्षेत्र के लोग एकत्रित होकर स्थानीय सार्वजनिक हितों के सम्बन्ध में निर्णय किया करते थे।

ये ग्रामा यदरणय याः अछिभूभ्याम।

ये संग्रामाः सामेति यस्तुष चारू वदेभते।।

ग्राम सभा में अध्यक्षों का निर्वाचन हुआ, जो ग्राम का शासन करते थे। इस व्यवस्था में गॉव के सभी लोगों के स्थान पर उनके द्वारा निर्वाचित थोड़े से सदस्यों की ग्राम सभा बनी। ग्राम सभा के सदस्य लोग दायित्व के साथ कार्यो का संपादन करते थे। ग्राम सभा का कार्य–क्षेत्र ग्राम तक ही मर्यादित व सीमित था, जिसमें जनषक्ति भी कम थी। जनषक्ति को बढ़ाकर बड़े–बड़े कार्यो का सम्पादन करने के विचार से अनेक ग्रामों को मिलाकर समाज का विस्तार कर समिति बनाने की भावना विचारकों में उठी, फलतः जनषक्ति और अधिक उत्क्रान्त होकर समिति में परिणत हुई– ''सोदं कामत् स समितों, न्यक्रामात्'' (अथर्ववेद 8/10)

समिति का अर्थ राष्ट्र समिति है, जो अनेक ग्रामों का निरीक्षण करने के लिए अनेक ग्रामों को मिलाकर बड़ी समिति के रूप में हुई। अब तक संघीय शक्ति अनेक भागों में बिखरी हुई थी, जो इस समिति के शासन के अन्तर्गत संगठित हो गयी। इस प्रकार अप्रत्यक्ष निर्वाचन के द्वारा समिति का संगठन हुआ। समिति के संगठन तक राजा के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की गयी थी। शासन व्यवस्था पूरी तरह जनतांत्रिक थी।

राष्ट्र समिति में प्रत्येक ग्राम सभा के प्रतिनिधि बैठकर नियम बनाते थे, जिनके कार्यान्वयन के लिए कार्यकारिणी समिति की आवश्यकता प्रतीत हुई; फलतः जनषक्ति और अधिक उत्क्रान्त हुई, और आमन्त्रण अर्थात् मंत्रिमण्डल में परिणत हुई।[1]

इसके अतिरिक्त एक व्यावहारिक, पहलू यह है कि मनुष्य उन कार्यो में स्वाभाविक रूप से रूचि लेता है, जो उसके 'हम' या 'हमारे' के हित में हो। यही सामुदायिकता का भाव है। इसे ही जय प्रकाष नारायण ने 'समुदायवादी समाज' कहा तो गांधी ने 'सर्वोदय समाज' कहा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पंचायतीराज हमें परम्परा से प्राप्त हुई एक व्यवस्था है। हमारे जीवन की आधारभूत इकाई के रूप में पंचायतें हमेषा ही विद्यमान रही हैं। गॉवों में गणतंत्र की व्यवस्था इतिहास में कमोवेष प्रत्येक शासनकाल में विद्यमान रही है। इसी प्रकार स्वाधीनता आंदोलन का अवलोकन करें तो गांव व ग्रामवासियों की सषक्त व समर्थ भूमिका का बोध होता है। वस्तुतः महात्मा गॉधी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यही रहा कि उन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन को 'जंन आन्दोलन' के रूप में परिणत कर दिया और इस जन–आन्दोलन के केन्द्र में ग्रामीण जनता ही थी जिसमें स्त्रियों सहित सभी वर्गो के लोग सक्रिय रूप में सहभागी बने। यह भी पंचायतीराज व्यवस्था के आधुनिक रूप हेतु प्रेरणा–स्रोत बना और अंततोगात्वा पंचायतीराज व्यवस्था के अन्तर्गत सभी वर्गों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण की व्यवस्था देते हुए महिलाओं हेतु न्यूनतम एक तिहाई सीटें आरक्षित करने का संवैधानिक प्रावधान किया गया है। ध्यातव्य है कि, वर्तमान सरकार ने महिलाओं के आरक्षण की सीमा बढ़ाकर पचास प्रतिषत कर दिया है। सर्वप्रथम यह उपबंध बिहार सरकार ने किया।

मनुसंहिता में कहा गया है कि, सर्वम् परवषम् दुःखम्, सर्वम् आत्मवषम् सुखम्।[2] अर्थात् परवषता ही दुख है और स्व के अधीन होना ही सुख है। अतएव स्पष्ट है कि सुखों की प्राप्ति 'स्वषासन' के बिना होना निरर्थक होगी। इस 'स्व' का विस्तार समुदाय तक होगा और इस प्रकार पूरे समुदाय के हितों की सिद्धि 'स्वषासन' के माध्यम से संभव हो जाएगी। समाज वास्तव में समुदायों से मिल कर बनता है और समुदाय दो व्यक्तियों के पारस्परिक चेतन सम्बन्धों का फल है।[3] समुदाय में स्वार्थो की एकरूपता तथा अभिन्नता की भावना पायी जाती हैं, जिसे समाजषास्त्र में 'हमभावना कहते हैं। पंचायती राज शब्द का विवेचन करें तो स्पष्ट होता है कि इसका निर्माण 'पंचायत और राज' शब्द का योग है। पंचायत शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'षब्द 'पंचायतन' से हुई है, जिसका अर्थ होता है एक आध्यात्मिक पुरूष सहित पांच व्यक्तियों का समूह।[4] किन्तु कालान्तर में आध्यात्मिक पुरूष की उपस्थिति की शर्त गौण हो गयी और इस प्रकार वर्तमान में पंचायत का अभिप्राय है–प्रधान सहित पांच व्यक्तियों की निर्वाचित सभा। दूसरे शब्द राज का अर्थ है शासन। अर्थात् पंचायतीराज शब्द का अर्थ हुआ प्रधान सहित निर्वाचित सभा द्वारा शासन।

पंचायती राज के सिद्धान्त के लिए 'पंच परमेष्वर' की प्राचीन परम्परा से प्रेरणा ग्रहण की गयी है। इसके पीछे स्थानीय शासन का सिद्धान्त काम कर रहा है : सरकार की निचली इकाइयों को सत्ता का अधिकतम हस्तांतरण और लोकप्रिय निर्वाचन से गठित स्थानीय परिषदों के माध्यम से स्वषासन। यह सिद्धान्त चार बुनियादी धारणाओं पर आधारित हैः राजनीति में जनता की भागीदारी, आर्थिक विकास के लिए संसाधनों का संग्रहण, लोकतंत्र में 'बुनियादी संस्थाओं' का समावेष और राष्ट्रीय एकता की गारंटी।[5] भारतीय परम्परा में 'सभा' व 'समिति' से इसी व्यवस्था का बोध होता है। अथर्ववेद में 'सभा' का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

''सभा च सासमितिष्चावतां प्रजापत दहितारो संविदाने।

येन संगच्छा उपभास षिक्षाच्चारू वदानि पितरः संगतेषु।।

अर्थात् सभा और समिति प्रजापति के लिए दुहिता के समान पोषण योग्य हैं। ये दोनो (सभा व समिति) प्रजापति की रक्षा करें। हे विद्वानों! मुझे ऐसी बुद्धि प्रदान करो जिससे मैं सभा और समिति में सुन्दर विवेकयुक्त वाणी का प्रयोग करूँ।[6]

लोकतंत्र या स्वराज्य में सक्रिय भागीदारी के बगैर जनता का स्वतंत्रता में विष्वास घनीभूत नहीं हो सकता है। आम लोगों का कार्य केवल मतदान करने तक ही न सीमित रह जाय। जनता को यह विष्वास हो जाना चाहिए कि वे भी लोकतांत्रिक सत्ता के ढांचे के अंग हैं और यह तभी संभव है जबकि स्थानीय स्तर पर स्वायत्त शासन की इकाइयां उपलब्ध हों। यदि सत्ता का केन्द्रीकरण होगा तो निष्चित रूप से उसके भागीदारी अपेक्षाकृत कम लोग ही बन सकेगें।[7]

वास्तव में, पंचायती राज तृणमूल लोकतंत्र (Grassroot Democracy) का व्यावहारिक रूप है, जो सुदूर गांव के प्रत्येक परिवार को केन्द्र सरकार के साथ जोड़ देता है। स्थानीय शासन की मूल इकाई परिवार है।[8] परिवार के पास कुछ निष्चित आधारभूत अधिकार होते हैं, जिनमें राज्य द्वारा किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाता है। किन्तु, कुछ गतिविधियॉ ऐसी होती हैं, जिनका निष्पादन कई परिवार सामूहिकता के साथ ही कर सकते हैं। इन गतिविधियों का संचालन ग्राम पंचायत बेहतर तरीके से कर सकती है। इस कारण आवश्यक

है कि ग्राम पंचायतें गतिषील रहें, जिसमें कि ग्रामीण समुदाय के विभिन्न पहलुओं के साथ उचित सामंजस्य बना रहे। चूंकि इस व्यवस्था की इकाई परिवार है; अतः लोग परिवार के उत्थान हेतु स्वतः प्रेरित होगें और ऐसी स्थिति में वे अपनी समस्याओं को चिन्हित करने व विकास के खाके को तैयार करने का स्वतःस्फूर्त प्रयास करेंगे, जिससे कि उनके परिवार का एवं उनके समुदाय का विकास सुनिष्चित हो सके।

इसलिए आवश्यक है कि सत्ता का विकेन्द्रीकरण ग्राम पंचायत के स्तर तक प्रभावी ढंग से हो। गॉवों में लोकतंत्र की वास्तविक स्थापना के लिए आवश्यक है कि आम लोगों में स्वामित्व का भाव आये, हितों की एकरूपता व भागीदारी की भावना का विकास हो। इसके बाद ही लोगों में लोकतांत्रिक संस्कृति के प्रति विष्वास बढ़ेगा। लोकतांत्रिक प्रणाली से आत्मीयता, स्थापित होने के बाद ही लोग उसकी रक्षा करने के लिए तत्पर होगें। अन्यथा, इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रायः सत्ता–परिवर्तन के समय जनता की स्थिति मूकदर्षक के समान रहती है। गॉवों के इसी महत्व को रेखांकित करते हुए विनोबा भावे ने कहा कि, ''गांव का सारा इंतजाम गांव को अपने हाथ में लेना होगा। अपना भला–बुरा दूसरा कोई नहीं कर सकता। हम खुद ही अपना उद्वार कर सकते हैं, ऐसा आत्मविष्वास गांव वालों में पैदा करना होगा। गॉव का कारोबार संभालने के लिए ग्राम सभा मजबूत बनानी होगी।[9]

उल्लेखनीय है कि भारतीय राजनीति में 1990 का दषक सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। इस समय गठबन्धन सरकारों का प्रचलन बढ़ा जिसमें क्षेत्रीय दलों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इसके कारण राष्ट्रीय राजनीति में भी नेतृत्व के स्तर पर कई ऐसे परिवर्तन दिखे जो सामाजिक एवं राजनीतिक शक्ति संरचना के परम्परागत प्रतिमानों को खण्डित करते हैं। राज्य के स्तर पर देंखे तो उत्तर प्रदेष में सन् 1989 के बाद से राजनीतिक नेतृत्व पर पिछड़ों एवं अनुसूचित जातियों का वर्चस्व बढ़ा है, जिसके कारण तथाकथित प्रभू जातियों का प्रभाव लगातार कम हुआ है। यह राजनीतिक परिवर्तन उत्तर प्रदेष के ग्रामीण परिवेष के सामाजिक सरंचना में द्रुतगति से हो रहे परिवर्तन का संकेत है।

73 वें संविधान संशोधन के बाद उ0प्र0में ग्रामीण पंचायत के कुल 06 चुनाव (वर्ष 1995, 2000, 2005, 2010, 2015 एवं 2021 में) सम्पन्न हो चुके हैं।

निष्चित रूप से पंचायती राज व्यवस्था ने उ0प्र0 में एक बड़ा ग्रामीण नेतृत्वदाताओं का समूह तैयार किया है जो समय–समय पर प्रदेष ने देष की राजनीति में न केवल सक्रिय सहभागिता करते हैं, वरन् उनमें से कुछ स्वयं भी राजनीतिक नेतृत्व भी करते हैं। इस प्रकार प्रदेष में कुछ 75 जिला पंचायत, 826 क्षेत्र पंचायत व 58189 ग्राम पंचायतें हैं, जो निरन्तर ग्रामीण नेतृत्व की पौधषाला के रूप में अपना योगदान देते हुए ग्रामीण विकास की संकल्पना को भी सार्थक कर रहीं है। इसलिए हम निष्चित रूप से यह कह सकते हैं कि पंचायती राज व्यवस्था ने वास्तविक रूप से ''लोकतंत्र का लोकतंत्रीकरण'' किया है और पंचायती राज व्यवस्था के दार्षनिक पृष्ठभूमि को सार्थक करते हुए ग्रामीण नेतृत्व हेतु सहज व सुलभ अवसर भी उपलब्ध कराया है।

संदर्भ

1. *पंचायती राज विभाग के कार्य–कलाप एवं उपलब्धियों वर्ष 1999–2000. पंचायती राज निदेषायल, उ0प्र0 छठा तल, जवाहर भवन, लखनऊ, पृ0 3, 4*
2. *मनु संहिता, पृ0 160*
3. *बहुगुणा श्री कामेष्वर प्रसाद–'पंचायती राज और उसका समाज–दर्षन', ''लोक स्वराज की ओर'' राजस्थान पंचायत राज संघ, जयपुर (1966) पृ0 28–29*
4. *बंसल वंदना–पंचायती राज में महिला भागीदारी' कल्पस पब्लिकेषन, दिल्ली पृ0 47*
5. *कोठारी रजनी–'भारत में राजनीतिःकल और आज' वाणी प्रकाषन नई दिल्ली (2005) पृ0 150–51*
6. *पंचायती राज विभाग के कार्य–कलाप एवं उपलब्धियॉ वर्ष 1999–2000, पंचायती राज निदेषालय, उ0प्र0 छठा तल, जवाहर भवन, लखनऊ, पृ0 1*
7. *जोशी डॉ0 आर0पी0, मंगलानी डॉ0 रूपा भारत में पंचायतीराज, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर (2003) पृ0 2–3*
8. *डे एस0के0, पंचायती राज फिलॉसफी एण्ड आब्जेक्टिव, ''लोक स्वराज्य की ओर'', राजस्थान पंचायत राज संघ, जयपुर (1966) पृ0 10–11*
9. *कटारिया डॉ0 सुरेन्द्र, 'पंचायती राज संस्थाए : अतीत, वर्तमान और भविष्य'– नेषनल पब्लिषिंग हाउस, नई दिल्ली (2007) पृ0 29 से उद्धृत।*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ.54-57

गोपाल कृष्ण गोखले एक रचनात्मक आलोचक

डॉ० अभिलाष सिंह यादव *

गोखले भारत की सजीव आत्मा के प्रतीक थे। उनके लिए भारत के हित सर्वमान्य और सर्वोपरि थे। लगभग चार वर्ष तक उन्होंने लार्ड कर्जन की विभिन्न अवसरों पर आलोचना की। वह रचनात्मक आलोचना के समर्थक थे। इम्पीरियल कौंसिल में बैठकर वह अकसर कहा करते थे कि उदार साम्राज्यवाद की भावना के आधार पर अंग्रेज अपना और इस देश दोंनों का हित कर सकते हैं, लेकिन यदि दृष्टिकोण संकीर्ण रहा तो दोनों का ही अहित होगा। वह अपनी स्पष्ट आलोचनाओं के बाद वायसराय से क्षमा मॉग लेते थे। उनकी आलोचनाओं का स्वरुप इम्पीरियल कौंसिल में जितना अधिक मुखरित हुआ वह स्वयं में ही एक उपलब्धि था।

भारत के सम्बन्ध में उन्होंने 14 अगस्त, सन् 1890 में अपने बजट भाषण के सम्बन्ध में कहा था कि भारतवर्ष में जन्मदर घट रही है और मृत्युदर बढ़ रही है। कृषि में अनावश्यक गिरावट आ रही है। उन्होंने भारतीयों के उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त न करने के सम्बन्ध में बम्बई विधान–परिषद् में सरकार की आलोचना की। उनके अनुसार प्रत्येक देश में उनके नागरिकों के योग्यता के अनुसार प्रशासन पदों पर नियुक्त किया जाता है। लेकिन भारत में भारतीयों को यह अवसर बहुत कम उपलब्ध होता है। गोखले को यह जानकर अत्यधिक दुख होता था कि भारतीय अर्थव्यवस्था पर अनावश्यक रुप से भार पड़ रहा है। उन्होंने सरकार की इस दृष्टिकोण से कई बार आलोचना की। शिक्षा के प्रसार की रफ्तार इतनी कम थी कि गोखले के यह कहते हुए दुःख अनुभव हुआ कि भारतवर्ष के पॉच गॉवों में से चार गॉवों मे कोई शिक्षण सुविधा नहीं है तथा आठ बच्चों में से सात बच्चे अज्ञान के अन्धकार में अपना जीवनयापन कर रहे हैं। साठ से सत्तर लाख लोग भारतवर्ष में भरपेट भोजन नहीं कर पाते। गत् 10 वर्षों में बीस लाख लोग भूख से तड़प–तड़प कर मर गये।[1] इस प्रकार उन्होंने ऑकड़ों के आधार पर तथ्यों के आधार पर ब्रिटिश शासन की जहॉ एक तरफ

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, महामाया राजकीय महाविद्यालय, धनूपुर, हण्डिया, प्रयागराज

आलोचना की वहॉ दूसरी तरफ उन्होंने सुझाव देकर प्रशासन को लोकप्रिय बनाने का मार्ग भी दिखाया। यही कारण है कि उनकी आलोचना को ब्रिटिश शासन महत्वपूर्ण सुझावों के रुप में स्वीकार करता था।

स्वदेशी तथा भारतीय हितों के समर्थक – गोखले ने उदारवाद की भूमिका को इस रुप में सम्पन्न किया कि भारतीय हितों को वह सफलता पूर्वक सम्पन्न कर सके। लार्ड कर्जन की आलोचना के माध्यम से उन्होंने सम्पूर्ण ब्रिटिश शासन को भारतीय हितों की उपेक्षा करने पर प्रताड़ित किया। उन्होंने स्वदेशी को एक अमूल्य भावना के रुप में स्वीकार किया। ''स्वदेशी अथवा अपने राष्ट्र से प्रेम का दृष्टिकोण मानवता के ह्रदय में उत्पन्न एक सुन्दरतम् विचार है। मातृ–भूमि के लिए त्याग सबसे उत्तम स्वदेशी भावना है। स्वदेशी का विचार इतना भावनात्मक और प्रभावात्मक है कि इसकी कल्पना से विचारों में कम्पन्न तथा वास्तविक अनुभूति से मनुष्य परम आनन्द की स्थिति में पहुॅच जाता है। भारत को आज इसी अनुभूमि की सबसे अधिक आवश्यकता है। इस विचार का यह प्रभाव होता है कि प्रत्येक व्यक्ति देश की सेवा में लग जाता है।''[2]

सेलबाई आयोग के समक्ष उन्होंने आर्थिक विषयों के सम्बन्ध में जिन तर्कों को प्रस्तुत किया उनके आधार पर उनके राष्ट्रीय हित–चिन्तन की भावना मुखर होती है। लोक–सेवाओं के भारतीयकरण का प्रस्ताव, सेना के व्यय में कमी करने, कर 'व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता पर जोर देकर उन्होंने भारतीय समाज की अथक सेवा की। उन्होंने बम्बई विधान परिषद् के सदस्य के रुप में तथा इम्पीरियल कौंसिल के सदस्य के रुप में प्रशासकीय व्यवस्था के दोषों की ओर जहॉ प्रशासन को जागरुक किया वहॉ उन्होंने ब्रिटिश शासकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन का भी आग्रह किया। उनमें सच्ची राष्ट्रीय भावना ओतप्रोत थी। तिलक के अनुसार, ''गोखले में अनेक गुणों का भंडार था लेकिन उनमें सबसे महान् गुण, अल्प आयु से राष्ट्र की निःस्वार्थ भाव से तथा पूर्ण समर्पण भावना से सेवा करना था।''[3]

राजनीति का अध्यात्मिकरण

गोखले में भारत को प्राचीन आत्मा अपने पूर्ण वैभव के साथ मुखरित थी। भारतीय संस्कृति सद्भाव जनित व्यवहार की धरोहर है, जिसमें स्वयं कष्ट सहने की प्रवृति है। किसी दूसरे को कष्ट देने की इच्छा नहीं। उदान्त भावना से अनुप्रेरित इस भारतीय पवित्र आत्मा ने अपने देश के असंख्य लोगों को हिंसक साधनों और पाशविक मनोवृति छोड़ने के लिए तैयार किया। संवैधानिक प्रतिरोध से अधिक वह किसी विरोध के रुप को नहीं जानते थे।

गोखले उदार प्रवृति के राजनेता थे। उन्होंने साध्य और साधनों के संदर्भ में साधनों की पवित्रता के लिए सबसे अधिक आग्रह किया। उनका यह आग्रह इतना प्रबल थाकि उन्होंने लार्ड कर्जन जैसे प्रतिगामी और कठोर वायसराय के हृदय में किसी प्रकार की संकुचित भावना नहीं थी। वह तो हृदय के प्रेमी थे। वह ब्रिटिश शासन में कष्टों के साथ साथ सुखों और सुविधाओं को भी समान रुप से भोगने का समर्थन करते हैं। उनकी वाणी का आक्रोश भी माधुर्य को अपने में समेटे है। उन्होंने देश प्रेम के उपदेष नहीं दिये बल्कि कष्ट मे पड़ी सम्पूर्ण जाति की सेवा करने की भी शपथ ली। ''भारतीय सेवक संघ'' की स्थापना के पीछे पवित्र सेवा भावना के अंकुर अंकुरित हैं। व्यक्तिगत सम्मान के लिए उन्होंने कभी भी भागदौड़ नहीं की। उन्होंने 'नाइटहूड' उपाधि के प्रस्ताव को जिस उदारता से अस्वीकार किया उसमें इनकी सेवा भावना, प्रेम भावना, त्याग भावना और भक्ति भावना समाहित है।

गोखले आधी शताब्दी से अधिक समय पूर्व भारत को जिस मार्ग पर चलने को प्रेरित कर गये थे, गॉधी ने अहिंसा के उसी मार्ग पर चलकर देश को स्वतन्त्रता का विमल प्रकाश दिया। हमारी स्वतन्त्रता की आधारशिलाा घृणा और द्वेष पर आधारित नहीं थी, फलतः हमने घृणा और द्वेष के रुप में स्वतन्त्रका को प्राप्त नहीं किया। गोखले ने मातृ–भूमि के लिए त्याग करने में कभी संकोच नहीं किया। मभी समय की प्रतीक्षा नहीं की। वह शान्ति और सुरक्षा को देश के लिए आवश्यक मानते थे। संवैधानिक साधनों के प्रति उदार भक्ति–भावना रखने वाले इस सन्त राजनीतिज्ञ के लिए किसी से घृणा रखना तो दूर रहा, कठोर शब्द भी बोलना कठिन था। उन्होंने तिलक की मुक्ति के लिए, लाला

लाजपतराय के देश निष्कासन को समाप्त कराने के लिए तथा कॉग्रेस के दोनों विचारधाराओं के लोगों में मेल कराने के लिए जिस प्रकार प्रयत्न किये वह उनकी उदार मनोवृत्ति का ही परिणाम था।

सन्दर्भ

1 पार्वते टी0वी0 गोपाल कृष्ण गोखले। पृष्ठ सं0–207, 208

2 बनारस कॉगेस अधिवेशन 1904 में अध्यक्षीय भाषण से।

3 पार्वते टी0वी0 गोपाल कृष्ण गोखले। पृष्ठ सं0–464

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ.58-66

आजमगढ़ जनपद की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक यात्रा : एक अध्ययन

डॉ० मनीष कुमार सिंह *

आजमगढ़ जनपद का परिचयात्मक परिदृश्य

आजमगढ़ जनपद 25 अंश 38 मिनट और 26 अंश 27 मिनट उत्तरी अक्षांश तथा 82 अंश 40 मिनट एवं 83 अंश 52 मिनट पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। पूर्व में बिहार तथा पश्चिम में हरिद्वार तथा उत्तर में हिमालय की धवल चोटियों तथा दक्षिण में विंध्य की पहाड़ियों के बीच यह जनपद मध्य गंगा घाटी के हृदय भाग में स्थित है। जिस प्रकार राजनैतिक एवं आर्थिक दृ ष्टि से आजमगढ़ पूर्वी उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधि जनपद है ठीक उसी प्रकार प्राकृतिक परिस्थितियों में ये मध्य गंगा घाटी के प्रतिनिधि भूभाग में हैं। इसके उत्तरी सीमा पर गोरखपुर, बलिया और देवरिया, उत्तर–पश्चिम में अम्बेडकर नगर, पश्चिम में सुल्तानपुर, दक्षिण में जौनपुर दक्षिण–पूर्व में गाजीपुर तथा पूर्व में मऊ जनपद है। सामान्य रूप से यहाँ का भूभाग सपाट मैदान है। तालाबों, भीटों तथा ऐतिहासिक अवशेषों के अतिरिक्त इस जनपद में प्राकृतिक सौन्दर्य नहीं है। समुद्र तट से इस भूभाग की औसत ऊँचाई 75 मीटर है, यहाँ के समतल मैदान नदियों द्वारा लायी मिट्टी से बने हुए हैं। यह मिट्टी अधिकांश भाग में मुलायम और दोमट है।[1]

2011 की जनगणना के अनुसार आजमगढ़ जिले की कुल जनसंख्या 4613913 है जिसमें ग्रामीण जनसंख्या की भागीदारी 91.5 प्रतिशत (4220512) तथा नगरीय जनसंख्या की भागीदारी 8.5 प्रतिशत (393401) है। कुल जनसंख्या में से पुरूषों की जनसंख्या 2285004 है जिसमें 91.1 प्रतिशत पुरूष ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 8.9 प्रतिशत पुरूष नगरीय क्षेत्रों में निवास करते हैं। कुल जनसंख्या में से महिलाओं की जनसंख्या 2328909 है जिसमें 91.8 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 8.2 प्रतिशत महिलाएँ शहरी क्षेत्रों में निवास करती है।[2]

आजमगढ़ का कुल क्षेत्रफल 4054 वर्ग किलोमीटर है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रफल का भाग 3967.23 वर्ग किलोमीटर है तथा नगरीय क्षेत्रफल का भाग

* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

86.77 वर्ग किलोमीटर है। आजमगढ़ का जनसंख्या घनत्व 1138 प्रति वर्ग किलोमीटर है जिसमें ग्रामीण जनसंख्या घनत्व 1064 प्रति वर्ग किलोमीटर है तथा शहरी जनसंख्या घनत्व 4534 प्रति वर्ग किलोमीटर है। आजमगढ़ जिले का लिंगानुपात 1019 है जिसमें ग्रामीण लिंगानुपात 1026 है तथा शहरी लिंगानुपात 945 है। बाल लिंगानुपात (0–6 वर्ष) 919 है जिसमें ग्रामीण बाल लिंगानुपात 919 है तथा शहरी बाल लिंगानुपात 920 है। 2011 की जनगणना के अनुसार आजमगढ़ जिले में कुल गाँवों की संख्या 4101 है तथा सामान्य रूप से कुल परिवारों की संख्या 663260 है संस्थागत रूप से परिवारों की संख्या 1307 तथा आवास–विहीन परिवारों की संख्या 665 है।[3]

2011 की जनगणना के अनुसार आजमगढ़ जिले की साक्षरता दर 70. 90 प्रतिशत है जिसमें पुरूष साक्षरता दर 81.30 तथा महिला साक्षरता दर 60. 90 है। ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर 70.30 प्रतिशत है जिसमें पुरूष 81.20 प्रतिशत तथा महिला 59.90 प्रतिशत भागीदार है। वहीं नगरीय साक्षरता दर 77.30 प्रतिशत जिसमें पुरूष 82.60 प्रतिशत तथा महिलाएँ 71.70 प्रतिशत भागीदार है। जिले के अनुसूचित जाति की साक्षरता दर 63.90 प्रतिशत है जिसमें पुरूष 75.90 प्रतिशत महिलाएँ 52.40 प्रतिशत भागीदार है। ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जाति साक्षरता दर 63.90 प्रतिशत है जिसमें पुरूष 75.90 प्रतिशत तथा महिलाएँ 52.30 प्रतिशत भागीदार हैं। नगरीय क्षेत्रों में अनुसूचित जाति साक्षरता दर 65.60 प्रतिशत है जिसमें पुरूष 74.80 प्रतिशत तथा महिलाएँ 55. 50 प्रतिशत भागीदार हैं। जनपद की अनुसूचित जनजाति साक्षरता दर 70.30 प्रतिशत है जिसमें पुरूष 81.60 प्रतिशत तथा महिलाएँ 59.10 प्रतिशत भागीदार हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जनजाति साक्षरता–दर 69.20 प्रतिशत जिसमें पुरूष 80.90 प्रतिशत तथा महिलाएँ 57.60 प्रतिशत भागीदार हैं वही नगरीय क्षेत्रों में अनुसूचित जनजाति साक्षरता दर 79 प्रतिशत है जिसमें पुरूषों की साक्षरता दर 86.90 प्रतिशत तथा महिलाओं की साक्षरता दर 70.60 प्रतिशत है। जिले में अनुसूचित जाति की कुल जनसंख्या में भागीदारी 25.40 प्रतिशत है तथा अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या की भागीदारी 0.20 प्रतिशत है।[4]

वर्तमान में आजमगढ़ जनपद मंडल स्तर का है, आजमगढ़ मंडल में आजमगढ़, मऊ और बलिया आते हैं। जिले में कुल आठ तहसीलें हैं जो निम्नलिखित हैं– सदर, बुढ़नपुर, लालगंज, मार्टिनगंज, मेहनगर, निजामाबाद,

फूलपुर तथा सगड़ी। इस जनपद में 15 नगर पालिकाध्पंचायतें तथा 22 विकासखण्ड हैं।[5]

आजमगढ़ जनपद की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक यात्रा

आजमगढ़ उत्तर प्रदेश राज्य के पूर्वी जिलों में से एक है। यह प्राचीन काल के कौशल राज्य में उभरकर विकसित हुआ। इसका उत्तरी भाग मल्ल साम्राज्य में स्थित था। कौशल राज्य बुद्धकालीन समय में अपने चरम पर पहुँच चुका था। जिले के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे ऐतिहासिक साक्ष्य मिले हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि यहाँ का अतीत गौरवशाली रहा है। आज भी यहाँ पुराने किले, बृहद–जलाशय तथा ऐसे ऐतिहासिक साक्ष्य मौजूद हैं जो यहाँ के इतिहास के समृद्ध होने का प्रमाण है।[6]

परंपरागत रूप से रहने वाले समुदायों में राजभर, सोरी तथा चेरू थे। राजभरों का मुखिया जिसका नाम अखिलदेव था जो जिले के फूलपुर तहसील के परगना माहुल के दिहादौर में रहता था, यह काफी शक्तिशाली था, यहाँ से प्राचीन जलाशयों, टीले तथा अनेक ऐतिहासिक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं।

कालांतर में यहाँ मनु के द्वारा सूर्यवंशी साम्राज्य की स्थापना की गयी। इस साम्राज्य का पतन चंद्रवंशी साम्राज्य के द्वारा किया गया। यहाँ नहुसा का टीला साक्ष्य मिला है जो घोसी तहसील में स्थित है (वर्तमान में मऊ में स्थित है) यह टीला राजा नहुसा से सम्बंधित है।[7]

1500 बी०सी० में मगध राज्य के हर्यक साम्राज्य के बिम्बिसार एवं अजातशत्रु तथा कौशल राज्य के प्रसेनजीत के बीच युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप कौशल राज्य को मगध राज्य में विलय कर दिया गया जिसमें आजमगढ़ के तत्कालीन भाग भी शामिल थे। इस समय के बाद यहाँ का इतिहास कुषाण काल तक अस्त–व्यस्त था।[8]

चौथी शताब्दी (322ई०) में आजमगढ़ गुप्त साम्राज्य का अंग बन गया। उस समय चन्द्रगुप्त शासक थे। सन् 774 से 818 तक कन्नौज पर बज्रायुध, इन्ध्रायुध व चक्रायुध आदि ने शासन किया। काशी के निकट मनोचा नामक स्थान पर कन्नौज राजाओं ने अपनी एक दूसरी राजधानी बनाई। आजमगढ़ के अनेक क्षेत्र उनके राज्य की परिधि में शामिल थे। शर्की सल्तनत ने जौनपुर की स्थापना की तो 14 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दिनों में आजमगढ़ जौनपुर

के अधिपत्य में आ गया। बाद में जौनपुर पर लोदी वंश ने में कब्जा किया और आजमगढ़ लोदियों के कब्जे में चला गया। जौनपुर की सल्तनत शेरशाह सूरी के हाथ में आयी तब आजमगढ़ में बहुत सारे कार्य हुए। आजमगढ़ शहर से मिले शिलालेख में ज्ञात होता है कि 1553 ई० में यहाँ बाबर का शासन हो गया था। अकबर के शासनकाल में आजमगढ़ में 12 परगने थे। इन परगनों में मुहम्मदाबाद, मऊ, किरातमिन्तू, घोसी, सगड़ी, गोपालपुर, नत्थूपुर, चकेसर, निजामाबाद, देवगाँव, चिरैयाकोट व कौड़िया, शामिल था। उन दिनों आजमगढ़ का भूक्षेत्र 106003 एकड़ था तथा 252643 रूपये लगान आती थी। 18वीं सदीं के प्रारम्भ में आजमगढ़ अलग प्रशासनिक इकाई का रूप धारण करता हुआ प्रतीत होता है। उसी दौरान इस जिले में सभी परगनों को जौनपुर सरकार से अलग कर स्थानीय जागीरदार के हवाले कर दिया गया और आजमगढ़ के राजवंश की स्थापना हुई। यह गौतम राजपूत राजवंश निजामाबाद परगने के मेहनगर में रहता था। ऐसे में जिले के शासन सत्ता का केन्द्र मेहनगर बन गया।[9]

ऐतिहासिक एवं पौराणिक दृष्टि से आजमगढ़ की काफी महत्ता है। जब समूचा भारत अंग्रेजी हुकूमत में जकड़ा सिसकियाँ ले रहा था उस समय यहाँ के नौजवानों ने 3 जून 1857 को आजादी का झंडा लहराकर शहर के शासन–सत्ता की कमान अपने हाथों में थाम लिए थे। इसी जिले में दुर्बासा दत्तात्रेय व चंद्रमा ऋषि की तपोस्थलियाँ, माँ पाल्हमेश्वरी धाम एवं महाराज जनमेजय की सर्पयज्ञ स्थली अवन्तिकापुरी भी स्थित है। आजमगढ़ की साहित्यिक विरासत ने अगर देश व समाज को रोशन किया है तो समूचे विश्व को चलने का रास्ता दिखलाया है।[10]

15वीं सदी में चंद्रसेन सिंह नाम से एक राजपूत थे, उनके दो पुत्र सागर सिंह एवं अभिमन्यू सिंह हुए। अभिमन्यू सिंह मुगल सेना में सिपाही हो गये। उनके प्रतिभा एवं योग्यता की चर्चा सम्राट जहाँगीर के दरबार दिल्ली तक पहुँची। उन्हीं दिनों जौनपुर के पूर्वी क्षेत्रों में कई विद्रोह हुए, उन विद्रोहों पर काबू पाने के लिए सम्राट ने अभिमन्यू सिंह को लगाया। इसी बीच अभिमन्यू सिंह सम्राट के प्रेम से प्रभावित होकर इस्लाम धर्म ग्रहण करके दौलत खाँ हो गये। सम्राट ने जौनपुर के पूर्वी भाग के 22 परगने पुरस्कार के रूप में देते हुए उन्हें जागीरदार बनाया और 1500 घुड़सवारों का सालार बनाकर मेंहनगर

राज्य में भेजा, दौलत खाँ शाहजहाँ के शासनकाल में एक सम्मानित सिपहसालार थे, उनकी मृत्यु कब और कैसे हुई इसका इतिहास में कुछ पता नहीं है। वह निःसंतान रहे जिसके कारण उन्होंने अपने भतीजे हरिवंश सिंह गौतम को गोद ले लिया जो कि अपने चाचा दौलत खाँ (अभिमन्यू सिंह) से प्रभावित होकर तथा जागीर व पद के लालच में मुसलमान हो गये। परिणामस्वरूप सन् 1629 में हरिवंश सिंह को दौलत खाँ की जागीर तो मिली ही राजा की पदवीं भी मिल गयी। उन्होंने मेंहनगर को अपने राज्य की राजधानी बनायी। इनके दो बेटे गंभीर सिंह और धरनीधर सिंह रहे। हरिवंश सिंह ने तो इस्लाम स्वीकार कर लिया था परंतु उनकी धर्मपत्नी रानी रत्नज्योति कुँवर उनसे अलग होकर रहने लगी। रानी रत्न– ज्योति कुँवर ने सनातन धर्म नहीं छोड़ा।[11]

स्वाभिमानी एवं वीरांगना होने के नाते पति से अलग रहते हुए हरिवंशपुर कोट से मेहनगर जाने वाले रास्ते में 8 किलोमीटर दूर सेठवल ग्राम में रानी रहने लगी। रानी ने यहीं पर 52 एकड़ भूमि राजा से माँग लिया और यहाँ 1629 में पोखरा, हनुमान मंदिर, कुँआ तथा सराय बनवाया। उपरोक्त जगह को आजादी के बाद सन् 1952 में नजूल भूमि यानि रानी का कोई वारिस न होने के कारण शासन द्वारा यह भूमि जिला पंचायत आजमगढ़ को स्थानांतरित कर दी गई।

गंभीर सिंह राजा हरिवंश सिंह और रानी रत्नज्योति कुँवर के बड़े पुत्र थे। हरिवंश सिंह की मृत्यु के बाद वही मेंहनगर के राजा बने। गंभीर सिंह के तीन पुत्र विक्रमाजीत सिंह, रूद्र सिंह तथा नारायण सिंह थे। विक्रमाजीत सिंह अपने पिता गंभीर सिंह की मृत्यु के बाद राजा बने, राजपाट के चक्कर में उन्होंने अपने छोटे भाई रूद्र सिंह की हत्या करवा दी। रूद्र सिंह की विधवा रानी भवानी कुँवर ने न्याय पाने के लिए औरंगजेब के दिल्ली राजदरबार में फरियाद की। रानी भवानी कुँवर के फरियाद पर विक्रमाजीत को दिल्ली बुलाकर कारागार में डाल दिया गया। इस्लाम धर्म ग्रहण करने की शर्त पर उन्हें मुक्त किया गया। मुसलमान बन जाने के कारण उनकी हिन्दू पत्नी ने उनसे नाता तोड़ लिया। बाद में उन्होंने इस्लाम धर्म ग्रहण कर चुके चन्देल राजा की पुत्री से विवाह किया। इस मुस्लिम रानी से दो पुत्र आजम खाँ और अजमत खाँ हुए। बाद में विक्रमाजीत एवं सम्राट औरंगजेब में ठन गयी। औरंगजेब ने सेना

भेजकर सम्राट विक्रमाजीत को मरवा डाला। सन् 1650 में विक्रमाजीत के छोटे भाई रूद्र सिंह की विधवा रानी भवानी कुँवर की भी मृत्यु हो गयी। सन् 1665 से पहले आजमगढ़ मेंहनगर राज्य में पड़ता था।[12]

सम्राट औरंगजेब के शासनकाल में मेंहनगर राज्य दो भागों में बँटा। पश्चिमी भाग आजम खाँ को मिला, उन्होंने सन् 1665 में आजमगढ़ शहर बसाकर इसे अपनी राजधानी बनाया। आजम खाँ की युद्ध कला से प्रभावित होकर औरंगजेब ने जयपुर के राजा जय सिंह के साथ दक्षिण में शिवाजी के साथ संधि करने के लिए भेजा। शिवाजी का दिल्ली में अपमान होने पर राजा आजम खाँ सम्राट के विद्रोही हो गये। अंततः सम्राट औरंगजेब ने उन्हें मरवा दिया। अजमत खाँ ने भी बगावत का झंड़ा बुलंद किया। सम्राट औरंगजेब ने अजमत खाँ को सबक सिखाने के लिए इलाहाबाद के सूबेदार हिम्मत खाँ के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी। आजमगढ़ के बड़े पुल के पास दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ, इस युद्ध में अजमत खाँ पराजित हुए। अजमत खाँ के चार पुत्र एकराम खाँ, मुहब्बत खाँ, नौबत खाँ तथा सरदार हुए, दोहरीघाट के पास घाघरा नदी में सबने छलांग लगायी। चारों पुत्र तो नदी के उस पार पहुँच गये परंतु अजमत खाँ की नदी में डूबने से मृत्यु हो गयी।

अजमत खाँ की मृत्यु के बाद उनके बड़े पुत्र एकराम खाँ राजा बने। उन्होंने अपनी सेना को मजबूत किया तथा खुद को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासनकाल में वाराणसी और गाजीपुर जिले के कुछ हिस्से को काटकर 18 सितम्बर 1832 को आजमगढ़ को जिले का दर्जा प्रदान किया गया। सन् 1857 के गदर से आजमगढ़ अछूता नहीं रहा। कुँवर सिंह आरा जिले के शाहाबाद के शासक थे। अंग्रेजी हुकूमत ने उनका शासन–सत्ता छीन लिया। उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ बगावत छेड़ दिया। अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने के लिए उन्होंने क्रांतिकारियों को एकजुट करना शुरू किया। जगह–जगह क्रांतिकारियों को एकजुट करते हुए वह आजमगढ़ के लिए चलें। इसके पहले ही यहाँ के क्रांतिकारियों ने कई प्रमुख अंग्रेज अधिकारियों को मौत के घाट उतारते हुए 3 जून 1857 को आजमगढ़ शहर सहित यहाँ के सभी कार्यालयों पर अपना कब्जा जमा लिया। आजमगढ़ में हर जगह स्वंतत्रता का झण्डा लहराने लगा। सन् 1857 में करीब तीन महीने तक आजमगढ़ अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त रहा। इस दौरान कई लड़ाईयाँ भी

हुई। कप्तानगंज के पास भीलमपुर छपरा गाँव पूरी तरह से क्रांति का अलख जगा चुका था। अंग्रेजी फौज ने पूरे गाँव को घेर लिया। गाँव के तमाम लोग अंग्रेजी हुकूमत के आगे नतमस्तक हो गये मगर चार राजपूत रणबाकुरों ने हरिनाम सिंह के नेतृत्व में मोर्चा संभाल लिया। गाँव के बाग में लड़ाई शुरू हुई, अंग्रेजी फौज के कई सिपाहियों को मौत के घाट उतारते हुए ये चारों रणबाँकुरे शहीद हो गये। गाँव के इस बाग में प्रतिवर्ष शहीद मेला भी लगता है। आजमगढ़ पहुँचने के बाद कुँवर सिंह ने अपनी विशाल सेना को कई टुकड़ियों में बाँट दिया। एक टुकड़ी अजमतगढ़ पहुँची, अजमतगढ़ में भूखे–प्यासे क्रांतिकारियों ने रईस भाईयों गोगा साव तथा भीखी साव से मदद माँगी उन्होंने तत्काल कई कुँओं में कई बोरे चीनी डलवा दिए सारे कुँओं का पानी ही शरबत हो गया, सभी क्रांतिकारी अपनी प्यास बुझाये। दोनों भाईयों ने क्रांतिकारियों की इस टुकड़ी को राशन व धन भी दिया। इसी क्षेत्र के छपरा सुल्तानपुर गाँव के रहने वाले वंशी सेठ एवं कवल सिंह ने अंग्रेंजो से इसकी मुखबिरी कर दी। अंग्रेजी फौज ने इनके घर को घेर लिया, यह दोनों भाई तो पकड़ लिये गये मगर इनके विश्वशनीय मुंशी भैरो प्रसाद ने पूरे परिवार को किसी तरह निकालकर भगा दिया। 16 सितम्बर 1858 को गोगा साव व भीखी साव को काला पानी की सजा दे दी गयी।[13]

आजमगढ़ की पौराणिक गाथा भी काफी समृद्ध है। अत्री मुनि एवं सती अनुसूइयाँ के तीनों पुत्रों ऋषि दुर्वासा, दत्तात्रेय एवं चंद्रमा मुनि की तपो स्थलियाँ इसी जिले में हैं। तीनों भाईयों ने अपने पिता व माँ की आज्ञा से इसी जिले में तमसा नदी के पावन तट पर यज्ञ किया। यही नहीं महाराज परीक्षित की सर्प–दंश से हुई मृत्यु के बाद उनके पुत्र महाराजा जनमेजय ने इसी जिले के अवंतिकापुरी में सर्प–यज्ञ किया। सर्प–यज्ञ के लिए बनाया गया हवन कुंड आज भी विशाल सरोवर के रूप में मौजूद है।

भगवान शंकर के मना करने के बावजूद उनकी पत्नी सती जब अपने पिता के यहाँ धार्मिक आयोजन में भाग लेने पहुँची तो उपेक्षा होने पर हवनकुंड में कूदकर अपनी जान दे दी थी। वह स्थान आजमगढ़ में ही है जिसे आज भैरव–धाम के नाम से जाना जाता है। गुस्साये भोले शंकर जब सती का शव लेकर ब्राह्माण्ड का चक्कर काट रहे थे तो पैर का कुछ हिस्सा इस जिले के पल्हना में गिरा था। उस स्थान को आज पवित्र पाल्हमेश्वरी धाम के नाम से

जाना जाता है। साहित्यिक दृष्टि से आजमगढ़ हमेशा समृद्ध रहा है। यहाँ की माटी में जन्में महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन, आयोध्या प्रसाद उपाध्याय 'हरिऔध', कैफी आजमी, श्याम नारायण पाण्डेय, गुरू भक्त सिंह भक्त, शैदा सरीखे लोग किसी परिचय के मोहताज नहीं है। अल्लामा शिब्ली नोमानी में तो देशभक्ति का आजीबोगरीब जज्बा था। वह अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के संस्थापक सदस्य थे मगर जब इस विश्वविद्यालय में मुस्लिम शब्द जोड़ा जाने लगा तो वह विरोध कर गये। उन्होंने इस विश्वविद्यालय से पूरी तरह से अपना नाता तोड़ लिया और आजमगढ़ आकर नेशनल कालेज की आधारशिला रखे। उनकी मृत्यु के बाद यहाँ के लोगों ने इस कॉलेज में शिब्ली शब्द जोड़ दिया इस प्रकार कॉलेज का नाम शिब्ली नेशनल कॉलेज हो गया। यहाँ की लाइब्रेरी शिब्ली एकेडमी को आज एशिया की सबसे बड़ी लाइब्रेरी के रूप में जाना जाता है। यहाँ पर तमाम दुर्लभ पुस्तकें व पांडुलिपियाँ हैं।[14]

जिले के दक्षिणी भाग विशेषकर लालगंज तहसील क्षेत्र में काशिका वर्ग की भोजपुरी बोली जाती है। पश्चिमी आजमगढ़ के माहुल पवई इलाके में अवधी प्रभावित भोजपुरी बोली जाती है, उत्तरी आजमगढ़ में बोली जाने वाली भोजपुरी में छपरा और देवरिया जनपदों की भोजपुरी का प्रभाव देखा जाता है। मुस्लिम बस्तियों और कस्बों में उर्दू एवं खड़ी बोली प्रभावित भोजपुरी प्रचलित है।

चौताल, चौता, कजरी, बिरहा और विभिन्न प्रकार के जातीय गीत कहरवा, धोबिया आदि परम्परागत तरीके से पूरे जनपद में गाये जाते है। बिरहा इस जनपद का एक प्रमुख लोकगीत है। इस जनपद में सिराम नाम के एक लोक विश्रुत बिरहा रचनाकार और गायक हुए हैं उनका जन्म आजमगढ़ शहर से 4 किलोमीटर पूर्व तमसा नदी के किनारे बसे जयरामपुर गाँव में 1920 में हुआ था, 26–27 वर्ष की अवस्था में ही 1947 में इनका निधन हो गया। उन्होंने अल्प जीवन काल में 17–18 बिरहा की रचना कर बिरहा जगत में अभूतपूर्व योगदान किया। लोकगीतों के साथ लोकनृत्य क्षेत्र में भी अनेक कलाकार समय–समय पर यहाँ हुए हैं। धोबी नृत्य, अहिरवा नृत्य, पवरिया नृत्य यहाँ प्रचलित है। इसके अलावा कहरवा गीत व नृत्य भी काफी प्रचलित है।[15]

संदर्भ

1. डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैण्डबुक आजमगढ़, सेन्सस ऑफ इंडिया 2011, यू०पी०, सिरीज–10, XII– I, डाइरेक्टोरेट ऑफ सेन्स ऑपेरेसन्स, यू०पी०, पृ० 8–11
2. डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैण्डबुक आजमगढ़, सेन्सस ऑफ इंडिया 2011, यू०पी०, सिरीज–10 XII– I, डाइरेक्टोरेट ऑफ सेन्स ऑपेरेसन्स, यू०पी०, पृ० XV
3. वही, पृ० XV
4. वही, पृ० XV
5. वही, पृ० 6
6. डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैण्डबुक आजमगढ़, सेन्सस ऑफ इंडिया 2011, यू०पी० सिरीज–10, पार्ट–XII– I, डाइरेक्टोरेट ऑफ सेन्सस ऑपेरेसन्स यू०पी०, पृ० 2
7. वही, पृ० 2
8. वही, पृ० 2
9. वही, पृ० 23
10. आजमगढ़ विशेष, दैनिक जागरण, आजमगढ़, 12 अक्टूबर 2010, पृ० 9
11. वही, पृ० 4
12. वही, पृ० 3–4
13. वही, पृ० 4
14. वही, पृ० 9
15. आजमगढ़ विशेष, दैनिक जागरण, आजमगढ़, 12 अक्टूबर 2010, पृ ० 2

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 67-73

प्राचीन भारतीय जीवनशैली एवं वर्तमान परिदृश्य

डॉ० कौशल कुमार पाण्डेय *

हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति सतत सत्य का उद्घाटन करती है, बल्कि हम कहें कि सत्य के आधार पर ही आधृत है। यहाँ तो 'सत्यमेव जयते'[1] का उद्घोष किया गया है। सत्य तो सार्वदेशिक और सार्वकालिक होता है। कितना अच्छा होता ? कि सम्पूर्ण विश्व हमारी इस संस्कृति का अनुकरण और अनुसरण करता। जिससे कि संपूर्ण विश्व में एक शान्ति, सुखद और समरसता का वातावरण आज होता, लेकिन लोभ, मोह, मद और मात्सर्य (ईर्ष्या) के कारण ऐसा हो न सका।

हमारी प्राचीन जीवन शैली छः दोषों के त्याग पर निरन्तर बल देती है। यह मनुष्य के शत्रु हैं– 'षड् दोषाः हातव्याः काम–क्रोध–लोभ–मोह–मद–मात्सर्याश्च'[2]। यही कारण है कि आज समाज में, राष्ट्र में विश्व में, विविध विसंगतियां व्याप्त हैं। सर्वत्र अनाचार, दुराचार, पापाचार, व्याभिचार और भ्रष्टाचार का ताण्डव नृत्य हो रहा है। अनाचार, पापाचार, स्वार्थपरता और दम्भ का ही परिणाम है आज करोना नामक वायरस से उत्पन्न महामारी जिसे 'कोविड–19' की भी संज्ञा दी गयी है।

हमारी संस्कृति, हमारी जीवनशैली तो 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और 'वसुधैव कुटुम्बकम' की रही है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखभाग्भवेत्[3]।।

अयं निजः परोवेति वा गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्[4]।।

आज करोना नाम की महामारी, जिसने सम्पूर्ण विश्व को आक्रान्त कर रखा है। सम्पूर्ण संसार भय से कांप रहा है। भारतीय जनमानस सम्पूर्ण विश्व को 'कुटुम्ब' मानता है। जबकि अन्यत्र ऐसा नहीं है। जैसी कि जनश्रुति है कि चीन देश में इस महामारी का जन्म हुआ। यदि इस देश के मनो–मस्तिष्क में 'सर्वे सन्तु निरामयाः' 'वसुधैव कुटुम्बकम' की किञ्चित् मात्र भावना होती तो यह महामारी कहीं बाहर न संक्रमित हो पाती।

---

* पूर्व प्राचार्य, डी०ए०वी० कॉलेज, लखनऊ

हमारी प्राचीन जीवन शैली–'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' की रही है–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्[5]।।

हम त्याग पूर्वक उपभोग करें। अर्थात् हम शास्त्रोचित विधि से उतना ही अर्जन करें जितनी हमारी आवश्यकता है। लोभ और मोह के कारण यदि उक्त का अनादर करते हैं तो पापाचार और भ्रष्टाचार का जन्म होता है। आज केवल भारत ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व भ्रष्टाचार के चक्रव्यूह में फंसा हुआ है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः'[6]। जब मनुष्य की तृप्ति हो ही नहीं सकती तो धन के अतिरेक अर्जन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता, लेकिन आज वैश्विक परिदृश्य कुछ और ही कहता है। हर व्यक्ति धन की लालसा में सुख–शांति विहीन हो चुका है।

हमारी पुरा जीवन पद्धति कर्मवाद प्रधान रही है, यहाँ भोगवाद और भाग्यवाद का कोई स्थान नहीं है–

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः[7]

शास्त्र विहित कर्मों का सम्पादन करते हुए 100 वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए। गीता भी हमें निष्काम कर्म करने का उपदेश देती है

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'[8]

गोस्वामी तुलसी दास जी भी रामचरित मानस में लिखते हैं–

करम प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा[9]।।

मनुष्य को शास्त्र विहित कर्म करना चाहिए क्योंकि कर्म सम्पादन में ही उसका अधिकार है न कि कर्म–फल में द्य आज करोना जनित महामारी से पूरा राष्ट्र अचंभित हैं, दिग्भ्रमित है, क्योंकि इस महामारी का पूर्व में कोई इतिहास नहीं रहा है। स्कूल, कॉलेज तथा सभी शिक्षण संस्थाओं में अध्ययन–अध्यापन, पठन–पाठन आदि सभी कुछ छिन्न–भिन्न हो गया है। उदाहरण के लिए ऐसी परिस्थिति में एक विद्यार्थी के कर्तव्य पर विचार करें तो इसका उत्तर यह होगा कि ऐसी शून्यता की स्थिति में वह अपना कर्म अर्थात् अध्ययन निष्काम होकर करता रहे बिना परीक्षा की स्थिति और परीक्षा

फल की इच्छा करते हुए। एक विद्यार्थी का अधिकार मनोयोग पूर्वक केवल अध्ययन, पढ़ाई तक ही सीमित है। परीक्षाफल तो स्वयं श्रेष्ठ मिलेगा ही। इसलिए इस महामारी से बचाव करते हुए आप कर्म पथ पर चलते रहें भविष्य तो अच्छा होगा ही। हमारी भारतीय संस्कृति में निराशा का कोई स्थान नही हैं।

वर्तमान में वैश्विक परिदृश्य का प्रमुख केन्द्र बिन्दु करोना वायरस जनित महामारी है। इसका अभ्युदय कहाँ? क्यों? और कैसे हुआ? जिससे आज केवल भारत ही नहीं वरन् अखिल विश्व 'त्राहि मां त्राहि मां' कर रहा है। जैसे कि प्रमाण मिले हैं कि चीन देश में इस महामारी का जन्म हुआ, जहाँ म्लेच्छ संस्कृति का प्राधान्य है। इस संस्कृति में भक्ष्य – अभक्ष्य, ग्राह्यदृत्याज्य का कोई विचार नहीं होता है। कहा जाता है कि चमगादड़ का सूप पीने से करोना वाइरस की उत्पत्ति हुई। वहाँ बिल्ली, कुत्ता, सांप तथा केकड़ा आदि न मालूम कितने जीव जन्तुओं को मारकर खाया जाता है। काश! चीन देश ने भारतीय जीवन शैली को किंचित् मात्र अपनाया होता तो जो आज स्थिति है, वह न होती। भारतीय संस्कृति में हिंसा का कोई स्थान नहीं है। यहाँ तो 'अहिंसा परमो धर्मः' का पदे– पदे उपदेश दिया गया है। जैन तथा बौद्ध धर्म में कायिक हिंसा की तो दूर की बात वाचिक और मानसिक हिंसा को भी त्याज्य बताया गया है। महर्षि वाल्मीकि तो क्रौंच पक्षी के वध को देखकर इतना अधिक दुखित और द्रवीभूत हो गए थे कि उन्होंने वधिक को शाप दे डाला था–

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्[10]।।

आज पाश्चात्य जीवन शैली को अपनाने के कारण भारत के साथ विश्व के अनेक देशों में विविध विसंगतियाँ देखने को मिलती है। सामाजिक मूल्यों में अत्यधिक ह्यस देखने को मिलता है। सामाजिक सम्बन्ध विखण्डित हो गए हैं। माता–पिता, पति–पत्नी, भाई–बहन, तथा गुरु–शिष्य के सम्बन्ध महत्वहीन हो गए हैं, लेकिन प्राचीन भारतीय जीवन पद्धति में यह सम्बन्ध हमेशा सर्वोपरि रहे हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है– 'मातृ देवो भव', पितृ देवो भव, गुरुर्देवो भव, अतिथि देवो भव'। वस्तुतः इन सम्बन्धों से ही समाज और समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है। समाज ही राष्ट्र का प्रतिविम्ब होता

है। यदि समाज नैतिक नियमों से आबद्ध होगा तो राष्ट्र की आदर्श स्थिति होगी। हमारी संस्कृति सर्वधर्म समभाव की बात कहती है। इसका उल्लंघन करने के कारण समाज, प्रदेश और देश में संघर्ष की स्थिति देखने को मिलती है। हिंदू–मुस्लिम अथवा अन्य धर्मों में परस्पर संघर्ष इसी दुष्परिणाम है।

प्राचीन भारतीय जीवन शैली में स्त्री को सदैव सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। राधेश्याम, सीताराम आदि नामों में राधा और सीता का प्रथम उल्लेख स्त्री समाज के प्रति आदर को दर्शाता है। नारी शक्ति रूपा है वह कोई भोग की वस्तु नहीं है। मनुस्मृति में कहा गया हैकृ 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः11। जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। पूजा का अर्थ यह नहीं है जैसे मन्दिरों में धूप, चन्दन और फूलों के द्वारा मूर्ति की पूजा की जाती है। पूजा का अर्थ है उनको सम्मान की दृष्टि से देखा जाना, उनको पुरुष के समतुल्य स्थान दिया जाना, उनका योग्यता के अनुसार जो प्राप्तव्य है वह प्रदान किया जाना। यही कारण है कि आज स्त्रियां पुरुषों के समकक्ष सभी उच्च पदों पर स्थापित हैं। कहा जाता है पुलिस और सेना जैसे विभाग स्त्रियों की प्रकृति के अनुकूल नहीं है परन्तु उनकी योग्यता और क्षमता के अनुकूल छोटे से लेकर बड़े पदों पर नियुक्त हैं। यही हमारी प्राचीन जीवन शैली की अथ च हमारी संस्कृति की चरितार्थता है।

आज समाज में दुराचार और व्यभिचार की जो विद्रूपता दिखाई देती है वह पाश्चात्य संस्कृति की देन हैं। युवा वर्ग दूरदर्शन तथा सिनेमा के माध्यम से जो देखता है उससे उत्साहित होकर दुराचरण का शिकार हो जाता है और फिर पतित तथा कलंकित जीवन व्यतीत करता है। हमारी संस्कृति तो 'मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्[12] का उपदेश देती है। दूसरी युवती अथवा स्त्री माता के समान है और दूसरे का धन मिट्टी के समान है। हमारे यहाँ जिन चार पुरुषार्थो– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपार्जन की बात कही गयी है उनमें धर्म सम्मत काम का उपार्जन ही जीवन को श्रेष्ठ और उन्नत बनाता है। श्रीकृ ष्ण गीता में स्वयं कहते हैं– 'धर्माविरुद्धो कामोऽस्मि भरतर्षभ'[13] अर्थात धर्म के अनुकूल ही मैं 'काम' हूँ। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यदि हम अपनी प्राचीन जीवन शैली का अनुसरण करें तो दुराचार, बलात्कार और व्यभिचार की जो घटनाओं की बाढ़ आई हुई है वे स्वतः समाप्त हो जाएंगी और एक आदर्श समाज की स्थापना होगी।

वर्तमान में करोना वायरस से उत्पन्न विभीषिका पर यदि हम पुनः विचार करें, जो चीन देश से उत्पन्न हुई है, इसके मूल में उसका दम्भ, उसकी ईर्ष्या और उसकी विस्तारवादी नीति प्रमुख है। सम्पूर्ण विश्व में येन–केन प्रकारेण कैसे भी सर्वोच्च ऊंचाइयों पर पहुंचा जाए– यह चीन का उद्देश्य है। चाहे कोई व्यक्ति हो, समाज हो अथवा राष्ट्र हो यह दोष उसके पतन के कारण बनते हैं। हमारी प्राचीन जीवन पद्धति तो पदे पदे परोपकार की शिक्षा देती है, यहाँ दम्भ और ईर्ष्या जैसे दोष सर्वथा त्याज्य हैं, दूसरे को पीड़ा पहुंचाना पाप है–

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

चीन के इस कृत्य से भारत ही नहीं अपितु समस्त संसार पीड़ा के सागर में डूबा हुआ है। जैसा सुना जाता है कि चीन की बुहान प्रयोगशाला में इस करोना वायरस को निर्मित किया जा रहा था, जिससे इसका प्रयोग अस्त्र के रूप में किया जा सके।

कोविड–19 जनित महामारी ने भारत को ही क्या सम्पूर्ण विश्व को उद्वेलित कर दिया है। इस महामारी का निदान भी हमारी प्राचीन जीवन शैली में दिया हुआ है। प्राचीन ग्रन्थों में इस संक्रमण को रोकने के लिए और यदि संक्रमण हो ही जाय तो मानव शरीर में प्रतिरोधक क्षमता को उत्पन्न करने के लिए विविध औषधियों को बताया गया है। हमारी संस्कृति में सामान्य रूप से दूसरे से नमस्कार करने की बात कही गयी है, विशेष और महत्त्वपूर्ण सम्बन्धों में ही 'प्रणिपात' अर्थात चरण स्पर्श का विधान किया गया है। हमारी संस्कृति हॉथ मिलाने अथवा गले मिलने की स्वीकृति नहीं देती है। करोना वायरस का संक्रमण एक–दूसरे का स्पर्श करने से होता है। थूक के कड़ों से जो संक्रमण होता है, उसके लिए हमारे जैन धर्म में आज के हजारों वर्ष पहले मुख पर पट्टी बांधने का निर्देश दिया गया है। भारतीय जीवन शैली में हजारों साल पूर्व संक्रमण से बचने के लिए कुछ सूत्र बताए गये हैं, जिनका आज अनुपालन किया जा रहा है –

तथा न अन्यधृतं धार्यम्। (महाभारत)
स्नानाचारविहीनस्य सर्वाः स्युः निष्फलाः क्रियाः। (वाधूल स्मृति)

नाप्रक्षालित पाणिपादौ भुञ्जीत। (पद्म पुराण)
न धारयेत् परस्यैवं स्नानवस्त्रं कदाचन। (पद्म पुराण)

आज करोना वायरस से बचाव के लिए कि दूसरों के द्वारा धारण किए गए वस्त्र नहीं पहनना चाहिए, स्नान न करने वाले मनुष्य की सभी क्रियाएं निष्फल हो जाती है, बिना हाथ पैरों को धोये हुए भोजन नहीं करना चाहिए, दूसरों के द्वारा प्रयुक्त तौलिए आदि वस्त्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए – यही कुछ दिशा निर्देश आज दिए जा रहे हैं, जो हजारों वर्षो पूर्व से हमारी जीवन शैली के अंग रहे हैं।

आयुर्वेद को पंचम वेद कहा गया है। यह अत्यन्त समृद्ध विद्या है। हमारे प्राचीन ऋषियों और मनीषियों ने विविध प्रयोगों को करके अनेक औषधियों और जड़ी–बूटियों की खोज की जो मानव शरीर की व्याधियों से रक्षा कर सकें। उदाहरण के लिए हल्दी, नीम, आंवला, हरड़, बहेड़ा, जीरा, मेंथी, काली मिर्च तथा अश्वगंधा आदि अनेक चीजों के गुणों के आधार पर उनके सेवन की विधि बताई। इनमें से बहुत सी चीजें आज के दैनिक खान–पान में सम्मिलित हो चुकी हैं।

हमारी प्राचीन जीवन शैली का 'योग' बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। जिस प्रकार अन्य दर्शनों में जीवन जगत् की व्याख्या करते हुए मोक्ष प्राप्ति की विधि का व्याख्यान किया गया है इसी प्रकार दर्शन के रूप मैं प्रतिष्ठित 'योग' के द्वारा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। महर्षि पतंजलि ने योग–सूत्रों की रचना की है। इन सूत्रों में स्वस्थ जीवन का सार समाहित है। आज योग सम्पूर्ण विश्व में जीवन दायिनी विद्या के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है, इसका श्रेय भारत को ही जाता है। वस्तुतः योग का तात्पर्य है चित्रवृत्तियों का निरोध है–'योगश्चित्त–वृत्तिनिरोधः'[14]। आज जो प्राणायाम की बात कही जाती है वह योग से अलग नहीं है। योग के जो आठ अंग बताये गये हैं, उनमें से प्राणायाम एक हैंकृ यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। वस्तुतः योगिक क्रियाओं का सम्पादन मानसिक तनाव को समाप्त करके एकाग्र और शान्त बनाता है। शरीर के जीवनधायक (Vital) अंगों को ऊर्जा प्रदान करता है, पुष्ट बनाता है, इससे प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है। यही कारण है कि करोना के रोगाणुओं का संक्रमण प्रभावकारी नहीं हो पाता है तथा अन्य भी रोग शरीर में प्रभावी नहीं हो पाते हैं।

भारत को 'विश्व गुरु' कहा जाता था। इसकी यशोपताका सम्पूर्ण विश्व में फहराती थी। इसके मूल में हमारा आध्यात्मिक चिंतन, हमारे सांस्कृतिक मूल्य और विशाल वाङ्.मय रहा है। वर्तमान में भारतीय जन–जीवन में सांस्कृतिक मूल्यों में गिरावट देखने को मिलती है, जिसके कारण समाज में, राष्ट्र में विविध विकृतियां पनप रही हैं। आज आवश्यकता है कि हम सब जागें, उठें और काल–क्रम को ध्यान में रखते हुए सांस्कृतिक मूल्यों की पुनः स्थापना करें, जिससे स्वस्थ, समृद्ध और आत्म–निर्भर भारत का सपना साकार हो सके।

संदर्भ

1. *मुण्डकोपनिषद् 3/1/6*
2. *किरातार्जुनीयम् 1/9*
3. *वृहदारण्यकोपनिषद् 1/4/14*
4. *हितोपदेश 1/71*
5. *ईशावास्योपनिषद् 1*
6. *कठोपनिषद् 1/27*
7. *ईशावास्योपनिषद् 2*
8. *श्रीमद्भगवद्गीता 2/47*
9. *श्रामचरितमानस, अयोध्याकांड 218/4*
10. *बाल्मीकीयरामायण, गीताप्रेस 2/15*
11. *मनुस्मृति 3/56*
12. *नीतिसार*
13. *गीता 7/11*
14. *पतञ्जलि योग सूत्र 1/1*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 74-82

भारतीय राष्ट्रवाद एवं स्वामी विवेकानन्द

डॉ० दिवाकर त्रिपाठी *

राजबीर **

19वीं शताब्दी के आरंभ में राष्ट्रवाद की संकल्पना विश्व के तमाम देशों में बहुमूल्य धातुवाद की तरह अद्वितीय रूप में देखी जा सकती है। हिटलर मुसोलिनी ने राष्ट्रवाद के नाम पर ही जर्मनी–इटली का एकीकरण किया। भारत भी इस होड़ में पीछे नहीं रहा और राष्ट्रीय जागरण की दीप्ति जलाई तत्कालीन समय में यहाँ विशाल जन समुदाय भाषा, धर्म, जाति तथा राजनीति के आधार पर विभक्त था इसमें कोई संदेह नहीं कि अंग्रेजों ने भारत में अधिपत्य कायम करने के लिए इन्हीं निर्णायक तत्वों का सहारा लिया उन्हें इस बात का पूरा विश्वास था कि वे भारत पर शासन करने में तभी तक सफल रह सकते हैं जब तक ये आपसी मतभेद कायम है। इसी संदर्भ में साम्राज्यवादी इतिहासकार तथा शासक कभी यह नहीं मानते थे कि राष्ट्रवाद जागरण भारत के लोगों के मन–मस्तिष्क में धनीभूत विचारों का स्वतः परिणाम था। इस सम्बन्ध में परम्परा गत इतिहास लेखकों ने भारतीय राष्ट्रवाद के उत्थान को अंग्रेजी प्रशासन द्वारा बनाई गयी संस्थाओं, अवसरों तथा संसाधनों द्वारा उत्पादित प्रेरणा के फलस्वरूप भारतीय अनुक्रिया का परिणाम बताया।

1833 में श्री जे0आर0 शीले ने स्पष्ट शब्दों में भारत को केवल एक भौगोलिक संज्ञा दी जिसमें राष्ट्रीय एकता की कोई भावना नहीं थी। जैसे कि यूरोप या अफ्रीका यह किसी देश के क्षेत्रफल अथवा भाषा को संबोधित नहीं करता वरन् यह कई राष्ट्रों या भाषाओं की ओर संकेत करता है।

1884 में जन स्ट्रैची जो एक भूतपूर्व भारतीय जनपद के सेवक थे तथा भारतीय अकाल संहिता को लिपिबद्ध करने में महती भूमिका निभाई कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के छात्रों को संबोधित किया कि भारत के विषय में यह समझ लेना आवश्यक है कि न यह कोई देश है और न कभी भी जहाँ यूरोपीय

* सहायक आचार्य, इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, डॉ० राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ०प्र०)

** शोधछात्र, इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, डॉ० राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ०प्र०)

धारणाओं के अनुकूल भौतिक, राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक एकता है ही नहीं। वीसवीं शताबदी के प्रथम दशक में भारत का राष्ट्रवाद जब शाशवत होता जा रहा था तो अंग्रेज विद्वानों ने एक नयी विचारधारा अपनायी मांन्टर्फोड रिपोर्ट के लेखकों ने भारत में अंग्रेजी राज को ही राष्ट्रीय भावना के उदय के लिए श्रेय दिया उसमें लिखा था राजनैतिक भावना से प्रेरित भारतीय बौद्धिक रूप से हमारी संतान है। उन्होंने वे ही विचार अपनाये हैं जो हमने उनके सामने रखे हें और इसका श्रेय हमें ही मिलना चाहिए। भारत में आधुनिक बौद्धिक तथा नैतिक हलचल से हमारी भत्स्रना नहीं होती अपितु यह हमारे कार्य के लिए एक श्रद्धांजलि है। आर0 कूप लैण्ड ने अधिक स्पष्ट शब्दों में लिखा भारतीय राष्ट्रवाद तो अंग्रेजी राज की ही संतान है।

परन्तु यह प्रश्न अवर्णीय है कि क्या भारतीय राष्ट्रवाद अंग्रेजी देन है। इस प्रश्न को इतिहास विशेषज्ञों ने कई बार उठाया है कि यदि अंग्रेजी शासन न होता तो क्या राष्ट्रवाद और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पल्लवित हो पाता पर सच्चाई यह कि उक्त उल्लेखित सभी धारणाएं साम्राज्यवादी समर्थकों की एक चाल थी जिसका मुख्य उद्देश्य कि अंग्रेजी उपनिवेशवाद को एक उदारवादी कल्पनाकारी शासन के रूप में देखा जाय इसी के समर्थन वे ह्वाइट मैन बर्डन थ्योरी को गढ़ा था वे इससे शासन को उचित समर्थन देने में कभी पीछे नहीं रहते वह अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत को सभ्यता और संस्कृति का पाठ पढ़ाने जैसी विचारधारा का उद्बोधन करते वे इसमें सफल भी हुई प्रारंभिक भारतीय नेता समर्थन में पंक्तिबद्ध थे।

भारतीय राष्ट्रवाद के प्रारम्भिक दिनों में आर्य समाज की भूमिका अत्यन्त प्रगतिशील तथा महत्वपूर्ण थी परन्तु जब राष्ट्रीय जागरण का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हुआ और राष्ट्रवाद में धर्म निरपेक्षता को प्राथमिकता दी गयी, उस समय भारतीय जनता का राष्ट्रीय जागरण स्वामी रामकृष्ण द्वारा अनुप्रेरित आन्दोलन के रूप में परिलक्षित हुआ। इस आन्दोलन के सबसे बड़े प्रचारक महान विद्वान रामकृष्ण के शिष्य स्वामी विवेकानन्द थे। उनका उद्देश्य पश्चिम के भौतिकवादी प्रभाव से भारत को बचाना तथा पुनर्जीवित हिन्दू धर्म के लिए वि की सांस्कृतिक विजय को अपना साध्य बनाना था।[1] स्वामी विवेकानन्द एक सच्चे राष्ट्रवादी सन्त ये। उनका मत था कि प्रजा, धर्म, भाषा, सरकार आदि सब मिलकर एक राष्ट्र का निर्माण करते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति का हित उसके

राष्ट्र के हित में ही निहित होता है। राष्ट्र का कल्याण ही व्यक्ति का कल्याण है। स्वामी जी ने व्यक्ति तथा राष्ट्र की महानता के लिए तीन बातें आया बतायीं–

1. जन–कल्याण की शक्ति में विश्वास।
2. ईर्ष्या एवं सन्देह का त्याग।
3. अच्छाई और जन–कल्याणकारी कार्य करने वाले व्यक्तियों की सहायता करना।

राष्ट्र का निर्माण व्यक्तियों से होता है। इसलिए स्वामी विवेकानन्द का अनुरोध था कि सब व्यक्तियों को अपने में आत्मविश्वास पुरुषार्थ तथा सम्मान की भावना को विकसित गुणों का विकास करते समय पड़ोसियों के प्रति प्रेम व सहानुभूति की भावना बनी रहे। निःस्वार्थ सेवा भावना के बिना राष्ट्रीय एकता और भ्रातृत्व की बात करना सर्वथा राष्ट्र की आत्मा व्यर्थ है। आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति अपने के साथ अपने अहं का एकीकरण कर दे। विवेकानन्द का राष्ट्रवाद का विचार उन पाश्चात्य समाजशास्त्रियों की तुलना में अधिक रचनात्मक था जो केवल राष्ट्रवाद के सामाजिक पक्ष को अधिक बल देते हैं। स्वामी जी ने व्यक्तिवादी तथा सामाजिक दृष्टिकोण का सामंजस्य करने का प्रयास किया किन्तु इसके साथ–साथ उन्होंने व्यक्तियों के चरित्र निर्माण तथा नैतिक विकास पर भी पूरा बल दिया था। उनका दृढ़ विवास था कि जब तक व्यक्ति स्वस्थ्य, नैतिक, आत्म–निर्भर नहीं होंगे, तब तक राष्ट्रीय समृद्धि और महानता की बात करना व्यर्थ है। अतीत में भारत के राष्ट्रीय जीवन का निर्माण, समाज सेवा तथा व्यक्ति की मुक्ति के आदर्शों की नींव पर किया गया था। इन श्रेष्ठ आदर्शों को पुनः प्रतिष्ठित करना और शक्तिशाली बनाना स्वामीजी का लक्ष्य था। उन्होंने कहा था– ''मनुष्य बनो, परस्पर घृणित भावों को छोड़ों और सद–उद्देश्य सदुपाय, सत्साहस एवं सवीर्य का अवलम्बन करो। तुमने मनुष्य योनि में जन्म लिया है तो अपनी कीर्ति यहीं पर छोड़ जाओ।''[2] इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द नैतिक आदर्शों को राष्ट्रीय एकता एवं उन्नति का आधार मानते थे। उनके अनुसार भारतीयों की शारीरिक मानसिक दुर्बलता, विचारों की संकीर्णता, आलस्य, बेईमानी, श्रद्धा का लोप, मौलिकता का अभाव, क्षेत्रीत्व का अभाव, धार्मिक उदासीनता, भारत के अतीत के प्रति उदासीनता, जन साधारण के प्रति उदासीनता आदि ऐसे प्रमुख तत्व है जिनके कारण भारत

राष्ट्र का पतन हुआ था।[3] उपरोक्त तत्वों के अतिरिक्त स्वामी जी भारत के पतन के लिए भारतवासियों की पारस्परिक फूट, बैमनस्य, ईर्ष्या को उत्तरदायी मानते ये। इसके फलस्वरूप राजपूत काल से ही भारतीयों को पराजय का सामना करना पड़ा। राजपूत काल में भारतीयों में विकेन्द्रीकरण की भावना प्रबल थी। देश छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था और जनता की देशभक्ति अपने राज्य की संकुचित सीमा तक ही सीमित थी। उनमें एकता का सर्वथा अभाव या। इन राज्यों के राजपूत शासक आपसी ईर्ष्या व द्वेष के कारण आपस में लड़कर अपनी शक्ति का ह्रास करते थे। परिणाम स्वरूप उन्हें विदेशी आक्रमणकारियों के सम्मुखनत मस्तक होना पड़ा। स्वामी विवेकानन्द ने ईर्ष्या एवं वैमनस्य को भारतीय समाज का कलंक बताते हुए देशवासियों को इस भावना का त्याग करने तथा राष्ट्रीय स्तर पर संगठित होकर एक सशक्त भारत राष्ट्र बताने का आव्हाहन किया था। स्वयं उन्हीं के शब्दों में– ''अगर आपके देश का कोई व्यक्ति बढ़ना चाहता है तो आप सब मिलकर उसे दबाते हैं। लेकिन अगर एक विदेशी आकर लाठी भी मारे तो उसे अनायास ही सहने के लिए तैयार रहते हैं। आप लोग इसी के अभ्यस्त हो गये हैं। इसी दासता का तिलक लगाकर आप लोग बड़े नेता भी बनना चाहते हैं।''[4] इस प्रकार स्वामी जी के अनुसार तत्कालीन भारत के पतन के कारणों से स्पष्ट है कि भारतीय सामाजिक जीवन में एक ऐसा घुन लग गया था जो उसे अन्दर ही अन्दर न केवल दुर्बल बना रहा था, अपितु उसे पतन की ओर अग्रसर कर रहा था। ऐसे दयनीय एवं पतित भारतीय समाज को अंग्रेज शासकों एवं ईसाई मिशनरियों ने अपने गन्दे प्रचारों से अधिक विषाक्त बना दिया उन्होंने विदेशों में भारत की को गलत ढंग से प्रस्तुत किया। इसका परिणाम यह हुआ गिरी हुई स्थिति कि प्राचीन काल में भारत का विश्व में जो गौरवपूर्ण स्थान था तथा यह देश सोने की चिड़िया के रूप में विख्यात था, उसके सम्बन्ध में विदेशी लोग अब यह सोचने लगे कि भारत दरिद्रों, ज्ञानियों और अन्धविश्वास का देश है।

स्वामी विवेकानन्द के अमेरिका जाने से पूर्व भारत का जन–मानस इन मिशनरी हथकण्डों से इतना अधिक प्रभावित था कि कोई व्यक्ति यह स्वीकार करने को तैयार नहीं था कि भारत में भी कोई अच्छाई है। ऐसे विषाक्त वातावरण में स्वामी विवेकानन्द ने देशवासियों में आत्मविश्वास, स्वाभिमान, देश प्रेम तथा स्वावलम्बन की भावना उत्पन्न करने एवं विदेशों मैं भारत की धूमिल तस्वीर को पुनः उज्ज्वल करने का दृढ़ संकल्प लिया। इस उद्देश्य की पूर्ति के

लिए उन्होंने 11 सितम्बर, 1893 को शिकागों के विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लिया और अपने अकाट्य तर्कों के द्वारा पाश्चात्य राष्ट्रों को भारतीय धर्म एवं संस्कृति की महानता से अवगत कराया। इस सम्मेलन में दिए गये स्वामी जी के ओजस्वी भाषण ने हमारी मातृभूमि के लोगों में नवीन आत्मविश्वास जागृत हुआ। जिस प्रकार जर्मनी के मार्टिन लहर ने पोप के रूढ़िवादी धर्माडम्बरों का खण्डन करके यूरोप में अपने क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचारों का प्रचार किया, उसी प्रकार विवेकानन्द के ओजस्वी विचारों ने तत्कालीन भारतीय सभ्यता के स्तब्ध वातावरण में नवीन चेतना जागृत की।

स्वामी विवेकानन्द सम्भवतः प्रथम भारतीय के जिन्होंने प्रचार माध्यम से विश्व को भारत के गौरव से अवगत कराया तथा भारत की जनता में अपने राष्ट्र की महानता के प्रति आस्था उत्पन्न की। उन्होंने देशवासियों से आह्वान किया कि वे अकर्मण्यता, भाग्यवादिता एवं उदासीनता का मार्ग छोड़कर आशवावादी, स्वावलम्बी एवं आत्मविश्वासी बने।

एक लम्बे समय तक विदेशी शासन के अधीन रहते हुए भारतीयों में दासता की प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो गयी थी कि वे स्वयं अपने आत्म–विश्वास को खो चुके थे। उनकी क्रांतिकारी स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचारों का प्रचार किया, उसी प्रकार विवेकानन्द के ओजस्वी विचारों ने तत्कालीन भारतीय सभ्यता के स्तब्ध वातावरण में नवीन चेतना जाग्रत की।[5]

स्वामी विवेकानन्द सम्भवतः प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने प्रचार माध्यम से विश्व को भारत के गौरव से अवगत कराया तथा भारत की जनता में अपने राष्ट्र की महानता के प्रति आस्था उत्पन्न की। उन्होंने देशवासियों से आवहान किया कि वे अकर्ण्मयता, भाग्यवादिता एवं उदासीनता का मार्ग छोड़कर आशावादी, स्वावलम्बी एवं आत्मविश्वासी बने।

उठो, साहसी बनो। सब उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर ले लो। याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम्हें जिस शक्ति और सहायता की आवश्यकता है, वह सब तुम्हारे भीतर विद्यमान है। अतः ज्ञान रूपी शक्ति के सहारे तुम बल प्राप्त करो और अपने हाथों से अपने भविष्य का निर्माण करो।''[6] एक लम्बे समय तक विदेशी शासन के अधीन रहते हुए भारतीयों में दासता सुलभ प्रवृत्ति को दूर करने और उनमें आत्म–विश्वास के भाव जागृत

करने के लिए स्वामी जी ने उन्हें अपने ओजपूर्ण उद्बोधनों के द्वारा आत्मनिर्भर और कर्त्तव्य परायण बनने की प्रेरणा दी। उन्होंने राष्ट्र के उत्थान हेतु भारतीयों को अपना सर्वस्व बलिदान करने को प्रोत्साहित किया। इस राष्ट्र रूपी जहाज में छेद है। हम सब उसकी सन्तान है। आओ, चलें, उन छेदों को बन्द कर दें। उसके लिए हँसते–हँसते अपने हृदय का रक्त बहायें। यदि हम ऐसा न कर सके तो मर जाना उचित है जब आपके पास ऐसे मनुष्य होंगे जो अपना सब कुछ देश के लिए बलिदान करने को तत्पर होंगे, तो भारत सच्चे अर्थों में महान राष्ट्र बनेगा।''[7] स्वामी जी विवेकानन्द के राष्ट्रवाद का आधार भारत की बहुसंख्यक पददलित जनता की भावनाओं को समझने तथा उसका उत्थान करने मैं निहित था उनका दृढ़ मत था कि किसी राष्ट्र की नींव बहु–संख्यक जनता पर ही निर्भर होती है, अल्पसंख्यक उच्च वर्ग के पूँजीपतियों पर नहीं। अतः जनता का उत्थान किए बिना राजनीतिक मुक्तिकरण सम्भव नहीं हो सकता। जब तक जनता दुख और विपदाओं में पड़ी कराह रही हो और घोर निराशा में डूबी हो, ऐसे समय में मुक्ति की बात करना निरर्थक है। उनका विचार था कि भारत राष्ट्र का गौरव महलों में सुरक्षित नहीं रह सकता। उसे गौरवान्वित करने के लिए गरीबों की झोंपड़ियों में जागृति उत्पन्न करनी होगी। अपने इन विचारों को स्वामी जी ने शिकागो से लिखे एक पत्र में भी व्यक्त कर दिया था।''[8] भारत के गौरवपूर्ण अतीत में स्वामी जी का दृढ़ विश्वास था वह अपने कार्यों, उपदेशों और शिक्षाओं के द्वारा भारतीय जनता में देश के प्राचीन गौरव के प्रति प्रेम तथा भविष्य की समस्याओं को हल करने के लिए उनमें आत्म विश्वास उत्पन्न करना चाहते थे। उनके हृदय में राष्ट्र प्रेम की भाका कूट–कूट कर भरी हुई थी। पाश्चात्य देशों के शिष्यों को शिक्षा देते समय उन्होंने उनके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में भारत और भारतीयता को प्रतीक बनाया। उनके एक पाश्चात्य शिष्य ने जब उनसे प्रश्न किया कि– ''स्वामीजी, में आपकी सबसे अच्छी सेवा कैसे कर सकता हूँ ? तो स्वामीजी ने तुरन्त उत्तर दिया। भारत को प्रेम करो।" इस प्रकार उन्होंने अपने उपदेशों व कार्यों के द्वारा न केवल भारतीयों में बल्कि विदेशियों के हृदयों में भी भारत के प्रति प्रेम व श्रद्धा के भाव जागृत किये थे।

स्वामी विवेकानन्द मानव सेवा को सबसे बड़ी पूजा और भारत–देश को सबसे बड़ा ईश्वर मानते थे। वह देश की साधारण जनता के हित मैं ही अपना हित मानते थे। वह कहते थे– ''प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। एक

स्वर से बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी सब मेरे भाई हैं। भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है। भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है। हमारा देश ही हमारा जागृत देवता है। सबसे पहले पूज्य हैं हमारे देशवासी। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और झगड़ा करने के बजाय हमें उनकी पूजा करनी चाहिये।''[9] स्वामीजी आध्यात्मिक राष्ट्रवाद को भारत के नव–निर्माण एवं मुक्ति का एकमात्र साधन मानते थे। उनका मत था कि भारत में दृढ़ एवं स्थायी राष्ट्रवाद का निर्माण वेदान्त दर्शन पर आधारित आध्यात्मवाद पर ही निर्भर है। परन्तु वह धार्मिक संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता के तीव्र विरोधी थे। उनके वेदान्त दर्शन में विभिन्न धर्मों के अनुयाइयों के लिए पर्याप्त स्थान था। यही कारण है कि मानवता पर आधारित स्वामीजी के धर्म का न केवल भारत ने बल्कि भौतिकवादी पाश्चात्य राष्ट्रो ने भी समर्थन किया। उनका दृढ़ किवास था कि लूट का बँटवारा करने में संलग्न यान्त्रिक राष्ट्रवाद स्थायी नहीं हो सकता। राष्ट्र के स्थायी विकास के लिए लोगों में उदारता, ब्रह्मचर्य, प्रेम तयाग एवं आत्म–विश्वास की आवश्यकता है। वह अपने धार्मिक विश्वास व सामाजिक दृष्टिकोण को किसी पर थोपना नहीं चाहते थे। अतः स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रवाद का आधार अरविन्द तथा विपिन चन्द्र पाल की राष्ट्रवादी धारणा के समतुल्य था।

स्वामी विवेकानन्द ने आध्यात्मिकता पर आधारित भारतीय राष्ट्र को एक ऐसा रूप प्रदान करने का प्रयास किया जो व्यक्तियों की समानता पर आधारित हो। भारत में उभरती हुई राष्ट्रीयता के युग में स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाओं ने राष्ट्रीय नेताओं के मध्य आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने भारतीयों को चेतावनी दी कि पाश्चात्य देशों की भौतिकवादी संस्कृति भारतीय राष्ट्र के उत्थान में कभी सहायक सिद्ध नहीं हो सकती। भारतीय संस्कृति की नींव आध्यात्मिक है, अतः पाश्चात्य भौतिकवादी राष्ट्रों को उसका विशेष सन्देश है।[10] उन्होंने भारतीयों से आह्वान किया। ''हमें बाहर जाना होगा। अपनी आध्यात्मिक तथा दार्शनिक शक्ति के बल पर हमें जगत को जीतना होगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है। राष्ट्रीय जीवन को सतेज और प्रबुद्ध बनाने के लिए यही एक मार्ग है कि भारतीय विचार विश्व पर विजय प्राप्त करें।''[11] स्वामीजी द्वारा घोषित विश्व विजय का तात्पर्य जन–कल्याण एवं विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करना था। उन्होंने सभी देशों को चुनौती देते हुए सिद्ध किया कि भारत में समस्त संसार को हिला देने की क्षमता रखने

वाले आध्यात्मिक महापुरुषों का कभी अभाव नहीं रहा। भारत एवं सम्पूर्ण विश्व की जनता के कल्याण के लिए स्वामी जी आध्यात्मवाद को ही उपयुक्त साधन मानते थे और इसके लिए उन्होंने देशवासियों को सचेत किया कि विश्व में उसके आध्यात्मिक दर्शन के प्रचार का उपयुक्त समय आ चुका है।

वस्तुतः विवेकानन्द एक ऐसे भारत का निर्माण करना चाहते थे जिसमें भावनाओं की एकता, सामाजिक जागृति और पाश्चात्य देशों की व्यावहारिक सक्रियता के साथ भारतीय परम्पराओं और आध्यात्मिक जागृति की महानता का मिश्रण हो। उनका राष्ट्रवाद का सन्देश आध्यात्मिकता एवं मानव मूल्य पर आधारित था। उनका विचार था कि यदि भारत अतीत की अध्यात्मिकता का त्याग करता है तो उसका विकास रुक जायेगा। भारतीयों में राष्ट्र प्रेम, देशभक्ति, संगठन शक्ति, आत्मनिर्भरता आदि आदर्शो की प्राप्ति तभी सम्भव है जब वे अपने इतिहास की गरिमा मैं किवास करें और वेदान्त के के आदशों को आपने जीवन में व्यावहारिक रूप देने का प्रयास करें।''[13]

संदर्भ

1. *एस०आर० देसाई– पूर्व उद्धृत, पृ0 सं0 246*
2. *विवेकानन्द साहित्य, द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण, पूर्व उदधृत, पृ0 सं0 67*
3. *उद्धेताश्रम, मायावती अल्मोड़ा, सितम्बर, 1964, पृ0 सं0 315–17*
4. *स्वामी विवेकानन्द– 'विशान्ति का सन्देश', नई दिल्ली, पृ0 सं0 46*
5. *धार्मिक पार्लियामेंट में सबसे महान व्यक्ति निस्संदेह विवेकानन्द हैं। उनका भाषण सुन लेने पर अनायास यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि ऐसे ज्ञानी देश को सुधारने के लिए धर्म प्रचारक भेजने की बात कितनी मूर्खतापूर्ण है।'' न्यूयार्क हैराल्ड का सम्पादकीय लेख– दिनांक 27 दिसम्बर, 1893*
6. *विवेकानन्द साहित्य, खण्ड–2, प्रथम संस्करण, पूर्व उद्धृत, पृ0 सं0 120*
7. *विवेकानन्द साहित्य, खण्ड–2, प्रथम संस्करण, पूर्व उद्धृत, पृ0 सं0 249–250*
8. *यथार्थ भारत राष्ट्र जो झोंपड़ियों में निवास करता है, अपना पौरुष खो बैठा है, अपना व्यक्तित्व भूल गया है। हिन्दू, मुसलमान, या ईसाइयों के पैरों तले रौंदे हुए व्यक्ति यह समझ के हैं कि वे धनवानों के पैरों से कुचलने के लिए ही पैदा हुए हैं। अतः सब उन्हें उनका खोया हुआ व्यक्तित्व पुनः प्रदान करना होगा।'' स्वामी जी का शिकागो से हरिदास विहारीदास देसाई को 20 जून, 1894 को लिखित पत्र।*
9. *विकानन्द साहित्य, पंचम खण्ड, प्रथम संस्करण, पूर्व उद्धृत, पृ0 सं0 193–94*

10. *विकानन्द साहित्य, पंचम खण्ड, प्रथम संस्करण, पूर्व उद्धृत, पृ0 सं0 170*
11. *विवेकानन्द साहित्य, पंचम खण्ड, प्रथम संस्करण, पूर्व उद्धृत, पृ0 सं0 171*
12. *उपरोक्त, पृ0 सं0 301*
13. *स्वामी जी का शिकागो से हरिदास विहारीदास देसाई को लिखा गया पत्र– दिनांक 15 नवम्बर, 1894*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ.83-92

कोरोना काल में कबीर की साधना पद्धति का महत्व

डॉ० अजय सिंह चौहान *

निर्गुण निराकार ब्रह्म के उपासक संत शिरोमणि कबीर दास जी के द्वारा मानव को स्वस्थ एवं निर्मल काया प्राप्ति के लिए सुझाए गए मार्ग की प्रासंगिकता आज की दुनिया के कोविड पैंडेमिक काल में बहुत अधिक बढ़ गई है। यद्यपि योग–साधना का महत्व कबीर के पूर्व सिद्धों और नाथों की वाणियों में प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो जाता है, लेकिन कबीर ने इसे सहज रूप से जिस अंदाज में अपनी कविताओ में संजोया है, वह व्यावहारिक धरातल पर लोगों को ज्यादा मुफीद और ग्राह्य सिद्ध हुआ है। आज बाबा रामदेव की साधना–पद्धति जिस सहजता और सरलता के साथ जन–जन में प्रचलित हुई है उसके पीछे सिद्धों–नाथों और कबीर का ही योग दर्शन झलकता है। 'यत पिंडे तद ब्रह्मांडे' अर्थात जोई जोई पिंडे सोई सोई ब्रह्मांडे, जो इस शरीर में है वही इस ब्रह्मांड में है। यह उद्‌घोष कबीर के बहुत पहले गोरखनाथ स्वयं कर चुके थे, लेकिन व्यावहारिक रूप से धरातल पर उतर नहीं सका। ऐसा माना जाता है कि पांच तत्वों से मिलकर संसार बना है यह पांच तत्व महाभारत में इस प्रकार बताए गए हैं– 'भूमिरापस्तथा वायुअग्निराकाशमेव च'[1] यही पांच तत्व पंचमहाभूत तनमात्रों के कारक बने हैं। सभी मनुष्य, पशु, पक्षी, पेड़–पौधे, यानी जड़ एवं चेतन का संरचनात्मक आधार इन्हीं पंचमहाभूतों की देन है। इन पांच तनमात्रों में से आकाश अर्थात क्षितिज कान शब्द से संबंधित ज्ञानेन्द्रिय है, कान तत्व की तनमात्रा ध्वनि या शब्द है। वायु त्वचा से संबंधित ज्ञानेन्द्रिय है और इसकी तनमात्रा स्पर्श है। अग्नि तत्व की तनमात्रा रूप मानी गई है। जल का संबंध तरलता से है और इसकी तनमात्रा स्वाद या रस के रूप में जानी गई है। पृथ्वी ठोस, स्थूल, कठोर और सघन है। नाक पृथ्वी तत्व से संबंधित ज्ञानेन्द्रिय है और पृथ्वी तत्व की तनमात्रा गंध है। इन पंचमहाभूतों की रचना ब्रह्मा जी ने सृष्टि के आदि में रचा था। यही पंचमहाभूत ही सारे संसार के नियामक हैं।

'त आते धावता पंच ब्रह्मा यान स्रजत पूरा।
आव्रता मैरिमे लोका महाभूताभी साग्यितः।।[2]

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, फीरोज गांधी, कालेज, रायबरेली

आज कोरोना जैसी महामारी ने पूरे विश्व को अपनी चपेट में लेकर कोहराम मचा कर रख दिया है, ऐसी स्थिति में मानव अपने शरीर को स्वास्थ्य एवं खुशहाल कैसे बनाए रखें, इसके लिए ही कबीर की योग–साधना का महत्व बढ़ जाता है। सबसे पहले हमें बाहर की दुनिया के सुख, सुविधा, वैभव, विलास आदि से अपने को दूर रखना होगा। हमें अपने अंदर के अंतःकरण में जाकर उस परमसत्य को या परम ब्रह्म को खोजना होगा। इंद्रिय को साधना होगा, संयमित करना होगा, स्वयं के वशीभूत करना होगा, त्याग का मार्ग अपनाना होगा। पंच चोरो काम, क्रोध, मद, लोभ और अहम को अपने तन और मन से दूर रखने का हर संभव प्रयास करना होगा। निदा फाजली ने इस संसार को सही दिशा दिखाते हुए सम्यक जीवन एवं खुशहाल जीवन जीने की कला के विषय में ठीक ही कहा है–

सीमित करके देखिए जीवन का विस्तार।
मुट्ठी भर आकाश है आंखों भर संसार।।[3]

यही प्रेरणा कबीर वर्षों पहले दे चुके हैं–

साईं इतना दीजिए, जामे कुटुंब समाए।
मैं भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाए।।[4]

जब व्यक्ति अयम निजः परोवा की भावना से ऊपर उठकर वसुधैव कुटुंबकम के भाव के साथ जीवन जीना शुरु कर देता है तो समझ लो कि उसने साधना का द्वार तलाश लिया है, और इसी साधना के बल पर वह अपने जीवन को स्वच्छ, स्वस्थ और सुखद बना सकता है। जब तक व्यक्ति तेरे मेरे के जंजाल में उलझा रहता है, तब तक उसे आत्मिक शांति एवं वास्तविक सुख की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। वस्तुतः वास्तविक सुख एवं शांति पाने के लिए बहुत कुछ त्याग करना पड़ता है।

आज के दौर में मनुष्य के जीवन में महर्षि पतंजलि के योग अर्थात चित्त की वृत्तियों के निरोध योगा 'चित्त वृत्ति निरोधा' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। पतंजलि ने संपूर्ण मानव जाति को पूर्ण कल्याण तथा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शुद्धि के लिए अष्टांग योग का एक मार्ग विस्तार से बताया है, यह आयामों वाला मार्ग है, जिसमें आठों आयामों का अभ्यास एक साथ किया जाता है। योग के यह आठ नियम इस प्रकार बताए

गए हैं–

'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधीश्तोवादंगिनी।।'[5]

जब व्यक्ति यम नियम का सुचिता पूर्ण जीवन जीता हुआ आगे बढ़ता है, तब ध्यान–धारणा में लीन होता हुआ समाधि की अवस्था में पहुंच जाता है। समाधि की अवस्था में पहुंचने के बाद व्यक्ति के मन में किसी भी प्रकार का राग–द्वेष नहीं रह जाता, वह बाहरी दुनिया से कट चुका होता है, बाहर के कोलाहल से निवृत्त होकर अंतरात्मा में तल्लीन हो जाता है। यह मानव सुख की वास्तविक दशा है।

कबीर की योग साधना पद्धति और उलटवासियों को एक ही संदर्भ में रखकर देखने से कबीर के साहित्य की तस्वीर ज्यादा स्पष्ट दिखाई देती है। दोनों को अलग–अलग समझने या व्याख्या करने से वस्तुस्थिति बहुत अधिक जटिल एवं दुरूह हो सकती है। षटचक्र भेदन की प्रक्रिया योग साधना से ही संभव है। कबीर दास जी स्पष्ट रूप से कहते हैं–

'अरध उरध की गंगा जमुना मूल कमल लव घाट।

सात चक्र की गागरी त्रिवेणी संगम बाट।।'[6]

यह लोक में गंगा, जमुना, सरस्वती के संगम स्थल को त्रिवेणी या संगम कहा जाता है, ऐसे ही योगी इडा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों के संगम का योग बनाता है। जब साधक तीनों नदियों के संगम में सफल हो जाता है, तब दशम द्वार खुलता है और साधक वहां पहुंचकर परम सुख की अनुभूति प्राप्त करता है। योगी और भोगी में यही अंतर है कि योगी सारा सुख अपने शरीर में मन को प्रवेश करके पा लेता है, उसका मन बाहर की दुनिया में बिल्कुल नही रमता, जबकि भोगी अपना सुख संसार की सांसारिकता में खोजता फिरता है। एक ज्ञानी है और दूसरा अज्ञानी। निराला भी लिखते हैं–

'पास ही रे हीरे की खान।

खोजता कहां उसे नादान।।'[7]

योग और साधना के मार्ग पर चलते हुए कबीर ने जो उलटवासियां लिखी है, उनको पढ़ने, सुनने या समझने में अनेक बार कठिनाई का सामना भी करना पड़ता है, क्योंकि यह सामान्य पदों या दोहों से इधर रहस्यवाद को

जानने का दुरूह मार्ग प्रशस्त करती है, जिन्हें हठयोग या नाथ संप्रदाय का ज्ञान है वह तो इन उलटवासियों का अर्थ व प्रयोजन किसी सीमा तक समझ लेते हैं, लेकिन सामान्य व्यक्ति उन में उलझ कर ही रह जाता है। साधक उलटवासियों के अर्थ कौतूहल को समझकर साधना से संबंधित रहस्य से गुजरता हुआ पूर्णता के फल को प्राप्त कर लेता है। कबीर की उलटवासियों में जो रहस्यवाद का पुट है, वह बहुत उलझन और माथापच्ची वाला है। यहां एक उलटवासी का आकर्षण एवं रहस्य देखा जा सकता है कि वह कितनी गूढ़ अर्थ एवं व्यंग्य से भरी हुई है–

'देखि देखि जिय अचरज होई, यह पद बुझा बिरला कोई।
धरती उलटी आकाश जाए, चींटी के मुख हस्ती समय।
बिना पवन सो पर्वत उड़े, जीव जंतु सब वृक्षा चढ़े।
सूखे सरवर उठे हिलोरा, बिनु जल चकवा करें हिलोरा।।
बैठा पंडित पढ़े कुरान, बिन देखे का करत बखान।
कहही कबीर यह पद को जान, सोई संत सदा परवान।।'[8]

पद का शब्दार्थ यह है की यह देखकर ह्रदय में आश्चर्य होता है। इस पद के रहस्य को कोई बिरला व्यक्ति ही जान सकता है। धरती उलट कर आकाश पहुंच गई। चींटी ने हाथी को खा लिया। हवा शांत है फिर भी पर्वत उड़े जा रहे हैं। सारे जीव, जंतु वृक्ष में चढ़े जा रहे हैं। सरोवर सूखा है फिर भी हिलोरे ले रहा है। सरोवर में पानी नहीं है फिर भी चकवा कलरव कर रहा है। अब कबीर पाठक के सम्मुख चुनौती रखते हुए कहते हैं कि जो इस पद का अर्थ समझ लेगा वही सच्चे मायने में या प्रामाणिक तौर पर विद्वान माना जाएगा।

इस पद गूढ़ अर्थ अर्थात वास्तविक अर्थ इस प्रकार है, कोई तत्व ज्ञानी साधक ही इस पद के रहस्य भावना को समझ सकता है, बाकी सामान्य जन तो यहां तक पहुंच भी नहीं सकते। जो साधक धरती के सुख, भोग, विलास से विमुक्त हो जाते हैं, उनकी लगन ऊर्ध्वगामिनी हो जाती है और सामान्य व्यक्ति जो सांसारिक जीवन जीता हुआ यहीं के सुख, वैभव, विलास में पड़ा रहता है वह आकाश रूपी परमब्रह्म को या अपनी ही उर्जा में चेतना को तिल तिल कर खाता रहता है। सांसारिकता निम्नगामिनी है। साधक यह बात भली–भांति समझता है, इसलिए वह सांसारिकता रूपी धरती को कुंडली के

माध्यम से षटचक्र भेदन करके आकाश यानी ब्रह्मरंध्र तक पहुंचा देता है। चीटी से भी सूक्ष्म आत्मा जब परमसत्य परमात्मा को जान लेती है, तो वह सांसारिकता रूपी विशालकाय हाथी को भी चुन–चुन कर खा जाती है, यानी सांसारिकता फिर उसके मार्ग में बाधा नहीं डाल पाती। साधक अपने शरीर में स्थित मेरुदंड रूपी सुमेरु पर्वत को योग–साधना के बल पर झकझोरता रहता है। यहां सांसारिक वायु की आवश्यकता नहीं है। कबीर दास एक जगह कहते हैं –

'संतो आई ज्ञान की आंधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहै न रोकी रे।।'[9]

साधक की इंद्रिय जीव, जंतु की तरह जो पहले अज्ञानता के वशीभूत होकर बाहरी दुनिया में सुख खोज रही थी, वह सभी इंद्रियां मेरुदंड रूपी पर्वत पर चढ़कर परमात्मा के निकट पहुंच रही हैं। मन का सरोवर अर्थात् जहां सांसारिक सरोवर की भांति जल नहीं होता है वहां ज्ञानी ब्रह्मरंध्र में साधक की जीवात्मा पहुंचकर त्रिकुटी में आसन जमा कर आनंद के हिलोरे लिया करती है। मानसरोवर में चकवे का वियोग नहीं है, वह सदैव आनंद में डूबा रहता है। आगे कबीर दास जी कहते हैं कि इस संसार की दुर्गति का यही कारण है कि जो अज्ञानी है वह ज्ञान का उपदेश दे रहा है। पंडित बिना ज्ञान के कुरान बाचता है। जो जीवात्मा इन रहस्यों को जान लेती है और तद्दानुरूप जीवन जीने लगती है, वही ज्ञानी विवेकशील और विद्वान है।

कोरोना जैसी वैश्विक महामारी से इंसान को स्वयं कैसे स्वस्थ एवं खुशहाल रखना है यह आज के मानव के लिए सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य है। मनुष्य जितना आत्मबल से मजबूत होगा, उतना ही वह अपने शरीर को स्वस्थ और सुखद परिवेश दे पाएगा। कबीर की योग–साधना की जो पद्धतियां हैं, उन्हें यदि आज समाज अमल में लाए तो वह निश्चित रूप से इम्यूनिटी बूस्टर का काम करेगा। कबीर ने सांसारिक जीवन जी रहे व्यक्ति को योग साधना के बल से विभिन्न सामाजिक, शारीरिक एवं मानसिक बीमारियों से निजात दिलाने का सुगम मार्ग योग साधना प्रशस्त किया है। समस्या यह है कि हम कबीर को पढ़ते–पढ़ाते तो हैं लेकिन उनकी साधना पद्धति पर अमल नहीं करते या की यूं कहें हम उनकी साधना पद्धति को अपने व्यावहारिक जीवन में महत्व नहीं देते। कबीर लोगों को जगाते भी हैं और सावधान भी करते रहते हैं। जो सच्चा साधक होता है, वह योग –साधना के मार्ग पर

चलकर आगे बढ़ता है और हठयोग का पालन करते हुए अपनी इंद्रियों को अपने नियंत्रण में करके परमसुख को प्राप्त कर लेता है यहां कबीर के हठयोग को उनकी एक उलटवासी के माध्यम से समझा जा सकता है–

'आकाशे मुख औंधा कुआं, पाताले पनिहारि।
ता का जल को हंसा पिवै, बिरला बुद्ध विचारि।।'[10]

इस दोहे का सामान्य अर्थ तो यही है कि आकाश में नीचे की ओर मुख किए हुए कुआं अर्थात औंधा कुआं है और पाताल में पनिहारिन है। पाताल यानी सागर के सात तलों में सबसे नीचे का तल है। सागर के सात तल– अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातम, रसातल, और पाताल हैं। यानी पाताल सागर के सघन जल का सबसे अधिक गहराई का निचला भाग होता है। अब यहां पनिहारिन पाताल में होते हुए भी प्यासी है। अब इस बात पर हंसी ही आएगी कि 'जल में मीन प्यासी, सोचि सोचि मोहे आवे हांसी।।[11] लेकिन कुएं के जल को कोई हंस जैसा नीर क्षीर विवेकी व्यक्ति पी सकता है। अब इस उलटवासी का जो व्यापक और गूढ़ रहस्यमई अर्थ है वह इस प्रकार है– आकाश स्थल मनुष्य, साधक या योगी के शरीर का सबसे उच्च स्थान कपाल या खोपड़ी है कपाल मुख् औंधे कुएं के समान होती है और पाताल यानी मूलाधार के निकट पेट में पनिहारिन यानी कुंडलिनी है। साधक मेरुदंड रूपी गुरु के सहारे षटचक्र– मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहतचक्र, विशुद्धचक्र, आज्ञाचक्र, सहस्त्रारचक्र भेद कर ब्रह्मरंध्र यानी शंभू द्वार पर स्थित त्रिकुटी में अपने को जागृत रूप में पहुंचा देता है। यहां इसे इस चित्र के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है–

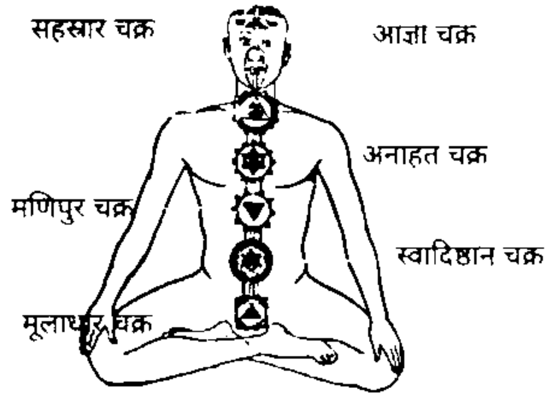

डॉ0 श्रद्धा सिंह कहती हैं कि 'कुंडली जब ऊर्ध्वमुखी होकर आगे बढ़ती है तब उसे छः चक्रों का भेदन करना पड़ता है। प्रत्येक चक्र में दलों की संख्या भिन्न–भिन्न होती है छः चक्रों में कुल मिलाकर पचास दल हैं। कबीर की साहित्य साधना को समझने के लिए इन चक्रों का ज्ञान भी आवश्यक है–

1– **मूलाधार–** यह चक्र मेरुदंड प्रदेश में जननेंद्रिय के नीचे अवस्थित है। इसके चार दल माने गए हैं। इसे रक्त वर्ण माना गया है। इस चक्र के अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा हैं।

2– **स्वाधिष्ठान–** इसकी स्थिति जननेंद्रिय के ऊपर लिंग मूल में है, उसमें छः पंखुड़ियां होती हैं। इसको सिंदूर वर्ण माना गया है। इस चक्र के देवता विष्णु हैं।

3 – **मणिपुर–** यह नाभि प्रदेश में स्थित दस दलों वाला ज्योतिमान पद्मचक्र है। इसके अधिष्ठाता देवता महारुद्र हैं। इसका तत्व तेज है

4 – **अनाहतचक्र–** इसकी स्थिति हृदय प्रदेश में है। यह अरुण वर्ण का बारह दलों वाला चक्र है। यहीं अनाहतनाद सुनाई देता है।

5 – **विशुद्धचक्र–** यह कंठ में स्थित है। इसका वर्ण देदीप्यमान स्वर्ण जैसा है। इस कमल दल में सोलह पंखुड़ियां होती हैं। यह योगी की संपूर्ण प्रक्रिया का स्वामी चक्र होता है। इस चक्र पर वाग्देवी सरस्वती की स्थिति है।

6 – **आज्ञाचक्र–** यह त्रिकुटी के मध्य स्थित चक्र है। इसमें सिर्फ दो दल होते हैं। इसका वर्ण श्वेत या शुक्लाभ है। इसकी सिद्धि पर हंस ध्वनि सुनाई देती है। यहीं आकर इडा, पिंगला दोनों नाड़ियां समाहित होती हैं। यही शिव का वास होता है।

7 – **सहस्त्रारचक्र–** शरीर के भीतर विद्यमान इन छः चक्रों के अतिरिक्त इन के ऊपर सिर में एक चक्र और होता है, जिसे सहस्त्रार चक्र कहते हैं। इसे शून्य चक्र, गगनमंडल, ब्रह्मस्थान, ब्रह्मरंध्र, निर्वाणचक्र आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। इसमें शक्ति की सहस्त्र किरणें हैं। अतः इस पदमाकार

चक्र के सहस्त्रदल माने गए हैं सहस्त्रार को शिवपद या ब्रह्मपद भी कहा गया है। कुंडलिनी की ऊर्ध्वयात्रा यही आकर समाप्त होती है।'[12]

कबीर अपनी साधना पद्धति में जिन शब्दावली का प्रयोग करते हैं वह जन सामान्य के लिए अगूढ़ और भ्रामात्मक लग सकती हैं, लेकिन कबीर मर्मज्ञ सुधि साधक उन्हें समझकर उनका अनुसरण करता हुआ अपने जीवन को बदल कर रख देता है। कबीर की उलटवासियों के विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं 'दुनिया का क्रम हैः धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष, ब्रह्मचर्य–गृहस्थ–वानप्रस्थ–सन्यास,श्रृंगार–हास्य–करुण–रौद्र–विभत्स–भयानक–अद्भुत–शांत, पृथ्वी–जल–तेज–वायु–आकाश, ब्रह्मा–विष्णु–शिव, इत्यादि अर्थात सब उल्टा!! क्योंकि जो श्रेष्ठ है उसको पहले स्थान देना चाहिए, अपेक्षाकृत कम श्रेष्ठ को बाद में। इस प्रकार वास्तविक क्रम बिल्कुल उल्टा होगा। यथा मोक्ष–धर्म–अर्थ–काम–सन्यास–वानप्रस्थ–गृहस्थ–ब्रम्हचर्य–शांत–करुण–अद्भुत–वीर–रौद्र–हास्य–भयानक–वीभत्स–श्रृंगार आदि। यही योग संप्रदाय की रीति है, यही तंत्र संप्रदाय की।'[13] अभिप्राय यह है कि कबीर अपनी योगसाधनापरक उलटवासियों में लोक में प्रचलित क्रम व्यवस्था को बदलकर एक ऐसा उल्टा क्रम हम सबके सम्मुख लाते हैं कि सामान्यतया लोग कबीर के मंतव्य एवं विचारों को समझने से कभी–कभी वंचित रह जाते हैं। बड़े से बड़े विद्वानों तक का पसीना छूट जाता है।

वर्तमान समय में व्यक्ति को बुद्धिमत्ता के साथ–साथ चेतनाशील भी होने की जरूरत है। बुद्धिमत्ता व्यक्ति को तर्कशील, विश्लेषण क्षमता से परिपूर्ण एवं समझ के आधार को बढ़ाती है। बुद्धिमत्ता के आधार पर व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में कार्य–कारक संबंधों को बेहतर ढंग से समझ सकता है और अपने जीवन को सकारात्मक भाव के साथ जीता हुआ नकारात्मकता से बच निकलता है। चेतना या विवेक व्यक्ति के अंदर का सबसे अद्भुत और महत्वपूर्ण आंतरिक गुण है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने अंतर्मन को ज्ञान से सदैव दीप्त रखता है और बाह्य जगत के नाना प्रपंचों के प्रति जागरूक रहता है। कामायनी में जयशंकर प्रसाद ने मानव को समरसता के साथ ही साथ जीवन जीते हुए चेतना का विस्तार करके आनंदमय जीवन का सुख प्राप्त

करने का राह दिखाते हैं–

'समरस थे जड़ या चेतन सुंदर साकार बना था।

चेतनता एक विलसती आनंद अखंड घना था।।'[14]

व्यक्ति को अपने जीवन में अखंड आनंद को प्राप्त करना है तो कबीर की बताई गई साधना–पद्धतियों का पालन करते हुए अपने मन के विकारों को यथा राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि को त्यागना होगा। भौतिकता में सुख न खोज कर प्रकृति की गोद में बैठकर साधना में लीन होकर परम सुख प्राप्त करना होगा, तभी विश्व मानवता का कल्याण संभव है, तभी सभी जन सुखी रहते हुए खुशी के साथ स्वस्थ एवं दीर्घायु जीवन जीते हुए आनंद की प्राप्ति कर पाएंगे।

सन्दर्भ

1. *रामनारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय, संपादक, महाभारत, भीष्म पर्व 5/4, गीता प्रेस गोरखपुर।*
2. *रामनारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय, संपादक, महाभारत, शान्ति पर्व 184/1, गीता प्रेस, गोरखपुर।*
3. *निदा फाजली, आंखों भर संसार (मैं रोया परदेश में, भीगा मां का प्यार), पृष्ठ सं0 08, वाणी प्रकाशन, जन. 2008।*
4. *श्याम सुन्दर दास, सम्पादक, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ सं.– 07, राजपाल एंड संस।*
5. *पतंजलि योग दर्शन, 2/34।*
6. *वासुदेव सिंह, संपादक कबीर, पृष्ठ सं. 126, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद।*
7. *सुधा मासिक, लखनऊ, अप्रैल 1930, गीतिका में संकलित, पृष्ठ सं.–214, राजकमल प्रकाशन, 2006।*
8. *पुरुषोत्तम अग्रवाल, कबीर साखी और शबद, पृष्ठ सं. 97, एनबीटी पब्लिकेशन।*
9. *डॉ0 भगवत स्वरूप मिश्र, संपादक कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ सं. 226, विनोद पुस्तक प्रकाशन, आगरा।*
10. *वासुदेव सिंह, संपादक कबीर (कबीर काव्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द–डॉ0 श्रद्धा सिंह) पृष्ठ सं. 125, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद।*

11. *श्याम सुन्दर दास, संपादक कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या–107, राजपाल एंड संस।*
12. *वासुदेव सिंह, संपादक कबीर (कबीर काव्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द–डॉ0 श्रद्धा सिंह) पृष्ठ सं. 127, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद।*
13. *हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ सं.– 72, 73, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1998।*
14. *जयशंकर प्रसाद, कामायनी (आनन्द सर्ग), पृष्ठ सं.– 105, विद्यासागर, इलाहाबाद, संस्करण 1990।*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ.93-99

पूर्व राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पर चर्चा

*डॉ० अजय कुमार मिश्र**

भारतीय संविधान के चौथे भाग में उल्लिखित नीति–निदेशक तत्वों में कहा गया है कि प्राथमिक स्तर तक के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए। 1948 में डॉ0 राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के गठन के साथ ही भारत में शिक्षा–प्रणाली को व्यवस्थित करने का काम शुरू हो गया था। 1952 में लक्ष्मणस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा 1964 में दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर 1968 में शिक्षा–नीति पर एक प्रस्ताव पारित किया गया। जिसमें 'राष्ट्रीय विकास के प्रति वचनबद्ध चरित्रवान तथा कार्यकुशल' युवक–युवतियों को तैयार करने का लक्ष्य रखा गया। मई 1986 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू की गई, जो अब तक चल रही है। इस बीच राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा के लिए 1990 में आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक समीक्षा समिति तथा 1993 में प्रो0 यशपाल समिति का गठन किया गया। नई शिक्षा नीति 2020 भारत की शिक्षा नीति है, जिसे भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई 2020 को घोषित किया गया। सन् 1986 में जारी हुई नई शिक्षा नीति के बाद भारत की शिक्षा नीति में यह पहला नया परिवर्तन है। यह नीति अंतरिक्ष वैज्ञानिक के0 कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता वाली समिति की रिपोर्ट पर आधारित है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968

जब कोठारी आयोग ने (1961–66) अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को 29 जून 1966 को प्रस्तुत की थी। इसके 9 महीने बाद भारत सरकार ने 5 अप्रैल 1967 को प्रस्तुत की थी। इसके 9 महीने बाद भारत सरकार ने 5 अप्रैल 1967 को संसद सदस्यों की एक समिति का गठन किया। जिनमें तीन काम दिए जिनमें पहला, कोठारी आयोग द्वारा दिए सुझाव पर गंभीरता से विचार करना था।

* विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र, गनपत सहाय पी०जी० कॉलेज, सुलतानपुर

दूसरा काम राष्ट्रीय शिक्षा नीति का ड्राफ्ट तैयार करना था। जबकि तीसरा कार्य प्राथमिकताओं के आधार पर उसके क्रियान्वयन की रूपरेखा को तैयार करना था।

इसके बाद इस संसद की बनाई हुई समिति ने कोठारी आयोग के सुझावों का गंभीरता से अध्ययन किया और उसके बाद सुझावों को सरकार को प्रस्तुत किया।

समिति ने सर्वप्रथम शिक्षा द्वारा राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने पर बल दिया था। इसके बाद सामाजिक समानता की प्राप्ति के लिए आयोग द्वारा प्रस्तावित सामान्य विद्यालय पड़ोस विद्यालय के रूप में स्वीकार किए गए थे। समिति ने भाषा नीति कार्यानुभव, चरित्र निर्माण, विज्ञान शिक्षा एवं शोध और शैक्षिक अवसरों की समानता पर विस्तार से विचार प्रकट किए और शिक्षा के सभी स्तरों में गुणात्मक सुधार पर अधिक बल दिया उसने केंद्र और राज्य सरकारों के शैक्षिक उत्तरदायित्व निश्चित किए और अंत में प्राथमिकताओं के आधार पर भावी कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की। संसद में इस पर लंबी बहस और चर्चा भी हुई और राष्ट्रीय शिक्षा नीति को अंतिम रूप दिया। 24 जुलाई 1968 को सरकार ने इसकी विधिवत घोषणा की।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 भारतीय शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए और शिक्षा व्यवस्था को समाज की आवश्यकताओं के अनुसार बनाने के लिए बनाई गई थी। जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के दोषों को दूर करना तथा भारतीय शिक्षा संरचना को और अधिक दुरूस्त करना था। श्री पी0वी0 नरसिम्हा राव ने अगस्त 1986 में संसद में एक परिपत्र क्रियान्वित कार्यक्रम प्रस्तुत कर दिया तथा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 पर अमल किया और उसे प्रारम्भ कर दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992

भारत सरकार द्वारा 1992 में जनार्दन रेड्डी समिति का गठन किया गया। इस समिति का गठन के निर्माण के पीछे उद्देश्य यह था कि इसके द्वारा शिक्षा में सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत किए जाएंगे। इसका कार्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, में उचित सुधार हेतु भारत सरकार को सुझाव देना था।

जिसके द्वारा भारतीय शिक्षा प्रणाली में सुधार किए जा सकें। इसके द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के क्षेत्र का विस्तार किया गया। उसको विस्तृत रूप में परिभाषित करने का कार्य संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 द्वारा किया गया। इसके सिर्फ राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अर्थ को विस्तार से समझाने का कार्य किया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2005

NCF 2005 भारत में स्कूलों के लिए पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण प्रथाओं के लिए एक दिशा निर्देश के रूप में कार्य करता है। NCF 2005 ने शिक्षा पर पिछली सरकार की रिपोर्टों जैसे लर्निंग विदाउट बर्डन और नेशनल पॉलिसी ऑफ एजूकेशन 1986–1992 और फोकस ग्रुप डिस्कशन पर अपनी नीतियों को आधारित किया गया। राष्ट्रीय पाठचर्या रूपरेखा को 5 भागों में बाँटकर वर्णित किया गया है–

(1) परिप्रेक्ष्य

(2) सीखना और ज्ञान

(3) पाठचर्या के क्षेत्र, स्कूल की अवस्थाएँ और आंकलन

(4) विद्यालय तथा कक्षा का वातावरण

(5) व्यवस्थागत सुधार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

हाल ही में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति लाई गई जिसे सभी के परामर्श से तैयार किया गया है। इसे लाने के साथ ही देश में शिक्षा पर व्यापक चर्चा आरंभ हो गई है। शिक्षा के संबंध में गाँधी जी का तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है। इसी प्रकार स्वामी विवेकानंद का कहना था कि मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। 1986 की शिक्षा नीति में ऐसी क्या कमियाँ रह गयी थी, जिन्हें दूर करने के लिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आवश्यकता पड़ी। साथ ही क्या यह नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति उन उद्‌देश्यों को पूरा करने में सक्षम होगी जिनका स्वप्न महात्मा गाँधी और स्वामी विवेकानंद ने देखा था ?

गौरतलब है कि नई शिक्षा नीति 2020 की घोषणा के साथ ही मानव संसाधन का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय कर दिया है। इस नीति द्वारा देश में स्कूल एवं उच्च शिक्षा में परिवर्तनकारी सुधारों की अपेक्षा की गई है। इसके उद्देश्यों के तहत 2030 तक स्कूली शिक्षा में 100% GER के साथ–साथ पूर्व विद्यालय से माध्यमिक स्तर तक शिक्षा के सार्वभौमीकरण का लक्ष्य रखा गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रमुख बिंदु

(1) स्कूली शिक्षा संबंधी प्रावधान

नई शिक्षा नीति में 5+3+3+4 डिजाइन वाले शैक्षणिक संरचना का प्रस्ताव किया गया है। जो 3 से 18 वर्ष की आयु वाले बच्चों को शामिल करता है।

(a) पाँच वर्ष की फाउंडेशनल स्टेज–3 साल का प्री–प्राइमरी स्कूल और ग्रेड 1, 2

(b) तीन वर्ष का प्रीपेट्रेरी स्टेज

(c) तीन वर्ष का मध्य (या उच्च प्राथमिक) चरण–ग्रे 6, 7, 8 और

(d) 4 वर्ष का उच्च (या माध्यमिक) चरण–9, 10, 11, 12

NEP 2020 के तहत HHRO द्वारा 'बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मक ज्ञान पर एक राष्ट्रीय मिशन' की स्थापना का प्रस्ताव किया गया। इसके द्वारा वर्ष 2025 तक कक्षा–3 स्तर तक की बच्चों के लिए आधारभूत कौशल सुनिश्चित किया जाएगा।

(2) भाषायी विविधता का संरक्षण

(1) NEP 2020 में कक्षा–5 तक की शिक्षा में मातृभाषा/स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा को अध्ययन के माध्यम के रूप में अपनाने पर बल दिया गया। साथ ही इस नीति में मातृभाषा को कक्षा–8 और आगे की शिक्षा के लिए प्राथमिकता देने का सुझाव दिया गया है।

(2) स्कूली और उच्च शिक्षा में छात्रों के लिए संस्कृत और अन्य प्राचीन भारतीय भाषाओं का विकल्प उपलब्ध होगा परंतु किसी भी छात्र पर भाषा के चुनाव की कोई बाध्यता नहीं होगी।

(3) शारीरिक शिक्षा

विद्यालयों में सभी स्तर पर छात्रों की बागवानी, नियमित रूप से खेलकूद, योग, नृत्य, मार्शल आर्ट को स्थानीय उपलब्धता के अनुसार प्रदान करने की कोशिश की जाएगी। ताकि बच्चे शारीरिक गतिविधियों एवं व्यायाम वगैरह में भाग ले सकें।

(4) पाठ्यक्रम और मूल्यांकन संबंधी सुधार

(1) इस नीति में प्रस्तावित सुधारों के अनुसार, कला और विज्ञान, व्यावसायिक तथा शैक्षणिक विषयों एवं पाठ्यक्रम व पाठ्येत्तर गतिविधियों के बीच बहुत अधिक अंतर नहीं होगा।

(2) कक्षा–6 से ही शैक्षिक पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को शामिल कर दिया जाएगा और इसमें इंटर्नशिप की व्यवस्था भी की जाएगी।

(3) 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद' द्वारा स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा तैयार की जाएगी।

(4) छात्रों के समग्र विकास के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कक्षा–10 और कक्षा–12 की परीक्षाओं में बदलाव किया जाएगा। इसमें भविष्य में सेमेस्टर या बहुविकल्पीय प्रश्न आदि जैसे सुधारों को शामिल किया जा सकता है।

(5) शिक्षण–व्यवस्था से संबंधित सुधार

(1) शिक्षकों की नियुक्ति में प्रभावी और पारदर्शी प्रक्रिया का पालन तथा समय–समय पर किए गए कार्य प्रदर्शन आंकलन के आधार पर पदोन्नति।

(2) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा वर्ष 2022 तक 'शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय व्यावसायिक मानक' का विकास किया जाएगा।

(3) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा NCERT के परामर्श के आधार पर 'अध्यापक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्चर्या की रूपरेखा' का विकास किया जाएगा।

(4) वर्ष 2030 तक अध्यापन के लिए न्यूनतम डिग्री योग्यता 4 वर्षीय एकीकृत बी0एड0 डिग्री का होना अनिवार्य किया जाएगा।

(6) उच्च शिक्षा से संबंधित प्रावधान

(1) NEP 2020 के तहत उच्च शिक्षण संस्थानों में **'सकल नामांकन अनुपात'** को 26.3% (वर्ष 2018) से बढ़ाकर 50% तक करने का लक्ष्य रखा गया है, इसके साथ ही देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.5 करोड़ नई सीटों को जोड़ा जाएगा।

(2) NEP 2020 के तहत स्नातक पाठ्यक्रम में मल्टीपल एंट्री एंड एक्जिट व्यवस्था को अपनाया गया है। इसके तहत 3 या 4 वर्ष के स्नातक कार्यक्रम में छात्र कई स्तरों पर पाठ्यक्रम को छोड़ सकेंगे और उन्हें उसी के अनुरूप डिग्री या प्रमाण पत्र प्रदान किया जाएगा। (1 वर्ष के बाद प्रमाण पत्र, 2 वर्षों के बाद एडवांस डिप्लोमा, 3 वर्षों के बाद स्नातक की डिग्री तथा 4 वर्षों के बाद शोध के साथ स्नातक)।

(3) विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल दिया जाएगा, ताकि अलग–अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके।

(4) नई शिक्षा नीति के तहत M.Phil को समाप्त कर दिया जाएगा।

भारतीय उच्च शिक्षा आयोग

नई शिक्षा नीति में देश भर के उच्च संस्थानों के लिए एक एकल नियामक अर्थात् भारतीय उच्च शिक्षा परिषद (HECI) की परिकल्पना की गई है। जिसमें विभिन्न भूमिकाओं को पूरा करने हेतु कई कार्यक्षेत्र होंगे। भारतीय उच्च शिक्षा आयोग चिकित्सा एवं कानूनी शिक्षा को छोड़कर पूरे उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिए एक एकल निकाय के रूप में कार्य करेगा।

विकलांग बच्चों हेतु प्रावधान

इस नीति में विकलांग बच्चों के लिए क्रास विकलांगता प्रशिक्षण, संसाधन केन्द्र, आवास सहायक उपकरण, उपर्युक्त प्रौद्योगिकी आधारित उपकरण, शिक्षकों का पूर्ण समर्थन एवं प्रारंभिक से लेकर उच्च शिक्षा तक नियमित रूप से स्कूली शिक्षा प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करना आदि प्रक्रियाओं को सक्षम बनाया जाएगा।

डिजिटल शिक्षा से सम्बन्धित प्रावधान

(1) एक स्वायत्त निकाय के बारे में 'राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच' का गठन किया जाएगा जिसके द्वारा शिक्षण, मूल्यांकन योजना एवं प्रशासन में अभिवृद्धि हेतु विचारों का आदान–प्रदान किया जा सकेगा।

(2) डिजिटल शिक्षा संसाधनों को विकसित करने के लिए अलग प्रौद्योगिकी इकाई का विकास किया जाएगा जो डिजिटल बुनियादी ढाँचे, सामग्री और क्षमता निर्माण हेतु समन्वय का कार्य करेगी।

केंद्रीय मंत्रीमंडल ने 21 वीं सदीं के भारत की जरूरतों को पूरा करने के लिए भारतीय शिक्षा प्रणाली में बदलाव हेतु जिस नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को मंजूरी दी है अगर उसका क्रियान्वयन सफल तरीके से होता है तो यह नई प्रणाली भारत को विश्व के अग्रणी देशों के समकक्ष ले आएगी। नई शिक्षा नीति 2020 के तहत 3 साल से 18 साल तक के बच्चों को शिक्षा का अधिकार कानून, 2009 के अंतर्गत रखा गया है। 34 वर्षों पश्चात् आई इस नीति का उद्‌देश्य सभी छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करना है जिसका लक्ष्य 2025 तक पूर्व प्राथमिक शिक्षा (3–6 वर्ष की आयु सीमा) को सार्वभौमिक बनाना है। स्नातक शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, थ्री–डी मशीन, डेटा विश्लेषण, जैव प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों के समावेशन से अत्याधुनिक क्षेत्रों में भी कुशल पेशेवर तैयार होंगे और युवाओं की रोजगार क्षमता में वृद्धि होगी।

संदर्भ

1. *श्री अरविन्द, राष्ट्रीय शिक्षा के उपाय व शिक्षण पद्धति, श्री अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी*
2. *अतुल कोठारी, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारतीयता का पुररुत्थान, प्रभात प्रकाशन, 2021*
3. *सुधांशु कुमार, शिक्षा–नीति 2020 (कुछ संस्तुतियाँ एवं विमर्श)*
4. *रमेश पोखरियाल निशंक, शिक्षा के माध्यम से राष्ट्र निर्माण, प्रभात प्रकाशन, 2021*
5. *पंकज अरोड़ा (संपादक), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (रचनात्मक सुधारों की ओर)*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ.100-106

जानकीहरणम् महाकाव्य में विम्बित पारिवारिक जीवन

बलराम वर्मा *
डॉ० आशा गुप्ता **

जानकी हरणम् महाकवि कुमारदास द्वारा विरचित काव्य संस्कृत भाषा का अनुपम ग्रन्थ है जो 'वाल्मीकि रामायण' पर अवलम्बित है। यद्यपि इस ग्रन्थ का नाम 'जानकीहरण' रखा गया है, परन्तु उसमें राम जन्म से लेकर उनके अभिषेक तक की कथा काव्यात्मक ढंग से वर्णित है। इस महाकाव्य में 20 सर्ग प्राप्त होते हैं। प्रथम सर्ग राजा दशरथ एवं उनके पत्नियों तथा अयोध्या के कवित्वपूर्ण चित्रण से प्रारम्भ होता है तथा समापन बीसवें सर्ग में राम–रावण युद्ध तथा राम का रावण पर विजय द्वारा होता है। लौकिक संस्कृत का प्रथम महाकाय 'रामायण' है। इसलिए इसे 'आदि काव्य' तथा इसके प्रणेता महर्षि वाल्मीकि को 'आदिकवि' कहा गया है। रामायण लोकाभिराम 'राम' के पावन चरित्र का निबन्धन है। इस काव्य में महर्षि ने राम के सहज हृदयहारी रूप, लोक कल्याणकारी कार्यों एवं उदात्त आदर्शों की निर्मल झाँकी प्रस्तुत की है। कालान्तर में रामायण अपनी परवर्ती काव्यधारा का उपजीव्य बन गया। भारत की प्रायः सभी भाषाओं एवं विदेशी भाषाओं में भी यह कथा समय–समय पर विस्तार पाती रही। भारत के बाहर नेपाल, श्रीलंका, कम्बोडिया, तिब्बत, जावा, इण्डोनेशिया, वर्मा, सुमात्रा, थाइलैण्ड आदि विभिन्न देशों में राम कथा विद्यमान है।

परिवार का स्वरूप : पितृ–भक्ति, मातृ–भक्ति एवं भातृ–प्रेम

परिवार वस्तुतः व्यक्ति विशेष का एक समूह होता है जिसमें नर एवं नारी को ही नहीं अपितु उस समूह के प्रत्येक सदस्य को महत्व प्रदान किया जाता है। परिवार के संगठन के लिए एक ऐसे कुशल व्यक्ति की आवश्यकता होती हैं जो गृह का सञ्चालन सम्यक रूप से कर सके। क्योंकि परिवार के सदस्यों की देखभाल, संरक्षण तथा उनकी उन्नति उस घर के मुखिया पर ही निर्भर करती है। मुखिया यदि कुशल एवं योग्य है तो परिवार की उन्नति निश्चित है। प्राचीन सामाजिक संस्थाओं में कुटुम्ब या परिवार का विशिष्ट

* शोधच्छात्र, संस्कृत, रणवीर रणंजय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अमेठी
** शोध निर्देशक एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रणवीर रणंजय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अमेठी

स्थान है। यह प्राचीन जीवन की मूलभूत इकाई है। परिवार के माध्यम से ही मनुष्य अपना उत्कर्ष करता है। परिवार से ही समाज का निर्माण होता है तथा यही नागरिक जीवन की प्रथम पाठशाला है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो परिवार से संबद्ध न हो। हमारी आवश्यकताएं परिवार के माध्यम से पूर्ण होती हैं। परिवार मनुष्य के जीवन की रक्षा करता है तथा जैवकीय आवश्यकताओं को पूरा करता है। समाज की निरन्तरता परिवार के माध्यम से बनी रहती है। आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से इस संस्था के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। ज्ञात होता है कि पूर्व वैदिक काल में संयुक्त परिवार की प्रथा थी जिसमें माता–पिता, पति–पत्नी, भाई–बहन, पुत्र–पुत्री आदि के साथ ही अन्य सम्बन्धी भी निवास करते थे। ऐसा ज्ञात होता है कि संयुक्त परिवार में चार पीढियों तक के सदस्य रहते थे।

भारतीय संस्कृति में माता–पिता को बहुत महत्व दिया गया है। 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव' इत्यादि वैदिक उक्तियों से उनकी महिमा सिद्ध है। अतः भारतीय संस्कृति के परिपालक समाज में बालकों को माता–पिता तथा गुरु, उनमें वाल्यावस्था में ही ऐसे संस्कार डाल देते थे, जिससे उन बालकों का भावी जीवन अत्यन्त सुखकर हो जाता था। रघुवंशी नरेशों के गृहों में भारतीय संस्कृति पूर्णरूप से प्रतिष्ठित थी। उनका आचार–विचार, रहन–सहन, खान–पान, शिक्षा तथा व्यवहार अत्यन्त मर्यादित था। उनके गृहों में प्रारम्भ से ही बालकों में माता–पिता की सेवा का भाव भर दिया जाता था। उक्त तथ्य के परिप्रेक्ष्य में महाकवि कुमारदास ने जानकीहरण के चतुर्थ सर्ग में एक मनोरम विम्ब खींचा है, जिसमें माताओं के कहने पर शिशु भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न पिता दशरथ का पैर दबाते हैं–

इतरेऽपि सरोजशीतलैर्मृदुभिः साञ्जनराजिभिः करैः।
शयने समवाहयन् पितुश्चरणौ मातृजनेन चोदिताः।।[1]

'अपनी–अपनी माताओं से प्रेरित होकर, अन्य बालक (भरत लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न) भी शय्या पर लेटे हुए पिता (दशरथ) के चरणों को अपने काजल लगे हुए, कोमल एवं कमल की भाँति करों से दबाने लगते थे। इसी तरह 'जानकीहरणम्' के दशम सर्ग में भी राम की पितृभक्ति का दिग्दर्शन होता है। भरत से पिता मृत्यु का समाचार सुनकर राम ने हृदयविदारक शोक से आँसू बहाकर जो दुःख प्रकट किया, उससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे राम अपने पिता

की अन्त्येष्टि क्रिया कर रहे हों–

ततः श्रुत्वा गुरोरन्तं स दुःखेन हृदिस्पृशा।
साभिषेकमिवाश्रेण चक्रे कमौर्ध्वदेहिकम्।।[2]

अर्थात् ''मैं महाराज पिता दशरथ के कहने से आग में कूद सकता हूँ, तीव्र विष का पान कर सकता हूँ और समुद्र में भी गिर सकता हूँ।'' ''पिता की सेवा और उनकी आज्ञा का पालन करने से बढ़कर संसार में कोई दूसरा धर्म नहीं है।''राम ने कवि कुमार दास कृत प्रस्तुत महाकाव्य के अन्तर्गत भी धैर्य एवं मर्यादा का परिचय दिया है। राम रावण वध करके लंका से अयोध्या आते हैं तो उन्होनें अपनी माता कैकेयी की जो लज्जा है उसको दूर कर दिया–

रामावृतो भरतलक्ष्मण कनिष्ठैः बद्धाञ्जलिर्गुरु विधेयकतैव पृच्छन।
वीरश्चकार हृदयं सहसा सतीव्रव्रीलावतार विधुरं भरतस्य मातुः।।[3]

अर्थात् ''भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न से घिरे हुए हाथ जोड़कर गुरुजनोचित आदर से हाल–चाल पूछते हुए उस वीर राम ने तुरन्त भरत की माता (कैकेयी) के हृदय में तीव्र लज्जा को मिटा दिया।'' राम का मानना है कि जब अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति को अपनी भूल का आभास होता है, तो उसे अधिक लज्जा स्वयं ही होती है अतः उसकी कदापि भी निन्दा नहीं करनी चाहिए। कवि कुमारदास राम के मुख से इसी आदर्श को कहलवाते हैं–

तस्यानुजद्वयकरस्थितशातकुम्भ कुम्भच्युतं शिरसि राक्षसनाथशत्रोः।
श्वेतात्पत्रतलभाजिनि बद्धधारं मातुर्ममर्ज भरतस्य कलङ्कमम्भः।।''[4]

''अपने दोनों भाइयों के हाथ में लिए हुए सोने के घड़ों से श्वेत छत्र के नीचे बैठे हुए रावण के शत्रु राम के सिर पर धार से गिरते हुए अभिषेक के जल से भरत की माता कैकेयी के कलङ्क को धो दिया।।'' इस प्रकार जानकीहरणम् महाकाव्य में राम के उदात्त मातृ–भक्ति का निरूपण हुआ है।

राम का भातृ–प्रेम अतुलनीय है। बचपन से ही राम भाइयों के साथ बड़ा प्रेम करते थे। सदा उनकी रक्षा करते थे और उन्हें सदैव प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे। यद्यपि राम के मन में सभी भाइयों के साथ समान भाव से प्रेम था तथापि लक्ष्मण का लगाव राम के प्रति विशेष था। लक्ष्मण पल भर के लिए भी राम से अलग नहीं होना चाहते। युद्ध भूमि में जब लक्ष्मण मूर्छित हो

जाते हैं, तब राम भी लक्ष्मण के लिए अपना शरीर त्यागने की बात करते हैं–

यथा मां विषिनं यान्तमनुभाति महाद्युति।
अहमप्यनुमास्यामि तथैवैनं समक्षयम्।।[5]

भ्रातृ–प्रेम के इसी उदात्त प्रेम का चित्रण कुमार दास के जानकीहरणम् महाकाव्य में भी प्राप्त है। भरत जब अपनी माता कैकेयी के बारे में भला–बुरा कहते हैं और राम को अयोध्या लौट चलने के लिए आग्रह करते हैं तो राम भरत को निराश नहीं करते हैं और उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि जब स्वयं किसी गुरुजन को अपने किसी किये हुए कार्य से लज्जा होती है तो उसको वैसा ही दोषमुक्त काम करने वाले किसी अन्य पुरुष की भी निन्दा नहीं करना चाहिए।[12] तत्पश्चात् राम ने भरत को अपना खड़ाऊ देकर सन्तुष्ट कर दिया–

इति व्याहृत्य नम्राय ददौ दीनाय पादुके।
धर्मे मर्माविधि मरौ वारि वारीष्यते यथा।।[6]

अर्थात् ''इतना कहकर उन्होंने अपने कातर नतमस्तक भाई को अपनी दोनों खड़ाऊ दे दी जैसे मरुभूमि की मर्मभेदी धूप में पानी माँगने वाले को कोई पानी दे दे।।''

द्विधाकारमिव ज्यायान् भरतं हृदयं चिरम्।
दर्शयन्तं परिष्वङ्गप्राप्तसान्त्वं व्यसर्जयत।।[7]

अर्थात्, ''तब बड़े भाई राम ने भरत को आलिङ्गन करके, बहुत देर से दुविधा में पड़े हुए मन को शान्ति देते हुए उन्हें विदा दिया।'' इस प्रकार राम में पितृ–भक्ति, मातृ–भक्ति के साथ ही भ्रातृ–प्रेम भी कूट–कूट कर भरी पड़ी है, जो एक आदर्श परिवार के लिए अत्यावश्यक है। परिवार के प्रत्येक सदस्य का कर्त्तव्य है कि पारस्परिक साहचर्य का विखण्डन न करे। पारस्परिक सामञ्जस्य से ही परिवार की एकता और अखण्डता स्थायी हो पाती है। अनान्य रामकथा की भाँति कुमारदास ने भी अपने महाकाव्य जानकीहरणम् में परिवार के इन्हीं उदात्त आदर्शों को निरूपित किया है।

दाम्पत्य जीवन

भारतीय संस्कृति में दाम्पत्य जीवन का महत्वपूर्ण स्थान है। दाम्पत्य वह है जो स्त्री और पुरुष दोनों को एक बन्धन में बांधकर एक करता है। यह

बन्धन ही 'विवाह' कहलाता है एवं उसके बाद का जीवन दाम्पत्य–जीवन कहलाता है। दम्पति अर्थात् जोड़ा। स्त्री एवं पुरुष का एक जोड़ा, जिसे एक धार्मिक, पारिवारिक सामाजिक, नैतिक, विधिक मान्यताओं, रीति–रिवाजों के आधार पर स्वीकृति प्रदान की जाती है। विवाह के उपरान्त स्त्री–पुरुष पति–पत्नी बनकर जिस जीवन का निर्वाह करते हैं वह दाम्पत्य–जीवन कहलाता है। दाम्पत्य–जीवन एक धर्म है, आधार है, विश्वास है, प्रेम है, समर्पण है, प्रतिज्ञा है, पवित्रता है और भी बहुत कुछ है जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। भारतीय संस्कृति में विवाह सोलह संस्कारों में से एक प्रमुख संस्कार है। जिसका परिपालन गृहस्थ आश्रम में ही हो सकता है। इसीलिए चारों आश्रमों से गृहस्थ आश्रम को अत्याधिक महत्वपूर्ण माना गया है। यह आश्रम समाज का निर्माण करता है। जीवन से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण कार्य इसी गृहस्थ आश्रम में पूर्ण किये जाते हैं। इसी आश्रम में सृजन अर्थात् नव निर्माण, सम्भव है। यहाँ नवनिर्माण होता है नवजीवन का, संस्कारों का, मूल्यों का, प्रेम एवं त्याग का, नैतिकता का, अधिकार एवं कर्त्तव्य का, अधिक क्या सृष्टि चक्र इसी दाम्पत्य जीवन पर आधारित है। ऋग्वेद के विवाह सूक्त 10/85, अथर्ववेद में 14/1, 7/37 एवं 7/38 सूक्त में पाणिग्रहण अर्थात् विवाह विधि, वैवाहिक प्रतिज्ञाएं, पति–पत्नी सम्बन्ध, गर्भाधान का शुभ मुहूर्त, योग्य सन्तान का निर्माण, दाम्पत्य–जीवन, गृह प्रबन्ध एवं गृहस्थ धर्म का स्वरूप देखने को मिलता है जो विश्व की किसी अन्य सभ्यता में नहीं प्राप्त होता है।

प्रस्तुत महाकाव्य जानकीहरण में भी दाम्पत्य जीवन का भौतिक प्रेम कवि ने रुचि के साथ वर्णित किया है। महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही राजा दशरथ एवं रानियों के दाम्पत्य जीवन का पारस्परिक प्रेम श्लोक संख्या–26 से श्लोक संख्या 44 तक वर्णित है। इसी तरह महाकाव्य के सप्तम सर्ग में कवि ने वृहद् रूप से राम एवं सीता का विवाह एवं पारस्परिक मिलन का भी श्रृंगारिक वर्णन किया है। जानकीहरण के सप्तम सर्ग का एक पद्य दृष्टव्य है–

सत्यं यदस्याः प्रविभाव्यरागो दृष्टिप्रवेकः खलु कृष्णवर्त्मा।
स्नेहेरितं तद्धनदोपमस्य धैर्येन्धनं तेन ददाह भर्तुः।।[7]

अर्थात, ''सीता की मोहक, तिरछी चितवनें, जिनमें प्रेम छलछला रहा था, सचमुच साक्षात् अग्नि थीं। अतः सीता ने स्नेह से उनका प्रयोग कर कुबेर के समान राम के धैर्य रूपी ईंधन को जला डाला, (अर्थात् फिर धैर्य न रह

गया।)'' अष्टम सर्ग में राम एवं सीता के आन्तरिक साहचर्य का वर्णन किया गया है–

आचरन्नथ स योषितो हठं सा च वामचरिताऽनुरागिणः।
अप्यनीप्सितविधानचेष्टितौ तेनतुः सपदि समदं मिथः।।[8]

''तब वह राम अपनी पत्नी के साथ जबरदस्ती करने लगे और वह सीता भी अपने ऊपर आसक्त पति की इच्छा का विरोध करने लगी। इस प्रकार दोनों ही के एक दूसरे की इच्छा के प्रतिकूल आचरण से तुरन्त दोनों के आनन्द का विस्तार होने लगा।'' इसी तरह उक्त सर्ग के अठारहवें और उन्नीसवें श्लोक में वर्णित है कि 'गर्व, कामसक्ति, लज्जा एवं भय इन भावों के समिश्रण से उसकी (सीता की) चेष्टाएं, तुरंत ऐसी अवस्था पर पहुंच गयी और उनका व्यवहार उसके लिए इतना स्वाभाविक हो गया कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।'[17]इस प्रकार महाकवि कुमारदास ने जानकीहरणम् महाकाव्य में दाम्पत्य जीवन के विभिन्न अंगों को चित्रित किया है परन्तु अधिकता शृंगारिक वर्णन का ही मिलता है। सम्भवतः महाकवि कालिदास की शृंगारिकता का अनुकरण कुमारदास करना चाहते रहे हों। इसके अतिरिक्त जानकीहरणम् महाकाव्य में पिता का पुत्र के साथ, माता का पुत्र के साथ, पुत्री का पिता के साथ जो आन्तरिक स्नेह होता है, उसका भी चित्रण प्राप्त होता है। कुमारदास ने वात्सल्य रस का अद्भुत चित्र प्रस्तुत किया है–

न स राम इह क्व यात इत्यनुयुक्तो वनिताभिरग्रतः।
निजहस्तपुटावृताननो विदधेऽलीकनिलीनमर्भकः।।[9]

अर्थात, 'राम यहाँ नहीं है कहाँ चले गये ऐसा जब स्त्रियां कहने लगी तो उनके सामने ही उस बालक (राम) ने बहाने से, हाथों से अपना मुंह ढक लिया जैसे वहाँ हैं ही नहीं।' धूल से भरा हुआ उनका शरीर जिसमें चार दांत झलक रहे थे और हाथों की रगड़ से काजल से पुते हुए दोनों गाल से वे (राम) उज्ज्वल चार दाँत वाले ऐरावत की तरह शोभायमान हो रहे थे।[10]

इस प्रकार जानकीहरणम् महाकाव्य भी संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है जिसमें अन्यान्य काव्य की भांति काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। जानकीहरणम् महाकाव्य में भी महाकवि कुमारदास ने भारतीय संस्कृति में स्थापित पारिवारिक जीवन एवं आदर्शों को यथावत निरूपित किया है।

संदर्भ

1. जानकीहरणम् 4/12
2. जानकीहरणम् 10/61
3. जानकीहरणम् 20/55
4. जानकीहरणम् 20/56
5. जानकीहरणम् 10/66 ।
6. जानकीहरणम् 10/67
7. जानकीहरणम् 10/68
8. जानकीहरणम् सर्ग 7/3
9. जानकीहरणम् 8/1
10. जानकीहरणम् 8/18

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 107-112

उत्तररामचरितम् में सामाजिक परिदृश्य

डॉ० आशीष प्रताप सिंह *

सारांश

शिशु जब जन्म लेता है तो वह सभ्यता संस्कृति रीति–रिवाजों आदि से सर्वथा अपरिचित होता है। उसे यह नहीं पता होता है कि किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, समाज में उसकी क्या भूमिका है? लेकिन जब वह सामाजिक सम्पर्क में आता है तो धीरे–धीरे उसके अन्दर सामाजिकता का गुण विकसित होने लगता है क्योंकि सामाजिक सम्पर्क के कारण ही व्यक्ति समाज के रीति–रिवाज, प्रथा, सभ्यता, संस्कृति एवं सामाजिक गुणों के बारे में जानने लगता है। कालान्तर में वह इन्हीं सामाजिक गुणों में रच–बस जाता है और पूर्ण सामाजिक तत्वों का एक अभिन्न अंग बन जाता है। कवि भी उस सामाजिक समूह का एक अंग/सदस्य है। वह उन्हीं तथ्यों का अवलम्बन लेता है जो समूह व वातावरण के परिदृश्य में देखता है। अतः सामाजिक परिदृश्य से तात्पर्य किसी वस्तु, स्थल, घटना, कथा,–संवाद आदि का आँखों देखा वर्णन। उत्तररामचरितम् नाटक में कथावस्तु, स्थल, घटना, कथा,–संवाद इस ढंग से वर्णन हुआ है, मानों रामायण जैसी त्रेता–युग की घटना महाकवि के समकालीन ही घटित हुई हो।

शब्दकुंजी– उत्तररामचरितम्, सामाजिक–परिदृश्य, साहित्य समाज का दर्पण है, राजधर्म, नारी का स्थान आदि।

शोध–विवेचन

प्रयोजनं बिना मन्दोऽपि कार्येषु न प्रवर्तते– यह उक्ति यह इस वक्तव्य का स्पष्टीकरण है कि महाकवि भवभूति का उत्तररामचरितम् नाटक मात्र दर्शकों के मनोरंजन के लिए नहीं है, अपितु इसमें तद्युगीन सभ्यता व संस्कृति कैसी थी, लोगों का रहन–सहन, खान–पान कैसा था, संस्कार कैसे थे और वर्तमान युग में उनकी क्या प्रासंगिकता है, लोगों के लिए क्या ग्राह्य और क्या त्याज्य है? साथ ही साथ इस नाटक में धर्म–कर्म व विभिन्न सम्बन्धों (पिता–पुत्र, पति–पत्नी) आदि पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

* प्रवक्ता, संस्कृत, महात्मा गाँधी इण्टर कॉलेज, रायबरेली

वस्तुतः साहित्य समाज का दर्पण है, अर्थात् समाज में जो भी घटित होता है; साहित्य में उसे दिखाया जाता है। नाटक के अवलोकन से ज्ञात होता है कि तद्युगीन समाज में ब्राह्मणवाद फैला था। शुद्र तपस्वी शम्बूक की हत्या इसलिए हुई थी क्योंकि एक ब्राह्मण का पुत्र मर गया था और वे सब उसे जिन्दा करवाने राजा के पास आए थे।[1] उस समय के लोग खाने–पीने के बहुत शौकीन थे। यद्यपि महाकवि ने इस विषय पर ज्यादा चर्चा नहीं की, किन्तु तथ्यों पर दृष्टिपात किया जाए तो कुछ संकेत अवश्य प्राप्त होते हैं। ऋषि, मुनि लोग नीवार का सेवन करते थे।[2] माँस का भक्षण किया जाता था।[3] कोई–कोई ऋषि लोग सोम–रस[4] का पान भी करते थे। कुछ राजा लोग माँस का सेवन नहीं करते थे।[5] समाज का दूसरा वर्ग युद्ध–कला में प्रवीण था। उनके कवच पहनकर रथ सवार होकर चतुरंगिनी (हाँथी, घोड़ा, पैदल, रथ) सेनाओं के साथ समरभूमि में जाने का पता चलता है।[6] दिव्यास्त्रों के प्रयोग होने का पता चलता है। दिव्यास्त्रों में जृम्भकास्त्र, आग्नेय, वरुण, वायव्यास्त्र आदि प्रमुख अस्त्र थे।[7] कुलीन वर्ग के लोग जल–विहार[8] व वन–विहार[9] भी किया करते थे। राजकुल में दूत व गुप्तचर की व्यवस्था भी तत्कालीन युग में प्रचलन में थी।[10] राज्याभिषेक–महोत्सव मनाए जाने व मंगल–गीत गाए जाने का संकेत प्राप्त होता है।[11] रंगमंच पर अभिनय कला का प्रदर्शन अधिकाँशतः स्त्रियाँ ही करती थीं।[12] नाटक के प्रथम अंक में चित्र–कला[13] का भी दर्शन प्राप्त होता है।

समाज में नारियों का उचित सम्मान था। नारी पत्नी, माता, भगिनी के रूप में पूज्य थी। पत्नी के रूप में समाज में पति की अर्धांगिनी मानता था। उसके बिना कोई भी धार्मिक आयोजन सम्पन्न नही होते थे। यज्ञ में पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य मानी गयी है। कारण चाहे जो कुछ भी रहा हो लेकिन राम ने मर्यादा स्थापित करते हुए अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय जानकी की हिरण्यमयी प्रतिमा यज्ञ के समक्ष अपने वाम भाग में प्राण–प्रतिष्ठित करवाकर उनकी उपस्थिति में यज्ञ–कार्य को सम्पन्न किया।[14] महाकवि माघ भी इसके समर्थन में खड़े होते परिलक्षित होते हैं–

बद्धदर्भमयकांचिदामया वीक्षितानि यजमानजायया।
शुष्माणि प्रणय नादिसंस्कृते तैर्हवींषि जुह्वाम्बभूविरे।।[15]

इससे पूर्व कालिदास ने भी यज्ञ में पत्नी की उपस्थिति होना अनिवार्य बतलायी है।[16] नाटक के विहंगावलोकन से प्रतीत होता है कि पूर्वकाल की अपेक्षा कालान्तराल में नारी के प्रति लोगों का परिवर्तित होना शुरू हो गया था। पूर्वकाल के लोग– ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता''[17] की भावना रखने वाले थे किन्तु अब लोगों के धारणा में परिवर्तन होना शुरू हो गया है। अब समय के बदलने के साथ नारी पर विभिन्न प्रकार के आक्षेप लगना शुरू हो गए थे। एक सुन्दर स्त्री जो अपने की अनन्य भक्त है। जो मन, कर्म, वचन से सती[18] की भाँति तन से और मन से पूर्णतया पवित्र है, किन्तु जब भी वह किसी सार्वजनिक स्थान से गुजरती है अथवा किसी परपुरुष से बात करती है या फिर एकान्त में किसी से मिलती है तो लोग उसके चरित्र व व्यवहार पर शंका करने लगते हैं।[19] उत्तररामचरितम् के एक धोबी ने भी सीता के लंका निवास पर उन पर चारित्रिक आक्षेप लगाया था, फलतः राम ने सीता का परित्याग कर दिया था।[20] माताओं में पुत्र स्नेह कम नहीं था। वे उनके प्रति हमेशा सशंकित रहती थी।[21] सीता परित्याग के कारण क्षुभित दुःखित राजा जनक जब क्रोधित होकर राम और अयोध्यावासियों के प्रति चाप–शाप का प्रसंग उठा देते हैं तो भय से कम्पित महारानी कौशल्या देवी अरुन्धती से कह उठती हैं–

भगवति! परित्रायतम्! प्रसादय, कुपितं राजर्षिम्।[22]

पति–पत्नी के मध्य विश्वास, श्रद्धा एवं प्रेम की प्रगाढ़ता देखने को मिलता है। यद्यपि कालान्तर में कतिपय कारणों से उनके मध्य विछोह तो हो जाता है किन्तु उनके मध्य वह विश्वास, प्रेम, श्रद्धा, मृतप्राय नहीं होती है अपितु और तीव्र गति से भभक उठती है। जिससे नाटक में कभी कभी तो उन दोनों का जीवन ही स्थान–स्थान पर संशयात्मक हो उठता था।[23] नाटक के छठे अंक में लव व कुश के वार्तालाप को सुनकर राम करुण–क्रन्दन करने लगते हैं तब लव द्वारा राम के रूदन का कारण पूछने पर कुश बताता है–

बिना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपते?
प्रियानाशे कृत्सनं किल जगदरण्यं हि भवति।[24]

राजा के हाँथों में शासन की बागडोर रहती थी। राजा होने के बावजूद उसको नैतिक व मानवीय मूल्यों को अंगीकार करते हुए राजधर्म का पालन करना अनिवार्य था, क्योंकि तद्युगीन समय में यह मान्यता थी कि राजा

प्रजापति होता है। प्रजा का सुख–दुःख उसका अपना सुख–दुःख होता था। प्रजा ही उसके लिए ही सब कुछ थी। इसी करण से प्रजानुरंजन के निमित्त राजा राम को अपनी प्राणों से अधिक प्रिय जानकी का परित्याग करना पड़ा, क्योंकि राज–धर्म यह कहता है कि प्रजाजनों की नैतिक एवं मानवीय गुणों से युक्त सेवा हेतु अपने व्यक्तिगत सुख–सुविधा व स्वार्थ छोड़ देना चाहिए। सम्भवतः राजा राम भी प्रजाहित में उद्घोषणा करते हुए प्रतीत होते हैं–

स्नेह दया च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा।।[25]

राजा अपनी प्रजा को पुत्रवत् प्रेम करते थे। उन्हें हर प्रकार से सन्तुष्ट करना व खुश रखना उनका नैतिक कर्त्तव्य था। भवभूति ने क्षत्रिय धर्म के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला है। उनका कहना था कि–

न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषा विषहते।
स तस्य स्वो भाः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः।
मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः
किमाग्नेयो ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति।।[26]

एतत्पूर्व क्षत्रिय धर्म के विषय में शुक्रनीति में भी पूर्ण प्रकाश डाला है।[27] अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् राजा के दिग्विजयी होने का सूचक छोड़े गए घोड़े पर लिखी पंक्ति–लेख को पढ़कर लव क्षुभित हो उठता है।[28] चन्द्रकेतु व लव संवाद से क्षात्र–गुणों के उत्कर्ष का पता चलता है।[29]

यज्ञ, व्रत, अग्निहोत्र आदि धार्मिक कर्मकाण्ड भी किए जाते थे। जिसमें स्त्रियाँ, बच्चे, पुरुष, वृद्ध आदि सभी सहभाग करते थे। गुरुकुल अर्थात् आश्रम–व्यवस्था थी। जिसमें अध्ययन–अध्यापन कार्य किया जाता था। सहशिक्षा का प्रचलन था।[30] लिंग सम्बन्धी कोई भेदभाव नहीं था। तद्युगीन समय में दिखाई नहीं पड़ता था। हाँ, वाणी–संयम पर विशेष जोर दिया गया था, क्योंकि राक्षसी वाणी समस्त झगडों की जड़ होती है।[31] अतः सदैव मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि विद्वानों ने पवित्र, शान्त, कल्याणों की जननी, सत्य और प्रिय वाणी को कामधेनु कहा है–

कामं दुग्धे, विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं,
कीर्तिं सूते दुहृदो निष्प्रलाति।

शुद्धां शान्तां मातरं मंगलानां
धेनुं धीराः सुनृतां वाचमाहुः।।[32]

जिस प्रकार आधुनिक काल में गुरुजनों के प्रति शिष्यों के मध्य श्लील–अश्लील हास परिहास होता था। तद्युगीन समाज में इसी तरह हास–व्यंग्य के संकेत प्राप्त होते हैं।[33] निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि भवभूतिकालीन सामाजिक व्यवस्था बहुत सुदृढ़ थी। लोग अपने–अपने कर्त्तव्य–पालन संलग्न रहते थे। किसी का कहीं कोई हस्तक्षेप नहीं होता था और यदि कोई नियमों व मूल्यों का अतिक्रमण करता था तो उसके लिए दण्ड का प्रावधान था। किंचिद् घटनाओं को अपवाद समझकर यदि तिरोहित कर दिया जाए तो कहीं कोई विसंगति देखने को नहीं मिलती है। राजा और प्रजा में उचित तालमेल था। लोगों में भाईचारा था। युद्ध शान्ति के निमित्त ही किए जाते थे। वैदिक धर्म का पूर्णतया पालन होता था। लड़कियों को भी शिक्षा–दीक्षा दी जाती थी। उन्हें अपने वचन कहने का पूरा अधिकार प्राप्त था। यदि आलोचना ढंग से मूल्यांकन किया जाए तो तद्युगीन समाज बड़ी हंसी–खुशी से रहता हुआ दिखाई देता है जो वर्तमान युग के लिए एक प्रासंगिक विषय है।

सन्दर्भ

1. *उत्तररामचरितम् : डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2002, द्वितीय अंक, पृष्ठ–140*
2. *वही, श्लोक सं0– 1/25 व 4/1*
3. *वही, चतुर्थ अंक, पृष्ठ–298*
4. *वही, प्रथम अंक, पृष्ठ–29*
5. *वही, चतुर्थ अंक, पृष्ठ–300*
6. *वही, द्वितीय अंक, पृष्ठ–138*
7. *वही, पंचम अंक*
8. *वही, प्रथम अंक, पृष्ठ–80 व षष्ठम अंक, पृष्ठ–494*
9. *वही, प्रथम अंक, पृष्ठ–80*
10. *वही, प्रथम अंक, पृष्ठ–90*

11. वही, प्रथम अंक, पृष्ठ–8–10

12. वही, सप्तम अंक, पृष्ठ–506–532

13. वही, प्रथम अंक, पृष्ठ–38–76

14. द्रष्टव्य– द्वितीय अंक, पृष्ठ–136 व तृतीय अंक–284

15. शिशुपाल वधम् : पं0 हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003, श्लोक सं0–12/42, 12/43

16. कालिदास ग्रन्थावली : पं0 रामतेज शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009, श्लोक सं0–4/6

17. मनुस्मृति, श्लोक सं0–3/56

18. द्रष्टव्य– शिवमहापुराण व डॉ0 राजेश कुमार : शिवपुराण में सती का चरित्र, मंगलम् शोध पत्रिका, इलाहाबाद, ISSN NO. 0976-8149, वर्ष–03

19. यथा स्त्रीणां.............................. । द्रष्टव्य– उत्तररामचरितम्, श्लोक सं0–1/5

20. उत्तररामचरितम्, पृष्ठ–102, व टिप्पणी भाग।

21. उत्तररामचरितम्, श्लोक सं0–1/19

22. वही, चतुर्थ अंक, पृष्ठ–360

23. उत्तररामचरितम्, तृतीय अंक, पृष्ठ–178–292

24. वही, श्लोक सं0–6/30

25. वही, श्लोक सं0–1/12

26. वही, श्लोक सं0–6/14

27. द्रष्टव्य, शुक्रनीति।

28. उत्तररामचरितम्, चतुर्थ अंक।

29. उत्तररामचरितम्, पंचम अंक, व द्रष्टव्य– श्लोक सं0–6/16,18, 19

30. वह शिक्षा जिसमें बालक–बालिकाओं की शिक्षण–व्यवस्था पृथक होकर एक साथ होती है। व द्रष्टव्य–द्वितीय अंक, पृष्ठ–122

31. उत्तररामचरितम्, श्लोक सं0–5/29

32. उत्तररामचरितम्, श्लोक सं0–5/30

33. उत्तररामचरितम्, चतुर्थ अंक, पृष्ठ–296

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 113-117

शोषित वर्ग के हिमायती मुंशी प्रेमचंद का मर्तबा : कृषक–विमर्श के सन्दर्भ में

डॉ० आजेन्द्र प्रताप सिंह *

मुंशी प्रेमचंद भारत के एक ऐसे कथाकार हैं, जिन्होंने परतंत्र देश के तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलनों का साथ देकर ही अपने कर्तव्य का पालन नही किया, वरन् एक कलम का सिपाही बनकर उन तमाम राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक शोषणों से जमकर लड़ाई की जिन परिस्थितियों में हमारा देश, विदेशी और स्वदेशी दासता का शिकार था। यहाँ एक और ध्यान देने की बात है, कि इतिहास के आधुनिकतम अनुसंधानों ने यह प्रमाणित किया है कि भारत में किसानों का सर्वाधिक शोषण तत्कालीन अवध इलाके में था, जिसने प्रेमचंद जैसे संवेदनशील लेखक को किसानों का सबसे बड़ा वकील, सबसे बड़ा हिमायती बना दिया था।

मुंशी प्रेमचंद का लेखन वस्तुतः 32 वर्ष (1905 से 1936) की अनवरत संघर्षरत सेवा का काल है। आपका सम्पूर्ण साहित्य शासन के शोषण का एक ऐसा जीवंत चित्र प्रस्तुत करता है, जो मुंशी प्रेमचंद ने अवध के उस इलाके में देखा था। स्वयं उनकी स्थिति तो उस किसान से बद्तर थी, जो खेत जोतता था। भरी–पूरी सरकारी नौकरी को उन्होंने लात मार दी थी और स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े थे, तत्पश्चात जिस वृत्ति का सहारा लिया था, वह थी कलम की मजदूरी, जिसे वह 20–20 घंटों तक किया करते थे और बदले में पाते मात्र एक आत्मतोष। आपके अंतरंग मित्र शिवपूजन सहाय जी कहा करते थे ''कई बार तांगे वाले द्वारा एक–दो पैसे अधिक किराया माँगने के कारण अपना विशाल बजट फेल हो जाने पर हम दोनों साहित्यकार काशी में पैदल चला करते।'' प्रेमचंद जी के जीवन में संघर्ष साथी की तरह रहा। आपके साहित्य में निहित भारतीय कृषक संबंधी समस्त दृश्यावलियाँ आपके द्वारा स्वयं भोगे गये यथार्थ व उसके सन्निकट का चित्र है जिसमें राजनैतिक और मानसिक दासता से त्रस्त देश की कृषक–मजदूर जनता की आत्मा बोलती है। साहित्य में कृषक–जीवन के रस का यह निचोड़ ही प्रेमचंद को व आपकी

* असि० प्रोफेसर, हिंदी विभाग, फीरोज़ गांधी कालेज, रायबरेली

कृतियों का स्थायी बनाता है। मुंशी प्रेमचंद के मर्तबे के सन्दर्भ में विविध विद्धानों के मत यहाँ दृष्टव्य हैं :–

शांतिप्रिय द्विवेदी जी का मत – ''प्रेमचंद साहित्यिक शिव थे। उन्होंने भवसागर के विष को पीकर अपने ललाट पर प्रेम का चाँद और अपने मस्तक पर देश भक्ति की गंगा को धारणा किया था। मुसलमानों का चाँद और हिन्दुओं की गंगा उनके जैसे एकतावादी कलाकार को ही सोहती थी।''[1]

चतुरसेन शास्त्री जी का मत – ''एक बड़ी बात जो मैंने प्रेमचन्द में देखी, वह यह थी कि स्वयं उनमें कहीं अभाव का दर्द नही था, उनकी रचनाएं ही अभाव व्यंजक है। अभावग्रस्तों के वह बड़े हिमायती थे। मैंने उन्हें सदैव ही अभावग्रस्त पाया। पर अभाव ने कहीं उनकी चेतना पर चोट की है, यह मैंने नही देखा। ..... मेरा ख्याल है कि यदि उन्हें कहीं से बहुंत सा रुपया मिल भी जाता तो भी वह अमीर नही हो सकते थे और न उनके अभावों की पूर्ति हो सकती थी। अभाव ही उनकी सारी जमा पूँजी थी। उसी पर वह जीवन भर अपने साहित्य का कारोबार करते रहे।''

हरिभाउ उपाध्याय जी का मत – ''प्रेमचन्द जी के ग्रन्थों और पात्रों से सेवामय और सत् जीवन व्यतीत करने की अखण्ड और अमर प्रेरणा मिलती है, इसे मैं उनकी सबसे बड़ी देन मानता हूँ।''[2]

भवानी प्रसाद मिश्र जी का मत – ''जिस तरह हरिश्चन्द्र उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्थ में साहित्यकाश को चमका गये उसी तरह प्रेमचन्द बींसवी शताब्दी के पूर्वाद्ध को चमकाकर चले गये। दोनों ही चन्द्र हिन्दी साहित्यकाश की अमर निधियाँ हैं।'' (धीरेन्द्र वर्मा, हि0सा0 में प्रेमचन्द जी का स्थान)

''मेरी समझ में भारतवासी के निकट राजनिति और राजनीति के क्षेत्र में जो स्थान गाँधी का है और बना रहेगा, वैसा ही स्थान साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द का है और बना रहेगा।''[3]

ठाकुर श्रीनाथ सिंह का मत – ''मुंशी प्रेमचन्द्र की तीव्र आलोचना करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है।'' अब, जब वह नहीं हैं तब मैं सोचता हूँ कि कोष के उन कटु और पैने शब्दों का प्रयोग क्या आगे भी कभी संभव हो सकता है? कदाचित् ही कोई साहित्यिक हो जो कटु आलोचना से तिलमिला न उठे। प्रेमचन्द जी हिन्दी में ऐसे साहित्यकारों के अपवाद थे। साहित्य की आलोचना

विचार–सागर का मंथन ही है। इस मंथन से अमृत और विष दोनों निकलते है। अमृतपान में तो सभी हिस्सा बँटा सकते हैं पर विषपान के लिए शंकर का कंठ और धैर्य चाहिए। प्रमेचन्द्र जी हिन्दी के ऐसे ही स्वंयभू साहित्यकार थे।''

अमृतराय जी का मत – ''आज की तो सारी पीढी ही उनके हाथ की गढी हुई है पता नही इस आदमी के पास स्फूर्ति का ऐसा कौन–सा अक्षय स्रोत था, जो वह सबको हिन्दुस्तान के कोने–कोने में, उसका दान कर सकता था, और एक नया लेखक जिसने शायद दो–चार कहानियां लिखी होगी, प्रेमचन्द का खत जेब में डाले उसकी शराब में झूमता रहता था और साहित्य–सृष्टि के लिए अपने में अजस्र शक्ति का उद्रेक होता अनुभव करता था।''[4]

नगेन्द्र जी का मत – ''प्रेमचन्द ने अत्यन्त सजग होकर अपने साहित्य को युग–जीवन का माध्यम बनाया है।''[5]

जैनेन्द्र जी का मत – ''जैनेन्द्र जी ने प्रेमचन्द को शान्त नास्तिक संत कहा है।''[5]

रामवृक्ष बेनीपुरी जी का मत – ''प्रेमचन्द हमारे पीड़ित समाज मे एक नये वर्ग की अगवानी की सूचना।''[6]

जैनेन्द्र कुमार जी का मत – ''प्रेमचन्द को मैं साहित्य–निर्माता से भी अधिक देश–निर्माता मानता हूँ। उनकी साहित्य–रचना का स्रोत प्रेम हैः देश–प्रेम और मानव प्रेम। हिंदी साहित्य की परम्परा को वे कहाँ से कहां तक ले आये। रोमानी और तिलस्मी स्तर पर उन्होनें साहित्य को पाया और वहाँ से उठाकर सामाजिक समस्याओं के निदान और उपचार की सामर्थ्य की ऊँचाई तक उसे पहुचा दिया। भारतीय मानस के प्रतिनिधि प्रवक्ता के रूप में हम विश्व के समक्ष उन्हें रख सकते हैं। अपने उत्कर्ष और उपकर्ष में भारत के पूरे प्रतिबिम्ब को कृतित्व में प्राप्त कर सकते हैं। अतीत का गौरव गान उनमें नही है क्योंकि वर्तमान की भूमिका पर भावी के निर्माण की आस्था और चेष्टा है।''[7]

सुमित्रा नदंन पंत जी का मत – ''राजनीतिक स्तर पर जिस प्रकार गाँधीवाद ने भारत का पथ प्रदर्शन कर उसका मस्तक ऊंचा उठाया। उसी प्रकार साहित्य तथा संस्कृति की दृष्टि से प्रेमचन्द की साहित्य–चेतना ने जात–पांत, सम्प्रदाय के दल–दल मे खोई हुई, मध्य युगीन अंधविश्वासों के

अधंकार में भटकी हुई, अशिक्षा तथा दारिद्रय से ग्रस्त हमारी जनता की आकांक्षाओं तथा अभीत्साओं का हृदयपर्शी चित्रण कर, उनके सम्मुख नवीन भारतीयता का, नवीन राष्ट्रीयता का समुज्ज्वल आदर्श रख दिया है, जो निःसन्देह एक उन्नत मंगलमय प्रकाश स्तम्भ की तरह युगों तक उनको नवीन आलोक, क्षमता तथा संबल प्रदान करता रहेगा।''

शिवरानी देवी जी का मत – ''खुद तो सूखकर कांटा हो गये हैं और दूसरों की फिक्र में दीवाने है'' इस पर स्वयं मुंशी प्रेमचन्द का कहना था कि ''दीया होता है उसका काम है रोशनी करना, सो वह करता है। उससे किसी का लाभ होता है या हानि इससे उसको कोई बहस नही। उसमें जब तक तेल और बत्ती रहेगी, तब तक वह अपना काम करता रहेगा। जब तेल खत्म हो जायेगा, तब ठंड हो जायेगा।''[8]

निष्कर्ष

समग्रतः हम कह सकते है किः– मुंशी प्रेमचन्द एक निश्चित उद्‌देश्य और पक्के इरादे को लेकर साहित्य के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए थे और सतत उसकी साथर्क प्रतिपूर्ति करते रहे। आपकी आर्थिक विपन्नता ने एक ओर स्वयं व्यक्तित्व को कोमल और वरूणार्द्र बनाया था, तो दूसरी ओर आपकी जीवन दृष्टि को नैतिकतावादी–विवेकवादी एवं साहित्य दृष्टि को उपयोगितावादी और मूल्यवादी बनाया था। सचमुच ही आप साहित्य की बेदी के अमर शहीद सपूत है साहित्य के माध्यम से स्वराज्य संग्राम के आप अमर सेनानी बने रहें हैं। डॉ0 नगेन्द्र ने आपको शोषित वर्ग का सबसे बडा हिमायती, कहा है, इसके पीछे आपका एक लम्बा जीवन–दर्शन रहा है आप गरीबी में पैदा हुए, गरीबी बड़े हुऐ और अंत मे गरीबी की ही गोद मे चिरनिद्रा में सो गये। आपने गरीबी को अत्यन्त निकट से देखा था, गरीबी की भयंकर विभीषिका से कृषक–मजदूरों को तड़पते एवं छटपटाते देखा था, और देखा था गरीबी का वह ताण्डव नृत्य जिससे गाँव के गाँव नष्ट हो गये थे। आपने गरीबों की आहें स्वयं सुनी थी, आपने कृषक–मजदूरों का रोना–बिसूरना, भूख से तडपना–बिलखाना स्वंय देखा था। गरीब कृषक मजदूरों पर होने वाले अत्याचार अनाचार व अन्याय को स्वयं अपनी आंखो से देखा था। यही कारण है कि आपने अपने साहित्य के माध्यम से कृषकों–मजदूरों की उस गरीबी के विरूद्ध संघर्ष छेड़ा, क्रांति उत्पन्न की, विद्रोह के भाव पैदा किये और आंदोलन के लिए पृष्ठभूमि तैयार की, जिससे

गांव की झोपडी मे बेचारे किसान और मजदूर संतोष की सांस लेकर जी सकें, सुख से जीवन बिता सकें और नारकीय जीवन से छुटकारा प्राप्त करके आनंन्द और उल्लास प्राप्त कर सकें। प्रेमचन्द ने इन्हीं गरीब किसान मजदूरों के जीवन को अत्यन्त गइराई के साथ देखा, उनकी आशा–निराशा से गहन परिचय प्राप्त किया, उनकी लाभ–हानि को अच्छी तरह से निरखा–परखा, उनके सुख–दुख को भली भांति पहचाना, उनकी जय–पराजय पर तीक्ष्ण दृष्टि डाली और उनकी नैतिकता–अनैतिकता पर गहराई से चिन्तन मनन किया। मुंशी प्रेमचन्द्र की यही जीवन–दृष्टि उनके सम्पूर्ण साहित्य से विद्यमान है और आपने इसी जीवन–दर्शन का प्रचार–प्रसार करने के लिए विपुल मात्रा मे कथा–साहित्य की रचना की। निःसंदेह यह पंक्तियाँ आपके व्यक्तित्व–कृतित्व को रेखांकित करती हैं –

> "जब तलक यह गर्दिशें दौरे जहां मौजूद है
> नाम तेरा मिट नही सकता
> जहां से
> जब तलक
> यह जमीं मौजूद है, यह आसमां मौजूद है।।"

संदर्भ

1. *शांतिप्रिय द्विवेदी हंस के प्रेमचन्द स्मृति में प्रकाशित लेख से।*
2. *प्रेमचन्द की देन–(हरिभाउ उपाध्याय) पृ0सं0 802 से।*
3. *भवानी प्रसाद मिश्र– गगनांचल के प्रेमचन्द अंक के संपादकीय से।*
4. *आस्था के चरण– (नगेन्द्र) मे संकलित प्रेमचन्द निबंध से।*
5. *प्रेमचन्द एक कृती व्यक्तित्व– (जैनेन्द्र) पृ0 सं0 55–56 से।*
6. *हंस के प्रेमचन्द स्मृति अंक–मई 1937 में प्रकाशित प्रेमचन्द जिंदाबाद (जैनेन्द्र)– लेख से।*
7. *गगनांचल के प्रेमचन्द अंक मे प्रकाशित लेख प्रेमचन्द सांस्कृतिक युद्ध के शहीद (जैनेन्द्र कुमार) से*
8. *प्रेमचन्द घर मे – (शिवरानी देवी) पृ0सं0 227 से।*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 118-125

प्राचीन भारत में परिवार का उद्भव : एक अध्ययन

डॉ० दिवाकर त्रिपाठी *

प्राचीन भारत में परिवार के उद्भव को सुनिश्चित रूप से बता पाना कठिन है क्योंकि इसके कारणों पर गहरा आवरण पड़ा हुआ है। प्रायः सभी प्राचीन संख्याओं का उद्गम अनिश्चितता से तिमिराच्छादित रहा है। उनमें भी विशेषकर उन संस्थाओं का जो सहस्त्राब्दियों से चली आ रही है, उद्भव बता पाना दूरुह है। परिवार को भी एतादृश प्रवर्ग में रखा जा सकता है, जिसके उद्भव का प्रश्न एक गवेषणात्मक दृष्टि की अपेक्षा रखता है। संयुक्त परिवार का जो स्वरुप प्रतिध्वनित होता है, वह वैदिककाल से थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ चला आ रहा है। कालान्तर में, परिस्थितिजन्य वैचारिक आरोहों तथा अवरोहों द्वारा वह संगठित और विघटित होता रहा, किन्तु एतद्विषयक प्रथा कभी निर्मूल न हो सकी।

प्रारम्भ में, हिन्दू परिवार कब और कैसे अस्तित्त्व में आया, प्राचीन भारतीय वाङ्मय में इस सम्बन्ध में तरह–तरह की परिकल्पनाएँ परिलक्षित होती है। परिवार के मूल विवाह संख्या की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। डॉ. के.पी. जायसवाल अनन्त सदाशिव अल्तेकर टापा जयचन्द्र विद्यालंकार प्रकृति विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि भारत में भी विवाह संस्था का उद्भव कामचार से हुआ।[1] इस परिप्रेक्ष्य में कहा जाता है कि प्रारंभ से स्वच्छन्द कामचार की प्रवृत्ति थी। कालान्तर में उसे नियन्त्रित कर विवाह तथा परिवार की प्रथा को अस्तित्व में लाया गया। विश्व की अनेकानेक जातियों में विवाह बन्धन की शैथिल्यता रही है। मानव समाज के उद्विकास के प्रारम्भिक युग में तो इसका विशेष प्राबल्य था। महाभारत में उत्तर गुरुदेश के सम्बन्ध में इस प्रस्थिति का विवेचन किया गया है जिसमें उद्घाटित है कि पूर्व काल में स्त्रियाँ स्वतन्त्र थीं। अपनी इच्छा से बिहार करती थीं। कौमार्य अवस्था में ही अनेक पुरुषों से सम्पर्क करती थीं। घर के भीतर नहीं रहती थीं और व्यभिचार करती थी। उत्तर कुरुदेश में आज भी इसका प्रचलन है।[2] पाण्डु महोदय आगे कहते है कि एक बार उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने अपने पिता के समझ ही एक

---

* **सहायक आचार्य, इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, डॉ० राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ०प्र०)**

व्यक्ति द्वारा अपनी माता का हाथ पकड़कर ले जाते हुए देखा। यह देखकर श्वेतकेतु को अतीव ग्लानि हुई और उन्होंने यह व्यवस्था दी कि आज से जो स्त्री ऐसा व्यभिचार करेगी, वह पाप की भागिनी होगी?[3] दीर्घतमा की कथा से भी प्राचीन भारत में कामचार की संसूचना प्रस्फुटित होती है। दीर्घतमा उतथ्य ऋषि का पुत्र था और उसकी स्त्री का नाम प्रद्वेषी था। उसने प्रद्वेषी से अनेक सन्तानें उत्पन्न की। कालान्तर में, वह कामचार करने लगा। दीर्घतमा के एतादृश आचरण को देखकर ऋषि उतथ्य क्रोधित हो उठे। उन्होंने घोषणा की कि दीर्घतमा ने मर्यादा का उल्लंघन किया है तथा वह आश्रम में रहने के योग्य नहीं है। एतदर्थ इस पापात्मा को यहाँ से बहिष्कृत किया जाता है। रुष्ट होकर दीर्घतमा ने स्त्री एवं पुरुष द्वय के लिए एक ही विवाह की मर्यादा प्रतिस्थापित की।[4] संक्षेपतः दीर्घतमा की इस व्यवस्था के पूर्व समाजीय धरातल पर विवाह तथा परिवार की कोई अवधारणा नहीं की। महाभारत के कर्णपर्व में अभिव्यन्जित है कि मद्र देश की स्त्रियाँ स्वेच्छानुसार पुरुषों से मिलती हैं, शराब के नशे में मस्त होकर, कपड़े फेंक कर नाचती हैं, मैथुन में किसी प्रकार का बन्धन नहीं रखती, जिसके पास चाहती है, चली जाती है, इत्यादि।[5] इससे यह स्पष्टतः प्रतिध्वनित होता है कि उस प्रक्षेत्र में विवाह की कोई मर्यादा नहीं थी। एतादृश विवर्णन वाहीक (पंजाब) की स्त्रियों के विषय में भी प्रस्फुटित है। कर्ण महोदय के उद्धरणों से दृष्टिगोचर होता है कि एक सती स्त्री को वाहीक लुटेरों ने उसके पति से छीनकर उसका सतीत्व विनष्ट कर दिया। फलतः उस सती ने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया। यही कारण है कि वहाँ की सभी स्त्रियाँ वेश्या हो गयी थी।[6] उक्त प्रमाणों के अतिरिक्त, महाभारत में कतिपय और भी स्थल दृश्यमान है जहाँ स्त्रियों को कामाचारिणी कहा गया है।[7] गौतम महोदय ने कुरुदेश की स्त्रियों को इच्छानुसार विचरण करने वाली कहा है। दक्षिणा दिशा की माहिष्मती नगर की स्त्रियों को स्वच्छन्द विचरण करने वाली कहा गया है।[8] महाभारत के उपर्युक्त विवरणों को प्रामाणिक मानने के पूर्व उन पर गाम्भीर्यपूर्वक चिन्तन मनन की आवश्यकता है। यद्यपि ऊपर से देखने पर कतिपय स्थल कामाचार की प्रस्थिति का संकेत देते हैं, परन्तु एतद्विषयक स्थलों के पूर्वा पर दृष्टिपात करने से कामाचार की परिपुष्टि नहीं होती। कर्णपर्व में, शल्य ने कर्ण का सारथि बनकर अपशकुन होने पर उसकी तीव्र निन्दा की। एतादृश अपना का बदला लेने के लिए कर्ण ने शल्य की तो निन्दा की ही, उसके द्वारा शासित वाहीक देश की भी कटुआलोचना की। कर्ण कहता है–

वाहीक देश पृथ्वी का कूड़ा है। संसार की सभी बुराइयाँ इसी देश में है।[9] इसी प्रसंग में ही, कर्ण ने वहाँ की स्त्रियों में कामाचार–प्रचलन का भी प्रस्फुटन किया है।[10]

इसी प्रकार पाण्डु तथा दीर्घतमा वाले स्थलों की भी यही प्रस्थिति है। पाण्डु ने अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए श्वेतकेतु की कथा सुनायी है। दृष्टव्य है कि पाण्डु शाप के कारण सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ थे। उन्होंने कुन्ती को नियोग द्वारा सन्तान प्राप्त करने का सुझाव दिया। कुन्ती ऐसा करने के लिए तैयार नहीं थी। अपने पातिव्रत धर्म के अनुसमर्थन में उसने पाण्डु को भद्रा की कथा सुनाई और अनुरोध किया कि जिस प्रकार भद्रा ने अपने पति व्युषिताश्व के मृत शरीर से लिपटकर अलौकिक विधि से सन्तान प्राप्त किया था, उसी प्रकार वह भी उससे सन्तान उत्पन्न करें।[11] परन्तु ऐसा करने में पाण्डु असमर्थ थे। अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए सुनायी गयी कथा को परिवार के उद्गम का आधार मानना समुचित नहीं प्रतीत होता।

उल्लेखनीय है कि महाभारतकार अपने कमजोर पक्ष को सशक्त बनाने के लिए कपोलकल्पित दृष्टान्त प्रस्तुत करने तथा कथानक रचने में काफी प्रवीण दिखाई देता है। द्रोपदी तथा पन्च पाण्डवों के विवाह को धर्मानुकूल प्रमाणित करने के लिए उसने जटिला और वार्क्षी का कल्पना प्रसूत दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं, वस्तुओं का उद्भव बताने मे महाभारत का लेखक अतीव पटु प्रतीत होता है।

दीर्घतमा की कथा भी कामाचार की प्रामाणिकता का आधार नहीं बन सकती हैं। कथानक के अनुसार दीर्घतमा के गोधर्म पालन करने पर ऋषि ने उसे मर्यादा भंग करने वाला कहकर आश्रम में रहने योग्य नहीं समझा। कहानी के सूत्रों से यह प्रतिध्वनित होता है कि उसने ही विवाह की मर्यादा की प्रतिस्थापना की थी। प्रश्न यह है कि दीर्घतमा के पहले विवाह की कोई मर्यादा थी ही नहीं, तो ऋषियों ने उसे मर्यादा भंग करने वाला क्यों कहा? साल ही उसकी पत्नी का नाराज होना भी औचित्यपूर्ण नहीं प्रतीत होता।

धर्मशास्त्रों के प्रणेता डॉ. पी.वी. काणे महोदय ने महाभारत के एतद्विषयक उद्धरणों को सामाजिक व्यवस्था का मुख्य आधार न मानते हुए यह मन्तव्य अभिव्यक्त किया है कि भारत में विवाद बन्धन की शैथिल्यता कभी थी ही नहीं। वैदिक वाङ्मय से अभिव्यन्जित होता है कि प्रारम्भ से ही उच्च आदर्शों

के परिप्रेक्ष्य में विवाह प्रथा प्रचलन में थी, जिसके द्वारा संयुक्त परिवार का गठन होता था। काणे महोदय ने उत्तर कुरूदेश में उक्त स्वच्छन्दता एवं शैथिल्यता को पूर्णतः कपोलकल्पित बताया है?[12] डॉ. अनन्त सदाशिव अल्तेकर महोदय ने भी इनका अनुसमर्थन करते हुए लिखा है कि भारत में विवाह बंधन की शैथिल्यता कभी नहीं रहा है। उत्तर कुरु नामक देश भी पूर्णरूपेण कल्पित प्रतीत होता है। भूगोल मे इसकी प्रस्थिति कहीं दृष्टिगत नहीं होती। माहिष्मती नगरी में अनाचार का जो विवर्णन प्रस्फुटित हुआ है, वह पाण्डव सहदेव के अल्पकालिक सैन्य अभियान के दौरान देखे गये समाज का वर्णन अनुज्ञात होता है।[13] श्री हरिदत्त वेदालंकार महोदय ने भी महाभारत द्वारा प्रतिपादित कामाचार की मान्यता का विखण्डन किया है तथा उसे अतर्क संगत एवं अनैतिहासिक कहा है। वे आगे कहते हैं कि ये मात्र किम्बदन्तियों पर आधारित हैं तथा किम्बदन्तियाँ ठोस ऐतिहासिक निष्कर्षों का आधार नही बन सकतीं।[14] पाश्चात्य विचारकों ने भी एतादृश कामाचार से परिवार की उत्पत्ति के सिद्धान्त का खण्डन किया है। इसका सर्वप्रथम खण्डन डार्विन महोदय ने किया। तत्पश्चात डॉ. लैसन और बेस्टर मार्क महोदय ने इस खण्डन को विस्तारशः प्रतिपादित किया तथा आगे चलकर लैंग, ग्रास तथा काले महोदय प्रभृति ने भी वेस्टरमार्क के विचारों का अनुसमर्थन किया। वेस्टरमार्क महोदय महाभारत के विवेचनों को प्राचीन समय में प्रचलित सामाजिक अवस्था का घोतक मानते है। उनके अनुसार महाभारत की कहानी भारत के इण्डो–आर्यन लोगों में आचरण की शैथिल्यता की संसूचना दे सकती है, क्योंकि उनमें बहुपति विवाह प्रचलित था।[15] वेस्टरमार्क महोदय ने प्राचीन लेखकों द्वारा उद्धृत विवरणों को निराधार माना है तथा विस्तृत समीक्षा के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन प्रभावों में से किसी में विवाह बन्धन का अभाव दृष्टिगोचर नहीं होता।[16] विश्वसनीय प्रमाणों के अभाव में यह कहना अतीव क्लिष्ट है कि प्राचीन–काल में आचार शैथिल्य एक साधारण नियम था।[17] डॉ. अनन्त सदाशिव अल्तेकर महोदय ने भी अन्ततः इस मत को स्वीकार करते हुए उद्घाटित किया है कि भारत में प्राचीन समय में विवाह बन्धन के अभाव का होना असम्भव नहीं हो सकता। महाभारत के उद्धरणों से नैतिक आचरण की शैथिल्यता का परिचय मिलता है।[18]

वैदिक वाङ्मय, जो महाभारत से काफी प्राचीन है, में किसी भी स्थल पर स्वच्छन्द कामाचार का कोई संकेत दृष्टिगोचर नहीं होता। इतना अवश्य का कि युवक–युवतियाँ अपने जीवन–साथी के चयन के लिए स्वतन्त्र थी।

विवाहोपरान्त स्त्रियाँ स्वपतिगृह जाकर गृहपत्नी का कार्य सम्पादित करती हुई परिवार का निर्माण करती थी। अथर्ववेद में पुरोहित विवाह के अवसर नवपरिणीता वधू को आशीर्वाद देता हुआ कहता है, ''पितृगृह से मुक्त हो, पतिगृह जाओ। वहाँ पुत्रवती और सौभाग्यवती हो वो।''[19] इतना ही नहीं, ब्राह्मण ग्रन्थ, सूत्रग्रन्थ तथा स्मृतियाँ भी कहीं भी स्वच्छन्द्र कामाचार का उल्लेख प्रस्तुत नहीं करती। एतादृश तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में, स्वच्छन्द कामाचार से हिन्दू परिवार के उद्‌गम को बात स्वीकार नहीं की जा सकती। इसकी परिपुष्टि जर्मन विद्वान मेयर महोदय के इस वक्तव्य से भी ध्वनित होती है कि प्राचीन आर्यों के वैभिन्य देशों में फैलने के पूर्व ही सुव्यवस्थित पारिवारिक जीवन का अभ्युदय हो चुका था। वेदों में मैथुन स्वातन्त्रय का कहीं प्रस्फुटन प्रज्ञापित नहीं हुआ है। अस्तु हम अतीत के धूसरतम उषाकाल में इतनी लम्बी छलांग लगाने के लिए ऐसे कथानकों पर कभी विश्वास नहीं कर सकते।[20] परिवार की उत्पत्ति का द्वितीयतः दृष्टिकोण जीवशास्त्रीय उद्‌भव का है। प्रायः परिवार और स्त्री पुरुष के सम्बंधों के स्थायित्व के मूल में सुरक्षा की भावना विद्यमान रही है। गर्भावस्था में स्त्री की असहायता, नवजात शिशु के पालन–पोषण और निश्चित वय तक आश्रय की अनिवार्यता आदि स्त्री–पुरुष को एक साथ संयुक्त कर परिवार में रहने के लिए निवेश करते हैं। इस तरह की भावना मनुष्य में ही नहीं, अपितु पशु–पक्षियों में भी द्रष्टव्य है। यद्यपि कतिपय पशु मैथुनोपरान्त बिल्कुल विलग हो जाते हैं, किन्तु बन्दरों, गोरिल्ला तथा चिम्मानी मे ऐसा नहीं दृष्टिगत होता। वे परिवार बनाकर रहते हैं। विशेष रूप से, स्तनपायी जीवों में यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। इस प्रकार माता–पिता तथा बच्चों का परिवार विरासत मे बहुत पहले से चला आ रहा है।

परिवार के उद्‌भव के मूल में कतिपय और भी ऐसे तथ्य है, जो इसमें सहायक सिद्ध हुए हैं। प्रकृतितः मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। एकाकी जीवन व्यतीत करना उसके लिए बिल्कुल असम्भव सा है। बृहदारव्यक उपनिषद में प्रतिबिम्बित है कि जब प्रारम्भ में पुरूषाकार आत्मा ने अपने को अकेले रमण में असमर्थ पाया तो उसने इसी आत्मा को द्वय रूपों में परिवर्तित किया। इस समय से पति–पत्नी हुए।[21] वैदिक युग से ही परिवार संस्था को अतीव गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। ऋग्वेद में अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि वह पुत्र को अमृतत्व प्रदान करें।[22] इतना ही नहीं, शतपथ ब्राह्मण में अभिव्यन्जित है कि मनुष्य तब तक अधूरा माना जाता था जब तक वह विवाह करके सन्तानोत्पत्ति न कर ले।[23] विवाह और परिवार माननजीवन में धर्म के अभिन्न अंग रहे हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों के समय से ही यह माना जाने लगा था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जन्म के साथ त्रय ऋण–''देवऋण'', ''ऋषि ऋण'' तथा ''पितृ ऋण'' लेकर उत्पन्न होता है।[24] बौधायन धर्मसूत्र में इन ऋणों से मुक्त होने की व्यवस्था दी गयी है। उसके अनुसार ब्रह्मचर्य से ऋषि ऋण, यज्ञौ से देव ऋण तथा सन्तानोत्पत्ति से पितृ ऋण से छुटकारा मिलता है।[25] ऋषि ऋण से अवमुक्त होने के लिए अध्ययन द्वारा, अध्यापन के द्वारा वैदिक परम्परा को अविच्छिन्न बनाये रखना आवश्यक था।[26] उत्तर वैदिक युग में शास्त्रकारों ने गृहस्थाश्रम को अत्यधिक महत्व प्रदान किया। ऐतरेय ब्राह्मण में एक स्थल पर सन्यास की निन्दा करते हुए गृहस्थाश्रम की प्रशंसा की गयी है तथा पुत्रोत्पादन को ही परमधर्म बताया गया है।[27] मनु का विचार है कि जैसे सभी जीव–जन्तु वायु के सहारे जीवित रहते है वैसे ही सभी प्राणी गृहस्थाश्रम से जीवन धारण करते हैं। जैसे सब नदी–नद समुद्र में जाकर स्थिर होते हैं, वैसे तीनों आश्रम गृहस्थ में ही प्रस्थिति प्राप्त करते है। उसी की सहायता से जीवित है। अन्य आश्रमों का भरण–पोषण करने के कारण यह ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ आश्रम है।[28] विष्णु, वशिष्ठ, शंख तथा दक्ष स्मृति में भी इसी प्रकार की धारणा का प्रतिपादन किया गया है।[29] व्यास स्मृति तो गृहस्थाश्रम की प्रशंसा करते थकती ही नहीं है।[30] वह इस आश्रम को सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादित करती हुई कहती है कि गृहस्थामाम धर्म का पालन करने वाले व्यक्ति को घर में ही कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, हरिद्वार और केदार तीर्थ मिल जाते है।[31]महाभारत में गृहस्थाश्रम को अधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया गया है। शान्ति पर्व में उद्घाटित है कि जैसे माता के सहारे सभी प्राणी जीवित रहते है, वैसे अन्य आश्रमों की प्रस्थिति गृहस्थाश्रम में है। महाभारत ने जरूत्कारू और कुणिगर्ग कथानकों का प्रस्फुटन करके विवाह की अनिवार्यता का प्रतिस्थापन किया है। जरुत्कारू एक ऋषि थे, जिन्होंने विवाह नहीं किया था। अपने पितरो की दुर्दशा देखकर विवश होकर उन्हें विवाह करना पड़ा।[32] आजीवन तपस्या करने वाली कुणिगर्ग पुत्री ने वृद्धत्व में तपस्या के बल पर स्वर्गलोक जाने की इच्छा की देवर्षि नारद ने उसे बताया कि अविवाहिताओं को स्वर्ग मिलना सम्भव नहीं हैं। अतएव उसने श्रृंगवान को अपनी तपस्या का आधा भाग देकर विवाह किया। गृहस्थाश्रम स्वीकार करने के बाद ही वह स्वर्गलोक जा सकी।[33] उपरोक्त विवरण से प्रतिध्वनित होता है कि हिन्दू समाज में विवाह करके गृहस्थाश्रम जीवन व्यतीत करना अनिवार्य था। इस प्रकार मानव की सामाजिकता तथा अकेले नरहने की उसकी आन्तरिक प्रवृत्ति ने परिवार के गठन की ओर उत्प्रेरित किया। परिवार में मनुष्य अपने सामाजिक और धार्मिक

कर्तव्यों को मनोनिवेशपूर्वक करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर परिवार के सदस्यों के लिए त्याग, बलिदान और उत्सर्ग भी करता है।

संदर्भ

1. *जायसवाल, के० पी०, मनु एण्ड याज्ञवल्क्य, पृ० 224–25*
2. *महाभारत, आदिपर्व, 122, 2–21*
3. *महाभारत, आदिपर्व, 122,10,12,16,17*
4. *वही, आदिपर्व, 104, 43–48*
5. *महाभारत, कर्ण पर्व, 40, 35–36*
6. *वही, कर्णपर्व, 45–11–12*
7. *वही, अनुशासनपर्व, 102.26*
8. *वही, सभापर्व, 31.38*
9. *महाभारत, कर्णपर्व, 45.23*
10. *वर्तमान युग में भी प्रायः यह देखा जाता है कि जब दो लोगों अपना प्रवर्गो में झगड़ा होता है तो एक दूसरे के ऊपर आरोप प्रत्यारोप करते हैं। उन्हें अपमानजनक शब्द कहते है। क्या गालियाँ देते हैं? परन्तु इसका यह अर्थ कोई नहीं लगाता कि उसने ये कुकृत्य किये हैं।*
11. *महाभारत, आदिपर्व, 121.28*
12. *काणे, पी०वी० – हिस्दी ऑफ धर्मशास्त्र, वाल्यूम 14 भाग 1, पृ० 428*
13. *अल्तेकर, अनन्त सदाशिव–दि पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० 34–35*
14. *सिंह, डॉ. ओ.पी.– प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं वैधानिक संस्थाएँ, पृ० 37*
15. *वेस्टरमार्क – फ्यूचर ऑफ मैरेज, वाल्यूम 1, प० 106*
16. *वेस्टरमार्क– फ्यूचर ऑफ मैरेज इन वेस्टर्न सिविलाइजेशन, पृ० 16*
17. *वेस्टरमार्क– हिस्ट्री ऑफ ह्यूमन मैरेज, वाल्यूम 1, पृ० 111*
18. *Altaker, The Position of women in Hindu civilization. P.35.*
19. *अथर्ववेद 19.1.18*
20. *मेयर, सेक्सुअल लाइफ इन एन्शियन्ट इंडिया, पृ० 15 तथा 125 को पाद टिप्पणी*
21. *वृहदारण्यक उपनिषद 1.4.1–3*
22. *ऋग्वेद, 2.4.10*

23. शतपथ ब्राह्मण, 5.2–1.10.8.7.2.3, तैत्तिरीय संहिता, 61.85, ऐतरेय ब्राह्मण, 1.2.5
24. तैत्तिरीय संहिता 6–3.10.5
25. बौधायन धर्मसूत्र, 2.97–8
26. पाण्डेय, गोविन्द–चन्द्र–भारतीय परम्परा के मूल स्वर, पृ. 69
27. ऐतरेय ब्राह्मण. 33.11
28. मनु. 3.77 तथा 6.90
29. विष्णुस्मृति 59.27, वरीष्ठ स्मृति, 8.15, शंखस्मृति 5/5–6, दक्ष स्मृति, 2. 45–48
30. व्यास स्मृति 4.2–4, 13–14
31. सिंह, डॉ. केशव प्रसाद सिंह–प्राचीन भारत में साम्पत्तिक उत्तराधिकार और विभाजन सम्बन्धी कानून, पृ० 23
32. महाभारत, आदिपर्व 13 तथा 45
33. महाभारत, शल्यपर्व, 52
34. मिश्र, डॉ. जयशंकर– प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ० 307–08

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 126-134

मध्यगंगा के मैदान की मध्य पाषाणयुगीन संस्कृति : एक विवेचन

डॉ० आनन्द गुप्ता *

विन्ध्य क्षेत्र के उत्तर एवं हिमालय पर्वत के दक्षिण का भूभाग गंगाघाटी के नाम से जाना जाता है। इसका निर्माण गंगा, यमुना एवं उसकी सहायक नदियों द्वारा लाई गयी मिट्टी द्वारा हुआ है। पुरातात्विक अनुसंधानों के आलोक में इस क्षेत्र की महत्ता को अधिक प्रासंगिक रूप से उद्घाटित किया गया है। प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि भारतीय संस्कृति के निर्माण में गंगाघाटी की उल्लेखनीय भूमिका रही है। विशिष्ट भौगौलिक संरचना के कारण यह भूभाग आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध रहा है। सर मार्टिमर ह्वीलर की यह उक्ति अत्यधिक समीचीन है कि यदि सिन्धु ने इस देश को नाम दिया है तो गंगा ने उसे विश्वास प्रदान किया है।[1] संस्कृति के निर्माण में गंगाघाटी की उल्लेखनीय भूमिका रही है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से गंगाघाटी को तीन महत्वपूर्ण भौगोलिक इकाइयों में विभक्त किया गया है। यथा– उच्च–गंगाघाटी, मध्य–गंगाघाटी तथा निम्न–गंगाघाटी।[2] प्रस्तुत प्रसंग में उत्तर प्रदेश में मध्य गंगाघाटी में किए गए पुरातात्विक अनुसंघानों की ही अभिव्यक्ति दी गयी है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के प्रो0 आर0 के0 वर्मा, प्रो0 वी0 डी0 मिश्रा, पो0 जे0 एन0 पाण्डे, प्रो0 जे0 एन0 पाल तथा डॉ0 एम0 सी0 गुप्ता द्वारा इस क्षेत्र में व्यापक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण कार्य किया गया। इस प्रकार स्व0 प्रो0 जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में किए गए स्तुत्य प्रयासों के परिणाम स्वरूप सर्वप्रथम गंगा घाटी में पाषाणयुगीन मानव के अस्तित्व को खोजा गया। जैसा कि सुविदित है कि गंगाघाटी ने भारतीय संस्कृति के निर्माण में प्रारम्भिक काल से ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसी क्रम में इस क्षेत्र को सर्वप्रथम मध्य पाषाण युगीन आखेटकों एवं अन्न संग्रहकों ने आबाद किया था। यह महत्वपूर्ण घटना प्रारम्भिक प्रातिनूतन काल के समय की है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के

* सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, केवलापती पी.जी. कॉलेज, प्रयागराज

पुरातत्वविदों द्वारा बीसवीं शताब्दी के सातवें–आठवें दशक में मध्य गंगाघाटी में मध्यपाषाण युगीन संस्कृति के अन्वेषणों ने भारत के प्रागैतिहासिक अध्ययन में महत्वपूर्ण अध्याय का सूत्रपात किया है। इन सर्वेक्षणों एवं अनुसंधानों के परिणामस्वरूप गंगाघाटी में पहली बार मानव अधिवास से सम्बन्धित विविध पक्षों पर प्रकाश डाला जा सका।[3] इस क्षेत्र के इलाहाबाद, वाराणसी, संतरविदास नगर, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, जौनपुर इत्यादि जनपदों से बहुसंख्यक मध्य पाषाणयुगीन पुरास्थलों की खोज की गई है। ये सभी पुरास्थल गंगा एवं गोमती नदी के मध्यवर्ती क्षेत्र में स्थित हैं। इन खोजों के फलस्वरूप गंगाघाटी के इतिहास को न केवल भारत के अपितु विश्व के प्रागैतिहासिक मानचित्र पर रेखांकित किया जा सका है। लगभग 11000 वर्ग किमी के क्षेत्र में किए गए सर्वक्षणों से मध्यपाषाण कालीन मानव के गंगा घाटी में पदार्पण के साक्ष्य प्रकाश में आए हैं। इसके आधार पर गंगाघाटी की संस्कृति के आदिम चरण को उद्घाटित किया जा सका है।

भूतात्विक जमावों की दृष्टि से गंगा घाटी की मिट्टी को दो प्रमुख वर्गों में रखा गया है– भांगर तथा खादर। भांगर मिट्टी का जमाव प्राचीन है। इसके ऊपरी स्तर का सम्बन्ध मध्य पाषाण युगीन मानव से है। खादर में वानस्पतिक तत्वों की प्रधानता के कारण मध्यपाषाण युगीन संस्कृति के निर्माण में इसका विशेष योगदान नहीं है। इन भूतात्विक जमावों का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। गंगा नदी के कतिपय पुराने करारों के अनुभागों में चार भूतात्विक जमाव प्राप्त होते हैं। सबसे नीचे पीली कंकरीली मिट्टी का जमाव है जिसके ऊपर पोतनी मिट्टी का जमाव है। सबसे अन्त में लगभग दो मीटर मोटा बलुई मिट्टी का जमाव प्राप्त होता है। इसी जमाव में ऊपर से नीचे तक पाषाण निर्मित उपकरण प्राप्त होते हैं। इसी मोटे जमाव से गंगाघाटी में पाषाण युगीन मानव की दीर्घकालीन उपस्थिति का प्रमाण प्राप्त होता है।[4] पुरातात्विक अनुसंधानों के फलस्वरूप मध्यपाषाण कालीन संस्कृति से सम्बन्धित लगभग दो सौ पुरास्थल प्रकाश में आ चुके हैं। मध्य पाषाण कालीन उपकरणों के आकार प्रकार तथा निर्माण में तकनीक की विविधता के आधार पर उन्हें तीन विविध चरणों में विभाजित किया गया है– अनुँपुरा–पाषाणकाल, प्रारम्भिक मध्य पाषाण काल तथा परवर्ती मध्य पाषाण काल। अनुँपुरा–पाषाण काल उच्चपूर्व पाषाण काल तथा मध्य पाषाणकाल के मध्य संक्रमण कालीन संस्कृति का परिचायक है। गंगाघाटी की यह प्राचीनतम संस्कृति है। इसके प्रमाण स्वरूप पांच पुरास्थल

प्रकाश में आए हैं– अहिरी (इलाहाबाद), गढ़वा (वाराणसी), सुलेमानपर्वतपुर, मन्दाह तथा साल्हीपुर (प्रतापगढ़)। इस संस्कृति से सम्बन्धित उपकरण जिस धरातल से प्राप्त होते हैं वह लोहे तथा कंकड़ के पिण्ड से युक्त कड़ी पिंडोरी मिट्टी का जमाव है। भू–तात्विक दृष्टि से यह धरातल गंगा के कछार का तीसरा जमाव पोतनी मिट्टी के ऊपरी धरातल है जिस पर सर्वप्रथम पाषाण कालीन मानव ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया। इस संस्कृति के स्थलों से पूर्णनिर्मित पाषाण–उपकरणों के साथ–साथ निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में उपकरण क्रोड तथा फलक इत्यादि प्राप्त हुए हैं। प्रतीत होता है कि इन उपकरणों का निर्माण स्थलों पर किया गया है। पाषाण कालीन मानव विन्ध्य क्षेत्र से गंगाघाटी में पाषाण पिण्ड लेकर आया था। यहीं पर उपकरण का निर्माण करता था तथा आखेटक का जीवन–यापन करता था। जलवायु और पर्यावरण में परिवर्तन के अतिरिक्त जनसंख्या में वृद्धि भी इस क्षेत्र में आगमन का प्रमुख कारण रहा होगा। अभी तक इस चरण की संस्कृति से सम्बन्धित किसी भी स्थल का उत्खनन नहीं हुआ है लेकिन इन स्थलों से समानान्तर बाहु वाले ब्लेड, भूथड़े ब्लेड, तक्षणी नोक, खुरचनी, अर्द्धचन्द्र इत्यादि उपकरण तथा क्रोड एवं फलक प्राप्त हुए हैं। सभी उपकरण चर्ट–प्रस्तर पर बने हे हैं। गंगा घाटी में मिलने वाली इस प्राचीन संस्कृति में भारत में विन्ध्य क्षेत्र से गंगा घाटी में ऋतुनिष्ठ प्रबजन का सर्वप्रथम प्रमाण प्रस्तुत किया है।

मध्यपाषाण कालीन संस्कृति के विकास की एक अवस्था में कतिपय ज्यामितीय उपकरणों का निर्माण किया गया है। ये उपकरण त्रिभुज और समलम्ब चतुर्भुत आकार के हैं। इस प्रकार गंगाघाटी की मध्यपाषाण कालीन संस्कृति के दो चरणों में विभक्त कर सकते हैं– अज्यामितीय लघुपाषाण उपकरण वाली संस्कृति तथा ज्यामितीय लघुपाषाण उपकरण वाली संस्कृति प्रथम का सम्बन्ध आरम्भिक पाषाण काल से तथा दूसरे का परवर्ती मध्य पाषाण कालीन संस्कृति से है। आरम्भिक मध्य पाषाण के पुरास्थलों की संख्या 172 है। इस काल के उपकरणों के आकार प्रकार में अन्तर दिखायी पड़ता है। इनका आकार छोटा होने के कारण इन्हें पुरातत्व जगत में 'लघुपाषाण उपकरण' कहा जाता है। इस संस्कृति से सम्बन्धित पुरास्थलों से अज्यामितीय लघुपाषाण उपकरण मिले हैं। समानान्तर एवं कुण्ठित पार्श्वयुक्त ब्लेड, बेधक, खुरचनी, अर्द्धचन्द्र इत्यादि प्रमुख उपरण हैं। इसके पहले सभी उपकरण चर्ट प्रस्तर पर ही बनाए जाते थे परन्तु अब उपकरणों के निर्माण में चार्ट के अतिरिक्त चौल्सीडली,

अगेट, कार्नेलियन, जैस्पर, क्वार्ट्स इत्यादि का भी प्रयोग होने लगा था। इस काल के उपकरण पूर्ववर्ती काल की तुलना में छोटे आकार के हैं।

परवर्ती मध्यपाषाण काल के पुरास्थलों में सरायनहरराय, महदहा, दमदमा (प्रतापगढ़), बिछिया (इलाहाबाद), लोहिना, नगोली, पुरागंभीरशाह (जौनपुर) इत्यादि उल्लेखनीय हैं। अनेक प्रकार के लघुपाषाण उपकरणों के अतिरिक्त त्रिभुज एवं समलम्बचतुर्भुज आदि ज्यामितीय उपकरण प्राप्त हुए हैं। इनका निर्माण चर्ट, चल्सीडनी, अगेट, कार्नेलियन, जैस्पर इत्यादि बहुमूल्य पत्थरों पर किया गया है। सर्वेक्षणों के अतिरिक्त प्रतापगढ़ जनपद में स्थित सरायनहरराय, महदहा तथा दमदमा (वारीकलॉ) नामक पुरास्थलों पर उत्खनन किया गया है जिसके परिणामस्वरूप गंगाघाटी के मध्यपाषाणिक संस्कृति के विविध पक्षों पर प्रकाश पड़ा है। उत्खनन के परिणामस्वरूप लघुपाषाण उपकरण, पशुश्रृंग निर्मित उपकरण एवं आभूषण पशुओं की हड्डियाँ तथा नरकंकाल प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार मध्यगंगाघाटी में मध्यपाषाण कालीन संस्कृति की खोज विविध दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

सरायनहर राय[5] प्रतापगढ़ जनपद की 15 किमी दक्षिण पश्चिम एक सूखी झील के किनारे स्थित है। 1800 वर्गमीटर के क्षेत्र में विस्तृत इस स्थल के उत्खनन से 14 शवाधान तथा 8 गर्त चूल्हे प्रकाश में आए हैं। इसके अतिरिक्त फर्श भी प्रकाश में आया है। सामूहिक रूप से प्रयुक्त होने वाले गर्त चूल्हे तथा फर्श इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि लोग सामूहिक जीवन व्यतीत करते थे।[6] फर्श के चारों ओर स्तम्भ गर्त हैं तथा सम्पूर्ण फर्श पर जली मिट्टी के टुकड़े, जानवरों की जली एवं अधजली हड्डियाँ, घोंघा तथा लघुपाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। गर्त चूल्हे गोल अथवा अण्डाकर हैं जिनमें जानवरों का मांस भूना जाता था। गाय, बैल, भैंसा, हाथी, हिरण बारहसिंगा तथा भेड़–बकरी, कछुवा, घोंघा, मछली तथा चिड़ियों की प्राप्त हड्डियाँ उल्लेखनीय हैं। प्राप्त नरकंकालों में 11 कंकालों में 7 पुरूष और 4 स्त्री हैं। नरकंकालों की औसत आयु 16–34 वर्ष आंकी गयी है। हाथ–पैर की हड्डियों के अस्थिकरण, कपाल की संधि रेखाओं के विलयन तथा स्थायी दांतों आदि के आधार पर इनकी आयु का निर्धारण किया गया है। पुरूष तथा स्त्री दोनों ही अपेक्षाकृत लम्बे कद के थे। लघुपाषाण उपकरण अपेक्षाकृत अधिक संख्या में मिले हैं। इनमें समानान्तर एवं कुण्ठित पार्श्वयुक्त ब्लेड, बेधक, आर्द्धचन्द्र, खुरचनी, समबाहु

तथा विषमबाहु त्रिभुज आदि ज्यामितीय उपकरण उल्लेखनीय हैं। सभी उपकरण चर्ट, चल्सीडनी, अगेट, जेस्पर, आदि प्रस्तर पर निर्मित हैं। पशुओं की हड्डियों तथा श्रृगों पर बने उपकरण नगण्य हैं। इस स्थल उत्खनन सन 1970–71, 1971–72 तथा 1972–73 ई0 में कराया गया था।

सरायनहर राय के उत्खनन से मध्यपाषानिक मानव के सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। सम्भवतः ये छोटे–छोटे समूहों में अपेक्षाकृत स्थायी रूप से निवास करते थे। जिस प्रकार से स्त्री एवं पूरूषों के शव–दफनाएं हैं उससे अनुमान किया जा सकता है कि किसी न किसी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था अथवा स्त्री और पुरूषों के सम्बन्ध का प्रारम्भ हो चुका था। यहाँ से रेडियोकार्बन तिथियाँ[7] प्राप्त हुई हैं। महदहा[8] प्रतापगढ़ से उत्तरपूर्व में 31 किमी0 की दूरी पर स्थित है। शारदा सहायक नहर परियोजना की जौनपुर शाखा से 1953 ई0 में इस पुरास्थल का अधिकांश भाग नष्ट हो गया था। 1978 ई0 में नहर को चौड़ी करने की प्रक्रिया में यह पुरास्थल पुरातत्व जगत में प्रकाश में आया। यहाँ पर अविलम्ब स्व0 प्रो0 जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में प्रो0 वी0 डी0 मिश्र एवं प्रो0 जे0 एन0 पाल ने उत्खनन कार्य सम्पन्न किया। महदहा का मध्यपाषणिक स्थल लगभग 8000 वर्गमीटर के क्षेत्र में विस्तृत धनुषाकार झील के पश्चिमी तट पर स्थित है। नहर के पश्चिम में आवास एवं समाधि स्थल प्राप्त हुए हैं। पूर्व में वन्य पशुओं की अधजली एवं खण्डित हड्डियों, सींग, श्रृंग तथा दाँत इत्यादि मिले हैं। इसे 'वध स्थल' अथवा बूचड़खाना कहा गया है। सम्भवतरू यही वह क्षेत्र था जहाँ पर मध्य पाषाण युगीन मानव पशुओं को काटता था और हड्डियों के आभूषण तथा उपकरण बनाता था।

महदहा के आवास एवं समाधि क्षेत्र का सांस्कृतिक जमाव 60 सेमी0 मोटा है। मैदानी क्षेत्र में पाषाणिक संस्कृति का इतना मोटा जमाव एक ही स्थल पर पाषाणिक मानव के लम्बे समय तक की उपस्थिति को सूचित करता है। समूचे जमाव को चार स्तरों में विभाजित किया गया है। यहाँ से 28 समाधियों से 30 नर कंकाल प्राप्त हुए हैं। यह चार विभिन्न सांस्कृतिक स्तरों से सम्बन्धित है। प्रथम उपकाल में 3 समाधियों से 4 नरकंकाल प्राप्त हुए हैं। प्रथम समाधि युग्म समाधि है। इसमें पुरूष को दाहिनी ओर तथा स्त्री को बांयी ओर लिटाकर दफनाया गया है। सभी कंकालों का सिर पश्चिम की ओर है। सभी कंकाल व्यस्क लोगों के थे। द्वितीय उपकाल में दो समाधियों में से एक

समाधि से एक पुरूष तथा द्वितीय युग्म समाधि से एक स्त्री तथा एक पुरूष के कंकाल पश्चिम–पूर्व की ओर लिटा कर दफनाए गए थे। एक पुरूष कंकाल हिरण के श्रृंगों की बनी पाँच मुद्रिकाओं की एक माला गले में पहले हुए था। युग्म समाधि का पुरूष श्रृंगों की बनी हुई 12 मुद्रिकाओं की माला गले में पहने हुआ था तथा बाएं कान में श्रृंग–निर्मित गोल कुण्डल धारण किए हुए था। तृतीय उपकाल से 10 समाधियां मिली हैं जिनमें से एक–एक नरकंकाल मिला है। सात कंकाल पश्चिम–पूर्व दिशा में दफनाए हुए मिले हैं जिसमें सिर पश्चिम की ओर थे। दो समाधियों में भिन्नता स्पष्ट है। एक कंकाल पूर्व–पश्चिम तथा दूसरा पूर्व–पूर्व दक्षिण से पश्चिम–पश्चिम उत्तर की ओर सिर करके दफनाया गया था। दो समाधियों से अन्त्येष्टि सामग्री मिली है। एक महिला कंकाल के साथ सींग की बनी हुई दो गुरिया तथा सींग का बना हुआ बाण मिला है। दूसरी महिला के साथ कछुआ की खोपड़ी का एक टुकड़ा रखा हुआ मिला है। चतुर्थ उपकाल से सर्वाधिक 13 समाधियाँ मिली हैं। प्रत्येक में एक–एक मानव कंकाल मिला है। एक मुड़ा हुआ तथा शेष 12 कंकाल विस्तीर्ण शवाधान है। छरू का सिर पश्चिम की ओर, पांच का पूर्व की ओर तथा दो कंकालों की दिक्–स्थापना किसी सीधी दिशा में नहीं है। यहाँ के लोग हृष्ट पुष्ट तथा लम्बे कद के थे।

महदहा के उत्खनन से 35 गर्त चूल्हे मिले हैं। कतिपय गर्त चूल्हों के आन्तरिक भाग लीपपोत कर चिकना बनाया गया था। गर्त चूल्हों से राख, जली हुई मिट्टी तथा पशुओं की जली हुई हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। एक गर्त चूल्हे में भैंसे का सींग युक्त सिर मिला है। यह मांस भूनकर खाने के विषय में अत्यन्त महत्वपूर्ण साक्ष्य है। यहाँ के गर्त चूल्हों तथा धनुषाकार झील से वन्य पशुओं की हड्डियाँ मिली हैं। सांभर, चीतल, बारहसिंगा, जंगली सुअर, गैंडा, हाथी, इत्यादि पशुओं का शिकार किया जाता था। कछुआ, मछली इत्यादि जलचरों का भी शिकार किया जाता था। पक्षियों के शिकार के भी संकेत मिलते हैं।

लघु पाषाण उपकरण अपेक्षाकृत कम संख्या में मिले हैं। ब्लेड, बेधक, खुरचनी, अर्द्धचन्द्र, त्रिभुज तथा समलम्ब चतुर्भुज प्रमुख उपकरणों में उल्लेखनीय हैं। सींग तथा श्रृंग के उपकरणों में बाणाग्र, बेधक, खुरचनी, आरी, मुद्रिकाएँ उल्लेखनीय हैं। बलुहे प्रस्तर पर निर्मित टूटे सिल–लोढ़े, गोफन–पाषाण तथा हथौड़े इत्यादि हैं। सिल लोढ़े की प्राप्ति से प्रमाणित होता

है कि संभवतरू जंगली घास के दानों को पीसकर भोज्य सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता था। पुरा–पुष्पपराग के विश्लेषण द्वारा इस क्षेत्र में हरे भरे घास के मैदान के अस्तित्व का संकेत मिलता है।

दमदमा[9] (वारीकला) गंगाघाटी के मध्यपाषाण काल के उत्खनित पुरास्थलों में विशेष महत्वपूर्ण है। यह एक सुरक्षित पुरास्थल है। इसका उत्खनन अपेक्षाकृत विस्तार से किया गया है। यह स्थल महदहा से 5 किमी0 उत्तर पश्चिम में है। 8750 वर्गमी0 क्षेत्र में विस्तृत यह पुरास्थल गंगाघाटी की मध्यपुरापाषाणिक संस्कृति को विस्तार से प्रकाशित कर सका है। इस स्थल की खोज 1978 ई0 में हुई लेकिन उल्खनन का कार्य 1982–83 से 1986–87 तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो0 आर0 के0 वर्मा, प्रो0 वी0 डी0 मिश्र, प्रो0 जे0 एन0 पाण्डे तथा प्रो0 जे0 एन0 पाल द्वारा किया गया। दमदमा के उत्खनन से 1.50 मी0 मोटा सांस्कृतिक जमाव प्रकाश में आया है। इसको 10 स्तरों में विभाजित किया गया है। सबसे ऊपरी स्तर को छोड़कर शेष सभी 9 स्तर मध्य पाषाण काल से सम्बन्धित हैं। मध्य पाषाण कालीन जमाव से मानव अधिवास के साक्ष्य मिलते हैं। मिट्टी के कई पर्त वाले लेपयुक्त तथा लेपरहित गर्त चूल्हों, जली हुई मिट्टी के प्लास्टर युक्त फर्श, वन्य पशुओं की हड्डियाँ, लघुपाषाण उपकरण श्रृंग निर्मित उपकरण एवं आभूषण, नर कंकाल युक्त समाधियाँ उत्खनन के विशिष्ट परिणाम हैं।

दमदमा के उत्खनन से 41 मानव शवाधान प्रकाश में आए हैं। इनसे मध्यपाषाणिक शवाधान प्रक्रिया की विशेष जानकारी प्राप्त होती है। अधिकांश कंकाल पश्चिम–पूर्व दिशा में लिटाकर दफनाए गए हैं। सिर पश्चिम की ओर मिला है। अधिकांश को पीठ के बल सांगोपांग लिटाकर दफनाया गया है। मात्र दो कंकालों को पेट के बल तथा दो को पैर मोड़कर दफनाया गया था। श्रृंग निर्मित बाण तथा आभूषण एवं पशुओं की हड्डियों अन्त्येष्टि सामग्री के रूप में मिलती हैं। नर कंकालों के अतिरिक्त लघु पाषाण उपकरण प्रभूत मात्रा में प्राप्त हुए हैं। ब्लेड, फलक, क्रोड, पुर्नगढ़ित ब्लेड, समानान्तर एवं कुण्ठित पार्श्व युक्त ब्लेड, समद्विबाहु तथा विषमबाहु त्रिभुज, समलम्ब चतुर्भुज, खुरचनियाँ, छिद्रक, चांद्रिक इत्यादि उपकरण उल्लेखनीय हैं। इनके निर्माण हेतु चल्सीडनी, चर्ट, क्वाट्ज, अगेट, कार्नेलियन इत्यादि बहुमूल्य प्रस्तरों का प्रयोग किया गया है। श्रृंग उपकरण तथा आभूषण उल्लेखनीय हैं। इनमें बाणाग

तथा मुद्रिकाओं की गणना की जाती है। बलुहे पत्थर पर बने सिल लोढ़े (खण्डित) हथौड़े, निहाई इत्यादि प्रस्तर उपकरण प्राप्त हुए हैं। वन्य पशुओं की हड्डियों के अध्ययन से गंगाघाटी में गैंड़ा, हाथी, चीतल, सांभर, बारहसिंगा, जंगली सुअर, इत्यादि के अस्तित्व की सूचना प्राप्त होती है। उल्लेखनीय है कि इन पशुओं की हड्डियाँ जली हुई अथवा अधजली है जिससे प्रतीत होता है कि इस संस्कृति के लोग पशुओं का मांस भूनकर खाते थे। पशुओं के अतिरिक्त पक्षिओं एवं मछली, कछुआ इत्यादि की हड्डियाँ पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुई हैं। यहाँ के उत्खनन के फलस्वरूप मध्यगंगाघाटी की मध्य पाषाणिक संस्कृति की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। अनेक प्रकार के मानव–शवाधानों, लघु पाषाण उपकरणों, पशुओं के श्रृंगों के बने हे उपकरणों एवं आभूषणों, मिट्टी के लेप से युक्त आवास के फर्श एवं गर्त चूल्हों, वन्य पशुओं की अस्थियाँ तथा वानस्पतिक अवशेषों इत्यादि उपलब्धियों की दृष्टि से दमदमा (वारीकला) का उत्खनन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

गंगा के मैदान की इस प्राचीनतम संस्कृति का भारत के मध्य पाषाण युगीन संस्कृतियों में सबसे अधिक विस्तार में सम्बन्धित अन्य विषय के विशेषज्ञों–भौतिक नृतत्व शास्त्रियों, पुरा जीव शास्त्रियों और पुरावनस्पति शास्त्रियों द्वारा अध्ययन किया गया है जिससे उस युग के परिवेश, आर्थिक और सामाजिक जीवन पर प्रकाश पड़ा है। इस प्रकार सामान्यतरू साक्ष्यों के आलोक में गंगा के मैदान की मध्यपाषाणिक संस्कृति के तिथिक्रम को 8000 ई0 पू0 से 2000 ई0 पू0 के मध्य प्रस्तावित किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. *ह्वीलर, मार्टिमर, एन्सिएण्ट इण्डिया, नं. 4, पृ0 2.*
2. *सिंह, आर0 एल0, 1971, इण्डिया : ए रीजनल ज्योग्राफी, वाराणसी, नेशनल ज्योग्राफिकल सोसायटी ऑफ इण्डिया, पृ0 40*
3. *शर्मा, जी0 आर0, 1973, मेसोलिथिक, लेक कल्चर्स इन गंगा वैली, इण्डिया, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि प्रीहिस्टारिक सोसायटी, 39, पृ0 129–146.*
4. *पाल, जे.एन. 1980, प्रतापगढ़ जनपद में पुरातात्विक अन्वेषण, मानव, 2–3, पृ0 1–5.*

5. *शर्मा, जी.आर., 1973, पूर्वोक्तय शर्मा, जी0आर0, 1975, सीजनल माइग्रेशनस एण्ड मेसोलिथिक लेक कल्चर्स ऑफ दि गंगा वैली, के0 सी0 चट्टोपाध्याय मेमोरियल वाल्यूम, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पृ0 1–20.*

6. *पाण्डेय, जे.एन. 1983, पुरातत्व विमर्श, इलाहाबाद, पृ0 298–300.*

7. *पोशेल, जी0 एल0 तथा पी0 सी0 रिसमैन, 1992 क्रोनोलाजीस इन ओल्ड वर्ल्ड आर्क्योजाली, तृतीय संस्करण वाल्यूम, पृ0 46।.*

8. *जे. एन. पाल, 1985, सम न्यू लाइट आन दि मेसोलिथिक बरियल प्रैक्टिस ऑफ दि गंगा वैली, इविडेन्स फ्राम महदहा, मैन एण्ड इनवायसमेंट IX, 28–37.*

9. *जे0एन0 पाल, 1988, मेसोलिथिक डबल बरियल फ्राम रिसेन्ट इक्सकवेशंस एट दमदमा, मैन एण्ड इनवायरनमेंट, XII, पृ0 115–122.*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 135-143

प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी चिंतन

कल्पना यादव *

सारांश

प्रभा खेतान के साहित्य मे नारी की विवशता, परेशानी ,विषाद आदि का जीवंत चित्रण मिलता है। उन्होंने अपने परिवार, समाज मे जो देखा, समझा, अनुभव किया उसका सजीव वर्णन अपने साहित्य साधना मे किया। इनके साहित्य रचना संसार में नारी जीवन का संवेदनशील आत्मीय चित्रण दृष्टिगोचर होता है। नारी जीवन पर हुए अन्याय, अत्याचार को सहज रुप से वाणी देने का कार्य इन्होने किया।

मुख्य शब्द – साहित्य, आत्मीय, संवेदनशील, समाज, नारी।

परिचय

प्रभा खेतान का जन्म एक संकीर्णतावादी हिन्दू परिवार में सन 1942 में हुआ था। मारवाड़ी परिवारो मे शिक्षा का कोई महत्व नहीं दिया जाता था। मारवाड़ी परिवारों मे व्यापार पर ज्यादा ध्यान दिया जाता था। ऐसे ही परिवार में प्रभा का बाल्यावस्था व्यतीत हुआ। प्रभा खेतान खुद लिखती है ''हमारे परिवार का परम सुख था रुपया! अधिक से अधिक रुपया।

नारी चिंतन

विश्व में सबसे अधिक अध्ययन मनुष्य के सामाजिक व्यवहार पर हुआ है लेकिन इस अध्ययन मे नारी का स्थान नगण्य है। नारी को सिर्फ एक भोग विलास की वस्तु के रुप मे दिखाया गया है। नारी की वात्सलयता, कर्मठता, समाज के व्यंग वाणी को सुनते हुए भी समाज मे जीवित रहने की जिजविषा आदि का अभाव पाया जाता है।

आओ पेपे घर चलें (1990) इस प्रथम उपन्यास में जिसके केन्द्र बिन्दु में नारी है। इस उपन्यास की एक महिला पात्र आइलीन कहती है 'औरत कहां नहीं रोती और कब नहीं रोती? वह जितनी भी रोती है औरत होती जाती है'[1]।

---

* शोध छात्रा, हिन्दी, राजकीय महिला स्नाकोत्तर, महाविद्यालय गाजीपुर, उ०प्र०

इस कथन के द्वारा प्रभा खेतान नारी के अन्तःस्थल में विद्यमान दुःख, विलाप और विषाद का सजीव रुप अपनी लेखनी के द्वारा उकेर कर रख देती है। इस महिला पात्र के शब्द से प्रतीत होता है कि औरत का निरंतर औरत होते जाना उचित नहीं है। क्योंकि इससे नारी हमेशा पुरुषों का गुलाम और शोषण के अधीन होती जायेगी। नारी की भी कुछ इच्छाएं होती है, जिसे वह इस पुरुष प्रधान समाज में पाना चाहती है, कुछ करना चाहती है परन्तु उसके पैरों मे जंजीर बंधी होती है और वह घर, परिवार और समाज के द्वारा बांधी गयी होती है। अमेरिकी औरत का भयानक सच दिखाने वाला यह हिन्दी का पहला उपन्यास है।

उषा कीर्ति राणवत के कथनानुसार '' प्रभा खेतान ब्यूटी थैरेपी का कोर्स करने अमेरिका गयी थी। उस दौरान हुए अनुभवों को प्रभा खेतान ने 'आओ पेपे घर चले' उपन्यास का कथानक बनाया है। अमेरिकी जीवन शैली और सम्पन्न घरों की नारी के एकाकी जीवन को बहुत ही संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। प्रभा खेतान ने देखा कि आईलीन, मिसेज डी, हेल्गाा, मिसेज बेरी, मरील सभी महिलाएं सम्पन्न होकर भी दुःखी है। 70 वर्षीय आईलीन दो पतियों और 5 प्रेमियों को याद करते हुए कुत्ते 'पेपे' को बेटा मानकर जीवन के दुःखों को भूलना चाहती है। आदमी में जानवर और जानवर में आदमी को देखती हुई स्वयं को प्यार करती है। मां बाप के आपसी द्वेष के कारण परित्यक्ता मरील की बेटी का भटक जाना तथा बात–बात पर गालियां बकती मरील भीतर ही भीतर प्यार की समरसता खो चुकी है। प्रभा खेतान ऐसे घरों की दास्तान कहती है जहां पैसा है, लेकिन जीवन नहीं। जीवन है तो विखरा हुआ, कोई किसी का नहीं। सारे रिश्ते नाते दैहिक देह से परे शून्य[2]। 'आओ पेपे घर चले' उपन्यास की पात्र मिसेज डी का पति क्लारा ब्राउन के प्यार मे पागल है, इसी चक्कर मे पति से यातनाएं भी मिलती है, विवश होकर वह आत्महत्या का प्रयास भी करती है और अन्त में विवश होकर एक कोरे कागज पर तलाक के लिए हस्ताक्षर भी करती है। यह है नारी की दीन–हीन दशा, वह एक तरफ अपने पति से प्यार और लगाव की उम्मीद करती है, वहीं दूसरी तरफ अपने पति के लिए अपना सब कुछ कुर्बान करके असहाय और वेवशी का गुमनाम जीवन जीने के लिए विवश भी है।

इस उपन्यास की पात्र हेल्गा को 'प्यार' शब्द मजाक लगता है। कैथरिन साईक्रियाटिस्ट है। कैथरिन अश्वेतों के हाथों में पड़ जाती है, जो उसके साथ बलात्कार करने का प्रयास करते है। जिसके फलस्वरुप कैथरिन डिप्रेशन में चली जाती है। नारी हमेशा अपने को असहाय और असुरक्षित ही महसूस करती है।

तालाबंदी– (1991) यह दूसरा उपन्यास है। एक उद्योग में क्या–क्या घटित होता है, उद्योगपति को एक उद्योग चलाने में किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, यहीं इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है। इस उपन्यास में पाठकगढ़ के सामने फैक्टरी, मजदूर और यूनियन के संघर्ष की कथा उभरकर सामने आती है। इसमें नायक आर्थिक तंगी का शिकार है जो पिता की तरह मुनिमी न करके अपना स्वयं का व्यवसाय करना चाहता है। कालांतर में उसका व्यवसाय तो चलता है परन्तु अपने परिवार से दूर होता जाता है जिन्हें वह खुश रखना चाहता है वहीं अपने पैसों के कारण उससे दूर होते जाते है पत्नी अपने पति के साथ दो पल बिताने के लिए तरस जाती है।

इसमें एक परिश्रमी, व्यवसाय कुशल परन्तु साधनहीन श्यामबाबू द्वारा फैक्ट्री स्थापित करने से शुरु होती है। फैक्ट्री उँचाई पर पहुंचती है लेकिन श्रमिको, यूनियनों के संघर्ष के कारण बन्द हो जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर से सम्पन्न देशों द्वारा भी गरीब देशों को किसी भी प्रकार का वित्तीय मदद उद्योंगों को स्थापित करने में नहीं दिया जाता। एक तरफ इस उपन्यास में मार्क्सवाद को दिखाया गया है तो दूसरी तरफ समाजवाद को भी दिखाया गया है।

'अग्निसंम्भवा'–यह उपन्यास 'हंस' पत्रिका में तीन किस्तों में मार्च 1992 से मई 1992 के दौरान छपा। इस उपन्यास की नायिका आईवी एक चीनी महिला है, जिसे अपने देश से अटूट लगाव है। जो अपने जीवन संघर्ष की परिस्थितियों से लड़ते हुए हांगकांग ब्रांच मैनेजर बन जाती है। इस उपन्यास मे चीनी क्रांति, मार्क्सवाद, गोरी जाति का शोषण आदि राजनीतिक घटनाक्रम को तत्कालीन परिस्थितियों में प्रभा खेतान ने जैसा महसूस किया वैसा ही चित्रण इस उपन्यास में कर दिया। आइवी महत्वकांक्षी स्त्री है, मेहनती है, सिलाई– कढ़ाई करती है, और अंत में टैक्सी ड्राइवर भी बनती है। यह होता है एक नारी का जीवन संघर्ष अपने अस्तित्व को बचाने के लिए। अपने मृत्यु पुत्र के पत्रों को पढ़कर भावुक भी हो जाती है। अर्थात उसमें ममतामयी

वात्सल्यता भी है। शिव की पत्नी को कैंसर है इस बात को जानते हुए और शिव से अनबन होते हुए भी उसके पुत्र को अपने पुत्र की भाँति प्यार करती है[3]। आइवी के बेटे वोंग का मन हांगकांग में नही लगता। आइवी को अपने देश चीन से लगाव था और अपने पुत्र को बीजिंग विश्वविद्यालय मे पढ़ने के लिए भेजती है। और स्वयं हांगकांग में अकेली रह जाती है। वहां से वोंग अपने माँ के लिए पत्र लिखता है ''तू जानती है हांगकांग मुझे कभी रास नहीं आया, वहां की भोगवादी दुनिया छोड़ मैं यहां बीजिंग, अपनी जड़ों को समझने चला आया, कितनी प्रचीन संस्कृति? कितना प्राचीन है हमारा देश? माँ सच कहता हूं जब विदेशी यात्रियों के जत्थे के जत्थे मुंह बायें ,हमारी वस्तुकला को देखते रह जाते है, तब मेरा मन करता है कि दुनियां को बस चार हिस्सों में कांट दूं–उत्तर, दक्षिण, पूरब और पश्चिम[4]।

'एड्स' (1993)-यह एक कहानी है लेकिन प्रभा खेतान इसे उपन्यास बताती हैं। यह वैवाहिक जीवन के समस्याओं पर आधारित है। उस दौरान यह एक भयावह वैश्विक बीमारी थी। इस उपन्यास में पति के मित्र से पत्नी को एड्स की बीमारी मिलती है और पति द्वारा पत्नी के इस कृत्य को माफ कर दिया जाता है और पति बराबर अपनी पत्नी से मिलने अस्तपताल में जाता है।

'छिन्नमस्ता'(1993) -यह उपन्यास आधुनिक नारी की त्रासदी को बयां करता है। इस उपन्यास में युवती अपनी सगी माँ, भाई और पति द्वारा उत्पीड़ित किए जाने की कथा का बहुत ही मार्मिक ढ़ंग से वर्णन किया गया है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास के शीर्षक पर अपना मत व्यक्त करते हुए गोपालराय कहते है कि ''छिन्नमस्ता अर्थात जिसका मस्तक कटा हो, उपन्यास का यह नाम एक मिथक की ओर इंगित करता है–अपना ही कटा हुआ सिर अपने बायें हाथ में लिए मुंह खोले और जीभ निकाले हुए अपने ही गले से निकली हुयी रक्तधारा को चाटती हुयी, हाथ में खड़ग लिए मुण्डों की माला धारण किये और दिगम्बर की एक देवी''[5]।

इस उपन्यास की नायिका प्रिया को बचपन से ही दुत्कार मिलती है, उसके उठने–बैठने, खाने–पीने पर मां की तरफ से वेवजह फटकार मिलती रहती है। उसका नाम 'प्रिया' है लेकिन कोई इसे प्रेम नही करता सिवाय अपने दादी मां को छोड़कर। माँ के द्वारा उसे बोकी, भाटा, पत्थर, जल्दी ही बड़ी हो गयी है, सांवली है, एक बार में ही अढ़ाई सेर खाती हैं आदि जैसे ब्यंग उस

पर किये जाते है। प्रिया कहती भी है, ''औरत कहां नहीं रोती? सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, खेतों में काम करते हुए, एअरपोर्ट पर बाथरुम साफ करते हुए..... या फिर सारे भोग ऐश्वर्य के बावजूद......पलंग पर रात भर अकेले करवटे बदलते हुये......हजारों साल से इनके आंसू बहते आ रहे है''[6]।

अपने–अपने चेहरे (1994)– भारतीय समाज में विवाहित स्त्री की सामाजिक स्थिति अत्यंत उन्नत और सम्मानजनक है। विवाह के बाद पहले वह पति के अधीन रहती थी लेकिन वर्तमान मे वह इस अधीनता को स्वीकार नहीं करती। अब वह दासी व भोग्या न रहकर गरिमामय जीवन व्यतीत करना चाहती है। अब वह इस पुरुष प्रधान समाज में अपना एक सम्मानजनक स्थिति खोजना चाहती है। जहां वह आत्मनिर्भर हो किसी की गुलाम, भेग्या व दासी न हो। अब वह भी अपने पति से मित्रता, स्नेह, सौहार्द, प्रेम, और अपने प्रति समर्पण का भाव चाहती है। अब उसे पुरुषों के द्वारा एक तरफा प्यार, समर्पण, त्याग, आदि न्यायसंगत नहीं लगता।

उनका मानना है कि विवाह, पति और बच्चे से अलग भी औरत का अस्तित्व है। औरत की जिंदगी सिर्फ 'पुरुष की तलाश' नहीं है, उसकी अपनी भी सार्थकता है। स्त्री के लिए किसी पुरुष का 'दोस्त' होना परम्रागत भारतीय समाज को स्वीकार्य नहीं है। यदि उसे समाज से स्वीकृति पानी है तो उसका पत्नी होना अनिवार्य है। दोस्त के रुप मे वह 'दूसरी औरत' होती है। 'पहली औरत' वह है जिसकी मांग मे सिन्दूर है, उसे अर्धागिनी होने का बल प्राप्त है। 'दूसरी औरत' इससे वंचित होती है। रमा के रुप में 'दूसरी औरत' के रुप में अर्न्तद्वंद और आत्मकथा ही इस उपन्यास का केन्द्रिय विषय है। जिसमें वह हारती है, टूटती और तार–तार होती है[7]।

इस उपन्यास में परिवार की प्रमुख राजेन्द्र गोयनका की पत्नी फूहड़ और गंवार है। उनका सम्बन्ध सिर्फ विवाह सम्बन्धों के निर्वाह तक ही सीमित है। उनके जीवन में सुशिक्षित और सम्भान्त आधुनिक महिला 'रमा' की भूमिका महत्वपूर्ण है। ''रमा उनके उद्योग को सम्भाल सकती है, उनकी भावनाओं को संतुष्ट कर सकती है। पर दोंनों मे एक भी सुखी नही है। पत्नी की सामाजिक पहचान है किन्तु मिस्टर गोयनका के ह्रदय में उसके लिए जगह नहीं है, वह घर की उपेक्षित वस्तु मात्र है''[8]। गोयनका की पत्नी स्वयं ही रमा को उनकी दूसरी पत्नी के रुप में मानती है। इस बात से वह पति से झगड़ा भी करती

है। फिर भी वह रमा को अपनी छोटी बहन की तरह प्यार देती है। अपने पति से वह कहती है '' क्यों जी! आप इसका कोई ख्याल क्यों नही रखते ? क्या आपकी कोई जिम्मेदारी नही है इसके प्रति? ...... आप ऐसा रुख व्यवहार करेंगें ना तो उस बेचारी का मन टूट जायेगा। वह आपकों प्यार नही कर पायेगी[9]।

इस उपन्यास मे वैवाहिक जीवन मे होने वाले नारी जीवन के उतार–चढ़ाव, पसंद नपसंद, स्त्री की शादी होने के बाद की सामाजिक स्वीकृति, बिना विवाह किये ही पुरुष की संगत में रहने वाली नारी के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण और पुरुष का अपनी प्रास्थिति के अनुरुप पत्नी का न मिल पाना आदि का बहुत ही मार्मिक और संवेदनशील वर्णन किया है।

पीली–आंधी –इस उपन्यास के आधे हिस्से को लेखिका अपने मामी से सुनी और आधे हिस्से को स्वयं जो अनुभूति किया उसकों लिखा। इस उपन्यास की कथावस्तु 1932–50 के दौरान की है। जब भारत में ब्रिटिश उपनिवेश के दौरान मारवाड़ी बनिये, राजा–राजवाड़े के दौरान जो वहां के नागरिको का शोषण किया गया जिससे विवश होकर जो पलायन बंगाल और बिहार में हुआ हैं वहीं का सजीव चित्रण इस उपन्यास में किया गया हैं। कहना न होगा कि ''यह कथा सेठ गुरुमुख दास के हवेली से कलकत्ता के रुंगठा हाउस तक तीन पीढ़ियों के बसने उजड़ने की गाथा है। संयुक्त परिवार के न टूटने देने की जिद में घर की स्त्रियों के लगड़ते–झगड़ते सम्बन्धों की कथा है''[10]।

उपन्यास की लेखिका कहती है कि ''पीली– आंधी'' यह न आत्मकथा है और न परकथा। इस उपन्यास में कोई एक परिवार नहीं, इसमे कुल है, कबीला है.............संयुक्त परिवार है.............मगर सब कुछ टूटता हुआ, उड़ती रेत के धूल जैसी स्त्री–पुरुष और उनकी किरकिराती हुयी रेतीले क्षण। तीन पीढ़ियों की स्त्रियाँ, चाची, बड़ी माँ और सोमा, अपनी–अपनी बात कहते हुए भी ,खामोशी की धुंध में खोती हुई। मगर एक चीज जो सब को जिंदा रखती है–वह है प्रेम। चाहे वह राजस्थान की सुनहली रेत हो या बंगाल की हरितमा–यह प्रेम ही तो है जो हम सब की पहचान है। जो हमारे आपके सबके ह्नदय में धड़कता है और धड़कता रहेगा। बंगाल की बारिस में कीचड़ और कादे से सनी हुयी सड़के राजस्थान के पदछापों की धड़कन सुनेगी और कहेगी –यह पीली– आंधी यहां बंगाल में क्या कर रही[11]। इस उपन्यास की केन्द्र बिन्दु ''ताई जी'' उर्फ पद्मावती का चरित्र है। ताई जी परम्परावादी नारी नहीं है उनके मन में

परिवार की पुरानी परॅपराओं की रक्षा का भार है। तो दूसरी ओर वे नए से नए बदलावों को स्वीकार करने का तैयार है। एक परम्परागत नारी लगती हुयी भी वे एक सच्ची ''आधुनिकता'' है[12]। पीली आंधी की एक अन्य पात्र ''सांवर की पत्नी'' पति के अन्यत्रों सम्बन्धों से दुःखी होकर आत्महत्या की सोचती है पर ''बच्चों की खातिर'' वह उन सम्बन्धों को स्वीकार कर त्यागपूर्ण जीवन जीती है।''[13]

स्त्री पक्ष (1999) –यह अंतिम उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका वृन्दा है। वृन्दा के मन में अनेक प्रश्न है जैसे स्त्री क्या चाहती है ? राजनीति, धर्म, ईश्वर से सम्बंधित अनेक प्रश्न उसके मन को उद्वेलित करती है। वह इन प्रश्नों के सम्बन्ध में अपने शिक्षिकाओं से भी उलझती है। कालेज के पुरुषों से दोस्ती करती है पर एक सीमा तक। अपने एक घनिष्ठ मित्र के साथ नये साल पर एक पार्टी में शराब पीती है, जिससे उसकी बदनामी होती है। एक मित्र द्वारा उसके साथ बलात्कार की कोशिश भी की जाती है लेकिन दूसरा मित्र उसे बचा लेता है। वह उसके बाद आतंकित भी रहती है और विवाह न करने का निर्णय लेती है। माँ–पिता के द्वारा बाध्य किये जाने पर वह डॉक्टरी की पढ़ाई कर रहे सुमित नामक एक लड़के से विवाह करती है। विवाह के शुरुवात में कुछ ठीक रहता है लेकिन बाद में वैवाहिक जीवन में खटास होने पर डॉं सुमित से तलाक लेने की नौबत आ जाती है। आत्ममंथन करती वृन्दा बहुत सोचकर कई शर्तो के साथ तलाक के कागजातों पर हस्ताक्षर कर देती है। जिनमें हर माह घर खर्च, एवं मौजूदा घर में रहने की जिद शामिल होती है[14]।

बाद मे वृन्दा एक बुटिक खोलती है। बच्चे बड़े होते है, माता–पिता के न चाहते हुए भी वृन्दा छोटा एवं बेरोजगार आर्जव से शादी करती है। बेरोजगार आर्जव वृन्दा का घर सम्भालता है, बच्चें की देखभाल, पढ़ाई– लिखाई पर ध्यान देता है, और वृन्दा घर की मलकिन की तरह अपने कारोबार में व्यस्त रहती है। आर्जव कालांतर में बम्बई मे रोजगार करना चाहता है परन्तु वृन्दा अपने रोजगार को छोड़ना नही चाहती और हमेशा घर की मलकिन ही बनी रहना चाहती हैं।

निष्कर्ष

प्रभा खेतान के उपरोक्त उपन्यासों को पढ़ने पर एक शोध छात्रा के रुप मे मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचती हूं कि इन्होने अपने महिला पात्रों के द्वारा

एक महिला को अपने जन्म से मरण तक परिवार, समाज से जो उलेहना, उपेक्षा, तिरस्कार मिलता है, उसका उन्होंने बाखूबी से वर्णन किया है। ''आओं पेपे घर चले'' की आइलीन वह घर से सम्पन्न होने पर भी अपनी वैवाहिक जीवन में खुश नही है अर्थात प्रभा खेतान ऐसे घरों की दस्तान लिखती है जहां पैसा है लेकिन जीवन नही। जीवन है तो बिखरा हुआ, कोई किसी का नहीं। सारे रिश्ते–नाते दैहिक देह से परे शून्य। मिसेज डी अपनी तरफ से बहुत कोशिश करने पर भी असहाय होकर तलाक पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश होती है। ''तालाबंदी'' उपन्यास का नायक श्यामबाबू की पत्नी अपने पति का दो पल साथ पाने को तरस जाती है। ''अग्निसंभवा'' की महिला पात्र 'आइवी' किसान स्त्री की संघर्षगाथा है। जिसमे चीन से हांगकांग की यात्रा अपने अस्तित्व बचाने के लिए करती है। और वहां की ब्रांच मैनेजर अपने सघर्षो से बनती है। ''आइवी'' अपनी अस्मिता की सीमाओं का अतिक्रमण कर धुआं रहित अग्नि की लपटों को अपने भीतर स्वीकारती है।

''एड्स'' उपन्यास वैश्विक महामारी पर लिखा गया है। जिसमे एक परिवार का दुःख है, वेदना है इन सब के होते हंए भी पति द्वारा अपने पत्नी को स्वीकार करने की जिजविषा भी है।

''छिन्नमस्ता'' में प्रिया अपनी माँ, भाई, बहन सभी से दुत्कार पाती है, यहां तक की एक महिला की भांति घर, परिवार में जो उलेहना ताना मिलता है वह सब झेलती है। उसका नाम 'प्रिया' है लेकिन घर में अपने दादी को छोड़कर किसी को प्रिय नही है।

इसी प्रकार से ''अपने–अपने चेहरे'' में नारी की नियती को 'रमा के माध्यम से चित्रित किया है। ''पीली आंधी'' में प्रभा खेतान ने संयुक्त परिवार के नारियों के घुटन को चित्रित किया है। ''स्त्री पक्ष'' उपन्यास में प्रभा खेतान ने स्त्री की स्वतंत्रा पर विचार इस उपन्यास के माध्यम से किया है।

सन्दर्भ

1. *प्रभा खेतान, आओ पेपे घर चले, पृष्ठ 54*
2. *उषा कीर्ति राणावत : प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार, पृष्ठ 41*
3. *उषा कींति राणावत, प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार, पृष्ठ 42*
4. *प्रभा खेतान : अग्निसंभवा, 'हंस' पत्रिका,मार्च 1992, पृष्ठ 57*

5. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य, पृष्ठ 274
6. प्रभा खेतानः छिन्नमस्ता, पृष्ठ 220
7. शशि भरद्वाजः भारतीय उपन्यास, अंतिम दशक 1991–2000 साहित्यमाला, पृष्ठ 662
8. रामचन्द्र तिवारीः हिन्दी का गद्य साहित्य, पृष्ठ 275
9. प्रभा खेतान : अपने अपने चेहरे, पृष्ठ 40
10. शशि भरद्वाजः भारतीय उपन्यास, अंतिम दशक 1991–2000 साहित्यमाला संवत 2006,पृष्ठ 663
11. प्रभा खेतानः मुख पृष्ठ
12. प्रकाश मनु : बीसवीं शताब्दी के अंत में उपन्यास,पृष्ठ 156–157
13. शशि भरद्वाजः भारतीय उपन्यास, अंतिम दशक 1991–2000 साहित्यमाला संवत 2006, पृष्ठ 663
14. उषा कीर्ति राणावत : प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार, पृष्ठ 45

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 144-151

ग्रामीण महिलाओं में पर्यावरण संबंधी धार्मिक पक्षों का अध्ययन

ऋद्धीशा *

सारांश

भारतीय समाज में नारी एक महत्वपूर्ण स्तंभ रही है। आधुनिकता के प्रभाव में भी ग्रामीण नारी अपने परंपराओं और संस्कृति के मूल से प्रगाढता के साथ जुडी हुई है। धर्म किसी भी संस्कृति की वह विशेषता है जो सर्वदा नैतिक मूल्यों के साथ ब्रह्मांड में व्यवस्था बनाए रखता है। भारतीय ग्रामीण नारी धार्मिक परंपराओं के वाहक और प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधक के रूप में समाज में अपना योगदान देती रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रामीण महिलाओं में धार्मिक परंपराओं के पर्यावरणीय पहलू का अध्ययन किया गया है। विभिन्न प्रश्नों के माध्यम से धार्मिक क्रियाकलापों में पर्यावरणीय संचेतना और प्रकृति से सन्निकटता का अध्ययन किया गया है।

धार्मिक व्यवहार के अध्ययन के दृष्टि से ग्रामीण महिलाओं का ही चयन एक विशिष्ट विषय–समस्या के प्रति जागरूकता है। सामान्य समझ है की आधुनिकता के विचार व व्यवहार ने परंपराओं में सर्वाधिक परिवर्तन किया है। कई बार यह परिवर्तन सकारात्मक होते हैं तो कई बार नकारात्मक भी होते हैं। परंपरा में परिवर्तन विकासप्रद है या नहीं इस बहस के पचड़े से अलग एक दृष्टि यह भी है कि परंपराओं में पर्यावरण का मूल्यबोध कैसा है। यह मूल्यबोध ही कोई मानक तय कर सकता है कि हमारे दर्शन में पर्यावरण का स्थान क्या है। इसी जिज्ञासावश प्रस्तुत शोध में ग्रामीण क्षेत्र को अधिक महत्त्व दिया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों के बाद दूसरा महत्वपूर्ण चयन महिलाओं का है। वस्तुतः महिलाएं प्राचीन भारतीय समाज में धर्म व समाज की धुरी रही हैं। भारतीय समाज में महिलाओं का महत्त्व उनके प्रति अत्यंत आदर भाव से स्वयंसिद्ध है। महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती को सृष्टि का आधार मानना, श्रीविद्या का अनंतकोटि ब्रह्मांड नायिका के पद से अभिहित होना, ब्रह्मा, विष्णु, महेश की

* शोध विधार्थी, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

शक्ति का आधार सरस्वती, लक्ष्मी, काली का होना एक अत्यंत विशद एवं असंदिग्ध रूप से महिलाओं की उच्च स्थिति का प्रमाण है। यह सब कुछ महिलाओं पर सायास आरोपित प्रतिष्ठा नहीं है वरन् महिलाओं ने अपनी योग्यता और क्षमता को सिद्ध किया है। उनकी स्वतंत्रता और उनकी स्थिति के लिए वह सहज ही अधिकारी थीं।

महाभारत में कहा गया है कि महिला और कन्या के बिना घर जंगल है। वैदिक काल में गुरुकुलों में ब्रह्मचर्य अनिवार्य था। सह शिक्षा की व्यवस्था थी। विश्ववरा, अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, मैत्रेयी, गार्गी आदि महिलाओं को ऋषि पद प्राप्त था। ऋग्वेद में लोपामुद्रा 179 ऋचाओं की सहदृष्टा अथवा रचयिता हैं। ऋग्वेद के पूरे दो अध्यायों की रचयिता घोषा का व्यक्तित्व अद्भुत लगता है जिनके संकल्प से, अश्विनी कुमारों के प्रार्थना द्वारा वह कुष्ठ रोग से मुक्त हुई और सहज जीवन की अधिकारी बनीं। ऋग्वेद और यजुर्वेद में अनेकों विदुषियों के नाम और मंत्र आते हैं। यजुर्वेद के अनुसार कन्या का उपसंस्कार होता था। महाराज जनक के दरबार की प्रतिष्ठित विदुषी गार्गी की गार्गी–संहिता भी मिलती है।

न केवल दुखद एवं आश्चर्यजनक है वरन् शोध का विषय भी है कि परवर्ती काल में नारी समाज इतना दयनीय कैसे हो गया। रण आंगन में महाराज दशरथ के रथ की धुरी बनकर उनके विजयश्री की भी धुरी बनने वाली नारी कैसे दुर्दशा के आवरण में इतनी संकुचित और निर्बल हो गई। विधवा का कोई जीवन नहीं, बादशाहों के अत्याचार से सर्वाधिक दमित नारी का दारुण जीवन यह जानकर और हृदय विदारक हो जाता है कि उसे अपने जीवन का भी अधिकार नहीं था। सती प्रथा जीवन के अधिकार के विरुद्ध एक भयंकर विडंबना थी। इस प्रकार चोटियों और घाटियों से गुजरते हुए नारी जीवन में पर्यावरण के मूल्यों की खोज एक रोमांचकारी चयन है।

प्रकारांतर से कहा जाए तो भारतीय परंपरा में धर्म वस्तुतः मूल जीवन ही है। यह मूल स्वभाव है और मूल कर्तव्य भी है। जब धर्म स्वयं में एक जीवन पद्धति ही है तो जीवन के हर पहलू में धर्म ही परिलक्षित होता है। धर्म में पर्यावरण के समझ का प्रयास, समग्र विचार, जीवन व्यवहार और जीवन पद्धति में पर्यावरण के महत्त्व को प्रकाशित करता है। भारतीय परंपरा में धर्म का अर्थ सम्प्रदाय, रिलिजन, आदि से अलग है। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने अपने

एक निर्णय में कहा कि "हिन्दुत्व शब्द भारतीय लोगों के जीवन पद्धति की ओर इशारा करता है। इसे सिर्फ उन लोगों तक सीमित नहीं किया जा सकता जो अपनी आस्था की वजह से हिंदू धर्म मानते हैं।"

प्रकृति संरक्षण का संस्कार जैसा भारत भूमि में दिखाई देता है अन्यत्र नहीं मिलता है। सनातन परम्पराओं में प्रकृति संरक्षण के सूत्र मौजूद हैं। हिंदू धर्म में प्रकृति पूजन को प्रकृति संरक्षण के तौर पर मान्यता है। भारत में पेड़–पौधों, नदी–तालाब, पशु–पक्षियों, अग्नि–वायु सहित प्रकृति के अनेक रूपों के साथ मानवीय रिश्ते जोड़े गए हैं। चंदा को मामा, नदी को माँ तथा वृक्ष को पुत्र समान बताया गया है। भारत के लोगो में पूजा, व्रत आदि के माध्यम से प्रकृति संवर्धन तथा संरक्षण की शिक्षा मिलती रहती है। घर–आंगन में तुलसी के पौधे को लगाना तथा उसकी पूजा महिलाओं द्वारा नियमित किया जाना परंपरा में छिपी वैज्ञानिकता ही है जिसमें तुलसी के औषधीय गुण हैं। पीपल के वृक्ष की पूजा, जल देना एवं संरक्षण के पीछे पीपल के पेड़ का अत्यधिक मात्रा में प्राणवायु देने का तथ्य है। परिवार की सामान्य गृहिणी भी अपने अबोध नन्हें बालक को समझाती है कि रात में पेड़ पौधे को नहीं छूना चाहिए क्योंकि वे सो जाते हैं। वह गृहिणी परम्परावश ऐसा करती है एवं उसे इसका वैज्ञानिक कारण मालूम नहीं होता है। हमारे धार्मिक ग्रंथों में वृक्ष एवं पर्यावरण के महत्त्व को दर्शाते अनेक श्लोक लिखित हैं। मत्स्य पुराण में लिखा है कि –

> दश कूपसमावापी, दशवापीसमोह्रदः।
> दशह्रदसमः पुत्रों, दशपुत्रोसमो द्रुमः।

अर्थात दश कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दश बावड़ियों के सामान एक तालाब होता है, दश तालाब एक पुत्र के बराबर होते हैं और दश पुत्रों के बराबर एक पेड़ होता है। प्राकृतिक संसाधनों का सम्मान एवं पूजन हमारी संस्कृति का अटूट हिस्सा है। हर पंथ एवं समुदाय में किसी न किसी रूप में प्रकृति के विभिन्न घटकों का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व है। केला, बेल, पीपल, बरगद, आंवला, इत्यादि वृक्षों का पूजन एवं अन्य धार्मिक मान्यताएँ प्रकृति एवं पर्यावरण के संरक्षण को बढ़ावा देती हैं। इसके अलावा गौ–पूजन, राजस्थान के विश्नोई समाज के द्वारा खेजड़ी वृक्ष एवं जानवरों का पूजन पर्यावरण संरक्षण को धार्मिक क्रिया–कलापों से जोड़ता है।

वसंत–पंचमी, वट–पूर्णिमा, ओणम, कार्तिक–पूर्णिमा, छठ–पूजा, शरद–पूर्णिमा, अक्षय–नवमी, अन्नकूट, गंगा–दशहरा, हरियाली–तीज, आदि सभी पर्वों में प्रकृति संरक्षण का संदेश छिपा है। धर्म और संस्कृति का एक प्रमुख आधार वेद है जिसकी ऋचाओं और मंत्रों का विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों सहित दैनिक धार्मिक क्रिया–कलापों में अनुकरण होता है। यदि चारों वेदों की बात की जाए तो पर्यावरण संबंधी सर्वाधिक ऋचाएं यजुर्वेद और अथर्ववेद में है। यद्यपि ऋग्वेद में भी पर्यावरण संबंधी कुछ सुक्तों का उल्लेख है परंतु इस परिप्रेक्ष्य से यजुर्वेद और अथर्ववेद ज्यादा महत्वपूर्ण है। दैनिक पूजन में प्रयुक्त होने वाले मंत्रों में भी पृथ्वी, जल एवं नदियों के महत्त्व का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद के अनुसार से,

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतोनिवेशनी।

अर्थात पृथ्वी अपने संपूर्ण संपदा को रख कर पूरे संसार के सभी जीवों का भरण पोषण करती है। यदि हम पृथ्वी या प्रकृति के विभिन्न घटकों को दूषित करेंगे तो हमें दूषित संपदा ही मिलेगी। धर्मग्रंथों में ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं जो पर्यावरण के प्रति आदि काल से भारतीय संस्कृति में पर्यावरणीय संचेतना के विद्यमान होने के साक्ष्य हैं। वेद, पुराण, गीता और अन्य धर्म ग्रंथों के उल्लेख ही हमारी धार्मिक संस्कृति में किसी न किसी स्वरूप में परिलक्षित होते हैं। विभिन्न प्राकृतिक घटकों के महत्त्व का वर्णन विभिन्न धर्मों में भी मिलता है। हर धर्म ग्रंथों का एक समान मूल भाव है–जीवों की रक्षा और प्रकृति का संरक्षण।

हिंदू धर्म में नवग्रह वाटिका और नक्षत्र वाटिका प्रकृति संरक्षण के धार्मिक उल्लेख का ही उदाहरण हैं। प्रत्येक ग्रह के लिए और प्रत्येक नक्षत्र के लिए एक वनस्पति निर्धारित है। इस प्रकार उन सभी वनस्पतियो का संरक्षण सुनिश्चित हो जाता है। विभिन्न देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अलग–अलग पुष्प और पत्तियाँ चढ़ाने की मान्यता है। इस प्रकार उन विशेष वनस्पतियो का संरक्षण सुनिश्चित हो जाता है। वट सावित्री पूजन के लिए वट वृक्ष, शनि ग्रह की पूजा के लिए पीपल, अक्षय नवमीं के लिए आंवला, देवी सरस्वती के लिए पीले पुष्प वाली वनस्पतियां, देवी लक्ष्मी के लिए कमल, गणेश देवता के लिए दुर्वा, इत्यादि प्रकृति संरक्षण के धार्मिक पहलू को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार

जल स्रोतों के पूजन की परंपरा भी आदि काल से चली आ रही है। वैदिक मंत्रो में उल्लेख के साथ साथ दैनिक जीवन में भी उन जल स्रोतों की पूजा होती आ रही है जिससे आवश्यकता पूर्ति होती है। उदाहरण के लिए दीपावली में एक दीपक कुआं, जलाशय, नदी, नल, इत्यादि के पास रखने की प्राचीन परंपरा है। नदियों की पूजा हर संस्कृति में देखा जा सकता है। गंगा को सर्वाधिक पूजनीय मानने के पीछे भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण है कि उसके जल में बैक्टीरियोफेज विषाणु पाया जाता है जो जीवाणुओं का विनाश करता है।

आंकड़ा संकलन एवं परिणाम

सारणी संख्या 1

चैत्र नवरात्रि मनाने की रीति को जानना

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	279	93.00
नहीं	21	07.00
योग	300	100

उपयुक्त सारणी के तथ्यों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अध्ययन में सम्मिलित सर्वाधिक 93 प्रतिशत लोग चैत्र नवरात्रि मनाते हैं जबकि मात्र 7 प्रतिशत लोग नहीं मनाते।

सारणी संख्या 2

यदि हाँ तो चैत्र नवरात्रि मनाने की प्रक्रिया

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
नए अनाज की पूजा करती है	136	45.33
नीम वृक्ष की पूजा करती है	022	07.33
कन्या पूजन करती है	062	20.66
घरों में गोबर की लिपाई करती है	080	26.66

दैव निदर्शन द्वारा 300 महिलाओं का चयन किया गया। उपयुक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है की 45.33 प्रतिशत महिलाएं चैत्र नवरात्रि में नए

अनाज की पूजा करती है 26.6 प्रतिशत घरों में गोबर की लिपाई करती है 20. 66 प्रतिशत उत्तर दादरी कन्या पूजन करती है तथा 7.33 नीम वृक्ष की पूजा करती है।

सारणी संख्या 3

घर में किसी मंगल उत्सव पर होने वाले काम

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
विभिन्न सामग्री से हवन करते हैं	61	20.33
शंख–घंटी बजाते हैं	56	18.66
दीप जलाते हैं	57	19.00
साफ सफाई करते हैं	86	28.66
आस–पड़ोस में यथा सामर्थ्य प्रसाद वितरण करती हैं	71	13.33

दैव निदर्शन द्वारा 300 महिलाओं का चयन किया गया। उपयुक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि घर में किसी मंगल उत्सव पर 20.33 प्रतिशत महिलाएं साफ सफाई करती हैं जबकि 18.66 प्रतिशत संघ घंटी बजाती हैं 19 प्रतिशत सरसों तेल का दीप जलाती हैं और सर्वाधिक 28.66 प्रतिशत साफ सफाई करती हैं।

सारणी संख्या 4

कार्तिक मास के पूजन कार्यों में किए जाने वाले कार्य

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
तुलसी विवाह हेतु तुलसी केला का पौधा रोपण करते हैं	271	90.33
आंवला वृक्ष का पूजन तथा आंवला सेवन	250	83.33
दीपोत्सव मनाते हैं	260	86.66
प्रातः स्नान करते हैं	251	83.66

दैव निदर्शन द्वारा 300 महिलाओं का चयन किया गया। उपयुक्त सारणी के तत्वों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि सभी ग्रामीण महिलाएं अपनी सामर्थ्य अनुसार कार्तिक मास में प्रातः स्नान करती हैं। लगभग सभी महिलाएं कार्तिक मास में दीपोत्सव मनाती हैं इसी प्रकार ज्यादातर महिलाएं आंवला वृक्ष

का पूजन तथा आंवला सेवन करती हैं तथा तुलसी विवाह हेतु सुनिश्चित करती हैं कि तुलसी तथा केले का पौधा हो।

सारणी संख्या 4

छठ पूजन में किए जाने वाले व्यवहार

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
तालाबों एवं नदी तट की सफाई	140	46.66
3 दिन के व्रत उपवास (शरीर शोधन)	153	51.00
सूर्य पूजन (प्रकृति के प्रति कृतज्ञता)	153	51.00
अधिकतम प्राप्त ऋतु पर चढ़ाना	153	51.00
उपरोक्त सभी	153	51.00
छठ पूजा नहीं करते हैं	147	49.00

दैव निदर्शन द्वारा 300 महिलाओं का चयन किया गया। उपयुक्त सारणी के तत्वों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि 51प्रतिशत ग्रामीण महिलाएं छठ पर्व करती हैं उपरोक्त सभी कार्य तालाबों नदी तट की सफाई 3 दिन व्रत उपवास शरीर शोधन सूर्य पूजन से प्रकृति के प्रति कृतज्ञता तथा अधिकतम प्राप्त ऋतु फल चढ़ाना जैसे सभी कार्य निष्ठा पूर्वक करती हैं जबकि 40 प्रतिशत महिलाएं छठ पर्व नहीं करती हैं।

उपर्युक्त तालिका की सूचनाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अनेक रूप में ग्रामीण महिलाओं में धार्मिक क्रियाकलापों में पर्यावरणीय संचेतना की झलक मिलती है जो भी धार्मिक क्रियाकलाप ग्रामीण महिलाओं के द्वारा किए जाते हैं उनका कहीं ना कहीं पर्यावरण संरक्षण में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से योगदान है यद्यपि ज्यादातर क्रियाकलाप परंपरावश किए जाते हैं परंतु उन सभी क्रियाकलापों का प्रकृति और पर्यावरण से सीधा सरोकार है।

उपसंहार

भारतीय ग्रामीण महिलाओं का जीवन धर्म प्राण व्यवस्था का आदर्श है। जीवन की प्रत्येक चर्या पर्यावरण को पुष्ट करती है। माता ही प्रथम गुरु है। सर्वथा हम मातृभाषा शब्द का ही प्रयोग करते हैं कि पितृभाषा का नहीं। भारतीय ग्रामीण महिलाओं ने आज तक धर्म और पर्यावरण के प्रति

उत्तरदायित्वशीलता को भी अक्षुण्ण रखा है। उन्होंने पृथ्वी (विष्णु पत्नी) को प्रणाम करके जीवन के आधार के रूप में पृथ्वी के प्रति पूजनीयता एवं आदर का भाव दिया। गौ–पूजन और गौ–प्रणाम से आने वाली पीढ़ियों को पशुओं का आदर करना सिखाया। पक्षियों को दाना देकर पूर्वजों और पितरों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की। वृक्षों और पादपों के प्रति उनका पवित्रता पूर्ण व्यवहार पर्यावरण से अद्भुत प्रेम सिखाता है। तुलसी विवाह और वट सावित्री पूजन के इस देश में ग्रामीण महिलाओं के जीवन का हर पक्ष ममता का है, धर्म का है और इन सब से भिन्न किसी नितांत भौतिकवादी के लिए भी अत्यंत पर्यावरण प्रेम का है।

संदर्भ

1. *https://hindi.indiawaterportal.org/*
2. *Ramesh Pattni, Secretary General, Council of Dharmic Faiths, Chair of Interfaith, Hindu Forum Britain*
3. *https://www.amarujala.com*
4. *Kishnaram Bishnoi, Narsiram Bishnoi, DharmaAur Paryavaran (Volume – 3,2009), Daya Publishing House*
5. *Tapan Biswal, Manvadhikar Zender Evm Parayavaran, Viva Books*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 152-159

सांप्रदायिकता भारतीय लोकतंत्र की चुनौती और पंथनिरपेक्षता का राजधर्म

राकेश कुमार निषाद *
डॉ० अभय सिंह **

सारांश

इस शोध आलेख में इन्हीं वर्तमान सांप्रदायिक समस्याओं को दिखाते हुए यह विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है कि जहां सांप्रदायिक आधार पर धर्म की पहचान की जा रही है और धर्म और संप्रदाय को एक ही अर्थ में लेने की न केवल भूल किया जा रहा है। यहां इस शोध आलेख में धर्म की सही व्याख्या करते हुए व्यक्ति, समाज, और राज्य के धर्म की व्याख्या करते हुए सांप्रदायिकता की समस्या का हल पंथ निरपेक्षता को बताया गया है। यहां सच्चा राजधर्म और धर्मनिरपेक्षता आपस में विरोधाभासी नहीं बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं, यह बताने की कोशिश की गई है। भारत में लोकतंत्र, पंथनिरपेक्षता, धर्म के संबंध में भ्रांतियां, धर्म का वास्तविक अर्थ, राजघर्म, और पंथनिरपेक्षता का आशय आदि को स्पष्ट करते हुए स्रांपदायिकता की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया गया है। यह शोध आलेख व्यावहारिक सामाजिक समस्याओं पर आधारित है अतः यह विद्यार्थियों, शोधार्थियों एवं सभी सामाजिक समस्याओं पर चिंतन करने वालों के लिए उपयोगी है। पाठकों से अपेक्षा है कि वे इसे पढ़ेगे बल्कि अपना उपयुक्त सुझाव भी प्रस्तुत करने का काम करेंगे।

शब्द संकेतांक – भारत में लोकतंत्र, पंथनिरपेक्षता, धर्म के संबंध में भ्रांतियां, धर्म का वास्तविक अर्थ, राजघर्म, और पंथनिरपेक्षता

आज दुनिया में लोकतांत्रिक राज्य की स्थापना का विचार लोकप्रिय हो रहा है। लोकतांत्रिकरण के द्वितीय चरण में भारत को 15 अगस्त, 1947 को ब्रिटिश औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति मिली और लोकतंत्र स्थापित हुआ। भारत को लोकतंत्र की स्थापना के प्रारंभिक दौर से ही सांप्रदायिक समस्या का सामना करना पड़ा। इस सांप्रदायिक समस्या के कारण भारत के स्वतंत्रता

* शोध छात्र, राजनीति विज्ञान, डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या उत्तर प्रदेश
** असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राणा प्रताप पी०जी० कालेज, सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश

के संघर्ष में न केवल आपसी फूट से विभिन्न कठिनाइयां उत्पन्न हुई बल्कि सांप्रदायिकता के सांप ने डसा तो भारत विभाजन का दंश झेलने के साथ 1948 में भयंकर दंगे हुए जिसमें लाखों लोगों की जान गई। लोग अपने घरों और अपनी संपति से विस्थापित हुए। नोआखली में इसका भयंकर प्रभाव देखा गया। महात्मा गांधी जी ने यहां जाकर सांप्रदायिक दंगे को शांत करने बड़ी भूमिका निभाई।[1] भारत में जम्मू एंड कश्मीर के विलय के पश्चात् है वहां सांप्रदायिक आधार पर वैमनस्यता फैल गई इसका परिणाम यह हुआ कि लाखों लोगों को अपने जान माल से हाथ धोना पड़ा। इसके बाद भारत में कई बार सांप्रदायिक दंगे देखे गए। 1984 में खालिस्तानी आतंकवाद और इस के विनाश के बाद प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी की हत्या के पश्चात् पूरे देश में सांप्रदायिक आधार पर सिक्ख समुदाय को निशाना बनाया गया। 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस में सांप्रदायिक वैमनस्य देखा गया जब कानून व्यवस्था फेल हो गई। 2002 में गुजरात में सांप्रदायिक दंगे हुए तो कानून का राज फेल हो गया और सरकारी संपत्ति का भी विनाश हुआ।[2] भीड़ हिंसा का एक पक्ष सांप्रदायिक भी है ऐसा बहुत बार देखा गया है कि जब सांप्रदायिक आधार पर नारा लगाने और बलपूर्वक नारा लगवाने के मामले में लिंचिंग की घटनाएं देखी गई। यह वास्तव में लोकतंत्र के लिए एक बड़ी चुनौती है। आस्था के नाम पर देश में सांप्रदायिक बहस छेड़कर जनता की आम समस्याओं को नजरअंदाज करके सांप्रदायिक ध्रुवीकरण किया जाता है और लोगों को गुमराह करके कुछ लोग अपना राजनीतिक फायदा लेने की जुगाड़ में लगे रहते हैं।

उद्देश्य

व्यक्ति, समाज, लोकतांत्रिक राष्ट्रीय राज्य के वास्तविक धर्म, पंथनिरपेक्षता के अर्थ और महत्व को बताते हुए सांप्रदायिकता का समाधान करना इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

निरीक्षण

भारतीय लोकतंत्र में पंथनिरपेक्षता

भारत में व्यवस्थित ढंग से लोकतंत्र की स्थापना 15 अगस्त 1947 को हुई और 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू होने के साथ विभिन्न संविधान संशोधन के माध्यम से निरंतर लोकतंत्र में सुधार होते रहे हैं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारत को एक लोकतंत्रात्मक, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और गणराज्य होने की स्पष्ट घोषणा की गई है। इसके साथ ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म और उपासना की स्वतंत्रता एवं सभी के लिए प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता की नींव रखी गई है। राष्ट्र को एकजुट करने के लिए परस्पर भाईचारा के महत्व को स्पष्ट किया गया है। प्रस्तावना में लोकतंत्रात्मक आदर्शो जैसे स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और न्याय का भी स्पष्ट उल्लेख है। भारत का संविधान लोकप्रिय जन संप्रुभता सिद्धांत पर आधारित है।[3]

संविधान में पंथनिरपेक्षता शब्द 1976 में 42वां संविधान संशोधन के अंतर्गत जोड़ा गया परंतु इसके बीज संविधान में पहले से ही मौजूद रहे हैं। यह संविधान संशोधन पंथनिरपेक्षता के मामले में संविधान की मूल भावना के अनुरूप है और इसमें स्वतंत्रता और समानता के अधिकारों में बिना किसी भेदभाव के सबको बराबरी का दर्जा दिया गया है। राज्य के लिए धार्मिक स्तर पर भेदभाव की मनाही की गई है। इसकी सबसे स्पष्ट व्याख्या धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार अनुच्छेद 25 से 28 तक मौजूद है जिसमें अंतःकरण धर्म के प्रकट करने, धर्म के प्रचार–प्रसार की स्वतंत्रता, धार्मिक मामलों में प्रबंध की स्वतंत्रता, किसी धर्म विशेष को प्रोत्साहित करने के लिए कर के भुगतान से स्वतंत्रता, कुछ शैक्षणिक संस्थानों में धार्मिक निर्देशों अथवा धार्मिक उपासना के लिए उपस्थित होने की स्वतंत्रता सभी को समान रूप से प्राप्त है। राज्य कर के रूप में एकत्रित धन को किसी विशिष्ट धार्मिक उत्थान एवं रखरखाव के लिए प्रयोग नहीं कर सकता। राज्य का अपना कोई पंथ अथवा धर्म आस्था नहीं होगा। राज्य के लिए सभी पंथ अथवा धार्मिक समुदाय एक समान होंगे और सभी को एक समान आदर प्राप्त होगा। कुल मिलाकर धार्मिक आधार पर भेदभाव को रोका गया है और किसी भी धर्म के प्रति नफरत का भाव नहीं है। पंथनिरपेक्षता का शाब्दिक अर्थ पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार राज्य द्वारा पंथ या धर्म से पृथक्करण है जबकि भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार पंथनिरपेक्षता का अर्थ बिना किसी भेदभाव के सभी धर्मो के लोगों के प्रति और उनकी धार्मिक आस्था और धार्मिक संस्थाओं के प्रति समानता का भाव है। इस अर्थ में राज्य धर्म का विरोध नहीं करता बल्कि और समान रूप से सकारात्मक सहयोग करता है।

विश्लेषण

पंथनिरपेक्षता और धर्म के संबंध में भ्रांतियां

पंथनिरपेक्षता और धर्मनिरपेक्षता के संबंध में बहुत सारी भ्रातियां पैदा हो गई है जिनका नए सिरे से अर्थ स्पष्टीकरण जरूरी हो गया है। भारतीय समाज सुधारकों और स्वतंत्रता सेनानियों ने धर्म की सकारात्मक भूमिका को देखते हुए जो महत्व दिया है क्या राज्य को उस से पृथक हो जाना चाहिए? महात्मा गांधी ने माना कि धर्म के बिना राजनीति निष्प्राण है और अपनी दिशा से भटक जाएगी।[4] स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविंद घोष, बाल गंगाधर तिलक जैसे मनीषी और विद्वानों ने धर्म को मानवीय मूल्य के अनुरूप देखा। बुद्ध, महावीर, कबीर महान संतो के अनुसार धर्म मानव मूल्यों की स्थापना के साथ व्यक्ति के आत्मज्ञान और मोक्ष प्राप्त करने का साधन है।

धर्म के उपरोक्त महत्व को देखते हुए यह सवाल जरूर पैदा होता है कि क्या धर्म से निरपेक्ष होना औचित्यपूर्ण है? जबकि समाज में धर्म एक सकारात्मक भूमिका निभाने वाला प्रमुख तत्व है। धर्म निरपेक्ष विचारकों और विद्वानों की भी कमी नहीं है जिन्होंने राज्य के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को महत्वपूर्ण मानते हुए इसकी स्थापना आवश्यक माना है। पंडित जवाहरलाल नेहरू, डॉक्टर भीमराव अंबेडकर, डॉ0 राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण और सबसे प्रखर प्रवक्ता मानवेंद्र नाथ राय भारत में धर्मनिरपेक्षता को आवश्यक माना है। उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जानने और विरोधाभासों को स्पष्ट करने के लिए धर्म का वास्तविक अर्थ जान लेना आवश्यक है।

धर्म, संप्रदाय और साम्प्रदायिकता

धर्म शब्द संस्कृत भाषा के **'धृ'** धातु से है जिसका अर्थ 'धारण करने योग्य' से होता है।[5] प्रत्येक वस्तु और प्राणी का अपना एक निज स्वभाव अथवा कर्म होता है जो स्वभाव या गुण कर्म को धारण करने से ही उसकी पहचान बनती है। यही निजी स्वभाव अथवा गुण कर्म को धारण करना धर्म होता है। उदाहरण स्वरूप पानी का मूल स्वभाव उसका चिपकना या स्नेह है और आग का निज स्वभाव जलना अथवा जलाना है। अतः पानी या आग अपना मूल स्वभाव या गुण कर्म अगर धारण करता है तो यह माना जाता है कि वह अपने धर्म के अनुकूल है,जो कि औचित्यपूर्ण है। इस प्रकार प्रत्येक के द्वारा उसके

अपने औचित्यपूर्ण कर्म या कर्तव्य का पालन धर्म है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु अथवा प्राणी के लिए उसका अपना निज कर्तव्य के अलावा कोई दूसरी चीज धारण करने योग्य नहीं है। धर्म को अंग्रेजी भाषा में Religion कहते हैं। यह फ्रेंच अर्थात् लैटिन और एंग्लो नॉर्मन भाषा से उद्धृत है,जिसका अर्थ ''औचित्यपूर्ण में आस्था या समर्थन, दिव्यता में विश्वास अथवा ईश्वर की भक्ति है जो मानव को सत्य की ओर, उचित की ओर और आगे की ओर ले जाती'' है।[6] हिंदी और अंग्रेजी दोनों शब्दावलीयों में धर्म का अर्थ औचित्यपूर्ण कर्म या कर्तव्य को धारण करने से ही है। धीरे–धीरे धर्म का अर्थ ईश्वर में अटूट आस्था से लिया जाने लगा और इसके मानने वाले लोगों के समुदाय को धार्मिक समुदाय के रूप में चिन्हित किया जाने लगा। दुनिया के विभिन्न हिस्से में सांस्कृतिक विविधता के कारण धर्म संबंधी आचरण के पालन में विविधता देखी गई और पृथक पहचान का महत्व बढ़ा तो विभिन्न धार्मिक संप्रदायों का विकास हो गया। संप्रदाय एक जैसे धार्मिक आस्था और परंपराएं निभाने वाले लोगों का एक सामुदायिक संगठन है।

सांप्रदायिकता किसी विशेष संप्रदाय के लोगों के द्वारा अपने हितों को संप्रदाय के आधार पर चिन्हित करके, उनको आपने ही समान दूसरे संप्रदाय के लोगों के हितो के ऊपर रखने और प्राथमिकता देने की कट्टरतापूर्ण भावना है जो अपने को अपने ही समान दूसरे पंथ या धार्मिक समुदायों की तुलना में सबसे सर्वोच्च पृथक इकाई मानते है। सांप्रदायिकता धर्म की मूलभूत सिद्धांतों से भिन्न एक कट्टर, संकीर्ण और अज्ञान पर आधारित विचारधारा है।

जब मानव को वर्णो में विभाजित किया गया तो उसके गुण कर्म के आधार पर उसके कर्म निश्चय करके श्रम विभाजन किया गया ऐसा श्रीमद्भागवत गीता में कहा गया है ''चातुर्वर्ण्य मया सृष्ट गुणकर्मविभागशः''।[7] इसे सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ दिया गया है। गुण कर्म के आधार पर कुछ कर्तव्य बताएं जिनका पालन करना न्याय है। जैन धर्म और बौद्ध धर्म में भी अष्टांग मार्ग (सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक जीविका, सम्यक प्रयास, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि) में भी मानवीय धर्म से की व्याखा की गई है। ईसाई धर्म में भी मानव सेवा को ही धर्म का मूल माना गया। प्रत्येक मानव के व्यक्तित्व के आधार पर मानव धर्म की व्याख्या व्यक्ति की निजी, पारिवारिक और सार्वजनिक संबंधों के आधार पर संबंधों को

निभाने के उत्तरदायित्व या कर्तव्यों के साथ जुड़ी हुई है। इसमें सांप्रदायिकता जैसी कोई धारणा नहीं है। वेद, उपनिषद, षष्ठ दर्शन, स्मृतियां, गीता, शास्त्र, रामायण आदि सनातन हिंदू संप्रदाय, बुद्ध, महावीर, कबीर, अन्य ऋषि–मनीषी, साधु–संत और समाज सुधारक, स्वामी दयानंद सरस्वती, राजा राममोहन, राय श्रीमती एनी बेसेंट, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविंद घोष, रविंद्र नाथ टैगोर, महात्मा गांधी आदि सभी महान विभूमियों ने धर्म की मानवतावादी व्याख्या की है। धर्म के उदात्त पक्ष की सराहना की है और राजनीति में धर्म के प्रयोग की बात कही जो मानव धर्म के अनुकूल हो। इन सभी का यह मानना है कि मानव धर्म के विपरीत राजनीति बुराइयों के भंवर जाल में फंस जाएगी। अतः इनके मतानुसार राज्य मानव धर्म के अनुकूल कार्य करें। सांप्रदायिकता की सोच मानव धर्म के अनुकूल नहीं है। अतः कह सकते हैं धार्मिक कट्टरता अथवा धार्मिक सम्प्रदायवाद किसी भी धर्म के अनुकूल नहीं है।

राज्य का राजधर्मः–पंथनिरपेक्षता

महाभारत के शांति पर्व में भीष्म ने राजा युधिष्ठिर को राज धर्म की शिक्षा दी है जिसका अभिप्राय दण्ड नीति या राजनीति से है। मानव के चार पुरूषार्थ–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो चार विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित हैं इसमें व्यक्ति और समाज की सारी गतिविधियां आ जाती है। प्राचीन भारत में भीष्म ने राजधर्म या दंड–नीति को सभी धर्मो से भी ज्यादा महत्व दिया। धर्म पर राजनीति की प्रधानता कौटिल्य से मानी जाती है।[8] पाश्चात्य जगत में भी शुरू से ही धर्म का संबंध औचित्यपूर्ण एवं नैतिक कार्यो से ही रहा है। जबकि यूरोपीय इतिहास के मध्यकाल के दौर में जब धर्म के प्रधान अर्थात् पोप और राजा के बीच प्रभुत्व को लेकर शक्ति संघर्ष हुआ और अंततः पोप की पराजय हुई तब से धर्म का राजनीति में हस्तक्षेप कम हो गया। परिषदीय आंदोलन और धर्म सुधार आंदोलन ने चर्च में फैले भ्रष्टाचार को जनता के समक्ष उजागर किया इसके साथ ही चर्च को राज्य के नियंत्रण में लाने का प्रयत्न किया गया। इसके पहले पवित्र रोमन साम्राज्य में पोप का राजनीतिक कार्यो में हस्तक्षेप और प्रभुत्व बना रहा परंतु उपरोक्त घटनाओं ने स्थिति को एक दम उलट दिया। चर्च का राजनीति में हस्तक्षेप अनुचित माना जाने लगा और धर्मनिरपेक्षता की नीव पड़ी। दांते एलिघिरी, पेरिस का जान, पडूआ का मार्सिलियों, ओकमवासी विलियम, जॉन वाइकिलिफ, जॉन हस, जॉन गर्सन,

सिलवियस, और मेकियावेली ने धर्मनिरपेक्षता के विकास में सहयोग दिया। भारत में पंथनिरपेक्षता का अर्थ पंथनिरपेक्षता का यूरोपीय करण नही बल्कि भारत में पंथनिरपेक्षता अपने आप में सकारात्मक है जिसकी व्याख्या उपरोक्त वर्णित है।

जिस प्रकार विभिन्न वाद्य–यंत्र अपने अलग–अलग भूमिका निभाते हुए भी उत्तम समन्वय स्थापित करते हुए एक मधूर संगीत उत्पन्न करते हैं, ठीक उसी प्रकार भारत में विविधता में एकता भारत की सुंदर पहचान है। विभिन्न प्रकार के विचार, मत, संप्रदाय और संस्कृति के लोग अपनी–अपनी उत्तम भूमिका निभाते हैं और देश की एकता के साथ जुड़े रहते है। ऐतिहासिक विरासत है जिसको संजोए रखने का कार्य पंथनिरपेक्षता करती है। अगर किसी एक संम्प्रदाय विशेष का सर्चस्व स्थापित करके पूरे देश को उसी के अंतर्गत संचालित करने का प्रयत्न किया जाएगा और साथ ही दूसरे मत अथवा समुदायों के प्रति भेदभाव का रवैया अपनाया जाएगा तो दूसरे समुदाय में असंतोष उत्पन्न हो सकता है इसलिए जरूरी है कि भारत में पंथनिरपेक्षता के महत्व को समझना होगा। राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने नागरिकों में किसी प्रकार का भेदभाव न करें। वह सब के साथ के साथ न्याय करें जो कि पंथनिरपेक्षता का मूल विचार है।

निष्कर्ष

संप्रदायवाद और धार्मिक कट्टरता धर्म की गलत व्याख्या पर आधारित है। इसका मकसद संप्रदाय विशेष के लोगों को गुमराह करके कुछ लोगों के द्वारा अपने पक्ष में जन समर्थन जुटाकर सत्ता प्राप्त करना होता है। दूसरे समुदायों के खिलाफ नफरत पैदा करके अपने पक्ष में मतो का ध्रुवीकरण किया जाता है। वास्तविक धर्म मानव धर्म होता है दुनिया के सभी धर्म, धर्म के मानवीय स्वरूप पर अत्यधिक जोर देते है। सच्चा धार्मिक व्यक्ति वही है जो लोगों में सहिष्णुता, प्रेम, सत्य, ईमानदारी, शांति और समृद्धि जैसे मानवीय गुणों पर आधारित मानवतावादी धर्म का समर्थन करें। लोकतांत्रिक राज्य में पंथनिरपेक्षता राज्य के वास्तविक राजधर्म का प्रतीक है। राज्य का धर्म हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, जैन और बुद्धिस्ट आदि ये सब नहीं होता है अपितु राज धर्म होता है। राजधर्म सभी का कल्याण और सब के साथ न्याय का प्रतीक है। राज्य का राजधर्म पंथनिरपेक्षता के अनुकूल धारणा है। भारत

के संदर्भ में यह कहा जाएगा कि जहां विविधतापूर्ण संस्कृति है और इस विविधता में एक उत्पन्न करने के लिए बेहतर समन्वय और सामंजस्य की जरूरत जिससे देश की एकता और अखंडता अक्षुण रहे तो इसलिए पंथनिरपेक्षता का दृष्टिकोण सबसे अधिक न्याय संगत है। धर्म की वास्तविक व्याख्या कट्टर सांप्रदायिकता के अनुरूप नहीं है बल्कि मानव धर्म और मानवीय गुणों के अनुरूप है जहां यह पंथनिरपेक्षता के राजधर्म की विरोधी नहीं अपितु पूरक है।

संदर्भ

1. *चन्द्र सुधीर (2011). 'गॉधी एक असम्भव सम्भावना', राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, पृ. सं.46*
2. *फड़िया डॉ. बी. एल. एवं जैन डॉ. पुखराज (2011). 'भारतीय शासन एवं राजनीति', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृ. सं. 423–424*
3. *बसु दुर्गा दास (2012). 'भारतीय संविधान का परिचय', लेक्सिस नेक्सिस बटरवर्थ्स वाधवा प्रा. लि. नागपुर, पृ. सं. 21*
4. *त्रिपाठी प्रो. श्री प्रकाश मणि (2013). 'समकालीन राजनीतिक चिन्तन', प्रत्यूष पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ. सं. 402*
5. *तिलक बाल गंगाधर (1915). 'गीता रहस्य', डायमण्ड बुक्स प्रथम संस्करण 22 अक्टूबर, 2021, नई दिल्ली, पृ. सं. 59*
6. *डिक्सनरी.कैमब्रिज.ऑर्ग*
7. *श्रीमद्भागवतगीता 4.13 (सं0 2053). 171वां संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. सं. 75*
8. *गाबा ओम् प्रकाश (2020). 'भारतीय राजनीति–विचारक', नेशनल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृ. सं. 29 एव 39*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 160-168

भारत में समान न्याय तक पहुंच में समस्यायें एवं समाधान

*मोहम्मद इरशाद**
*डॉ० मोहम्मद शाहिद***

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में 'भारत में समान न्याय तक पहुंच में समस्याएं एवं समाधान' के सम्बन्ध में सर्वेक्षणात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध किया गया है। इसमें समान न्याय तक पहुंच में होने वाली उन बाधाओं का उल्लेख किया गया है जिससे कि लोगों को न्याय से वंचित होना पड़ता है। इस शोध के माध्यम से न्याय तक पहुंच के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और पारिवारिक समस्याओं का उल्लेख किया गया है। इन समस्याओं के समाधान के लिए सामाजिक दायित्व, प्रशासनिक उत्तरदायित्व, प्रो बोनो स्कीम, आर्थिक सहायता तथा न्याय के प्रति विश्वास बनाएं रखने के लिए उपयुक्त सुझाव भी दिया गया है। इस शोध पत्र से सम्बन्धित सूचनाओं को विभिन्न प्रकार के संदर्भित साहित्य, सत्यापित सूचना श्रोतों से ग्रहण किया गया है जिसके अन्तर्गत पत्र पत्रिकाएं, समाचार पत्रों, विद्वानों द्वारा लिखी गई सन्दर्भित साहित्यिक पुस्तकें शामिल हैं। अतः इस शोध पत्र को पढ़कर पाठकगण लाभावन्तित होंगें तथा इसमें हुई त्रुटि के लिए महत्वपूर्ण सुझाव देंगें।

भूमिका

'न्याय' (Justice) अपने व्यापक अर्थ में, यह विचार या संप्रत्यय है कि लोगों को वह मिले जिसके वे पात्र या योग्य हो, अर्थात् नैतिकता, तर्कसंगतता, कानून, धर्म, समानता और निष्पक्षता पर आधारित नैतिक शुद्धता या ठीक होने की स्थिति को न्याय कहते है।[1] भारतीय संविधान के (भाग—3) में मौलिक अधिकारों के तहत अनुच्छेद 14 के अंतर्गत विधि के समक्ष समता एवं विधियों के समान संरक्षण का उपबंध किया गया है। संविधान का यह अनुच्छेद भारत

* शोध छात्र, राजनीति विज्ञान, डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, आयोध्या, उ.प्र.
** प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, गनपत सहाय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुल्तानपुर, उ.प्र.

के राज्य क्षेत्र के भीतर भारतीय नागरिकों एवं विदेशी दोनों के लिए समान व्यवहार का उपबंध करता है। भारतीय संविधान के (भाग–4) में नीति निर्देशक तत्वों के तहत समान न्याय के लिए निम्न प्रावधान किए गए हैं–अनुच्छेद (39क) समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता।[1] इसका अर्थ यह है कि राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए। उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से राज्य निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भी भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त करने का उल्लेख किया गया है।[2] संविधान में उल्लेखित उपर्युक्त विधान को ध्यान में रखकर सरकार द्वारा लोगों को न्याय तक पहुंच बनाने के लिए निम्न प्रयास किए गए– न्याय विभाग फास्ट ट्रैक न्यायालयों के माध्यम से हाशिए पर पड़े हुए लोगों के त्वरित न्याय दिलाने का निरन्तर प्रयास कर रहा है। 14वें वित्त आयोग ने 1800 फास्ट ट्रैक न्यायालयों की स्थापना की अनुशंसा वरिष्ठ नागरिकों, बच्चों, दिव्यांगजनों के विरूद्ध जघन्य अपराधों और एचआईवी/एड्स और जीवन के लिए संकटपूर्ण अन्य रोगों से ग्रसित वादकारों तथा भूमि अधिग्रहण एवं सम्पत्ति/किराया विवादों से जुड़े 5 वर्ष से अधिक अवधि से लंबित मामलों के समाधान के लिए की थी जिसमें से 956 फास्ट ट्रैक न्यायालयों ने 22 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में काम करना शुरू कर दिया है। अपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2018 के अनुपालन में बलात्कार और लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम (पॉक्सो–एक्ट) के लंबित मामलों की त्वरित सुनवाई और समाधान के लिए विभाग एक केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना चला रहा है। शुरू में यह योजना मात्र एक वर्ष अर्थात् मार्च, 2021 तक के लिए थी। इस योजना में निर्भया कोष से विशिष्ट पॉक्सो न्यायालयों सहित 1,023 फास्ट ट्रैक विशेष न्यायालयों की स्थापना के लिए राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों को केंद्रीय सहायता दी जाती है। इस योजना में 28 राज्य/केंद्र शासित प्रदेश शामिल हो चुके हैं। कुटुंब न्यायालय अधिनियम 1984 के प्रावधानों के अंतर्गत विवाह एवं परिवारिक मामलों और उनसे संबंधित विवादों में सुलह एवं इनके शीघ्र निपटारे

को बढ़ावा देने के उद्देश्य से राज्य सरकारों ने अपने संबंधित उच्च न्यायालयों से परामर्श करने के बाद कुटुंब (फैमिली) न्यायालय स्थापित किए हैं। 14वें वित्त आयोग ने राज्यों में कुटुंब न्यायालयों की स्थापना सहित न्यायिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए न्याय विभाग के प्रस्तावों को अपना समर्थन दिया है। इस समय 26 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में 731 कुटुंब न्यायालय संचालन में हैं। 'भारत में न्याय के लिए समग्र पहुंच पर नवाचार समाधान करना' (दिशा) जिससे लोगों की न्याय तक पहुंच के लिए व्यापक, एकीकृत, प्रोद्योगिकी आधारित नागरिक केंद्रित समाधान उपलब्ध कराने के लिए विधि एवं न्याय मंत्रालय के न्याय विभाग द्वारा वर्ष 2021–26 के लिए बनाई गई है। इस योजना में नागरिकों की सुविधाओं के लिए टेली लॉ, न्याय बंधु, न्याय मित्र और कानूनी साक्षारता एवं जागरूकता जैसे कार्यक्रमों का आपसी विलय किया गया है। टेली लॉ कार्यक्रम के माध्यम से सरकार देश के 36 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के 669 जिलों में निर्धनों एवं जरूरत मंद लोगों को गांवों में वीडियों कान्फ्रेंसिंग और टेलीफोन जैसी तकनीकी सुविधाओं और जन सेवा केंद्रों के माध्यम से कानूनी परामर्श और कानूनी सहायता जरूरत मंद लोगों को स्थापित अधिवक्ता पैनल से दिलवाती है। इसके अलावा अधिवक्ताओं से सीधे परामर्श के लिए एक मोबाइल एप्लीकेशन भी विकसित की है। वर्ष 2020 में शुरू की गई प्रो बोनो क्लब योजना जिसमें योग्य कानूनी छात्रों को प्रो बोनो अधिवक्ताओं को सहायता देने के लिए शुरू की गई थी ताकि युवा एवं उभरतें हुए अधिवक्ता निःस्वार्थ भाव से विधिक सेवा करे। न्याय विभाग भी प्रो बोनो (निःस्वार्थ विधिक सेवा) के अधिवक्ताओं का पैनल बनाने के लिए कार्य कर रहा है। इस कार्य के लिए एक व्यवस्थिति डेटाबेस बनाने हेतु बेव और मोबाइल ऐप भी विकसित किया गया है। जिला न्यायालयों में एक दशक से अधिक पुराने लंबित मुकदमों में कमी लाने के लिए न्यायमित्र कार्यक्रम भी शुरू किया गया है। लोक अदालतें न्यायालयों में पड़े लम्बित मामलों के निपटारे का उपयुक्त विकल्प साबित हो रही हैं। जिसमें दोनों पक्ष को आपसी सहमति के द्वारा मामलों को निपटारा किया जाता है। जिसमें किसी भी तरह का कोई खर्च नही आता है। लोक अदालतों के माध्यम से सरकार पिछले 5 वर्षों में 437.97 लाख से अधिक मुकदमों को सुलझायी है। कोविड–19 वैश्विक महामारी के दौरान ई–लोक अदालतों के माध्यम से 28 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में

28 लाख 18 हजार मामलों पर विचार किया और 9 लाख 53 हजार से अधिक मामलों का समाधान किया।[3] भारत सरकार द्वारा किए गए उपर्युक्त प्रयासों के बावजूद भी लोग न्याय जैसी गम्भीर समस्यां मे उलझे हुए है। लोगों को न्याय पाना तो दूर न्याय तक पहुंच भी नही बन पाई है। न्याय तक पहुंच से सम्बन्धित आम जन मानस की इन्ही प्रमुख समस्याओं को निम्नलिखित बिंदुओं पर वर्णन करने का प्रयास किया जा रहा है –

1. सामाजिक समस्याएं

भारत की जनगणना रिपोर्ट 2011 के अनुसार भारत की कुल साक्षारता 74.04 प्रतिशत है। जिसमें से पुरूष साक्षारता 82.14 प्रतिशत तथा महिलाओं का 64.46 प्रतिशत है। भारत जैसे विशाल देश में जिसकी जनसंख्या 1 अरब 21 करोड़ है।[4] अशिक्षा का यह अनुपात बहुत अधिक ही है। भारत मे अब भी अधिकतर लोग अशिक्षित है जिसके कारण न्यायिक प्रक्रिया से सम्बन्धित लोगों से कैसे व्यवहार किया जाता है तथा न्यायिक प्रक्रिया कैसे होती है जैसी व्यवहारिक चीजों को समझने में कठिनाइयां आती है। अशिक्षित होने के कारण वे ये भी नही समझ पाते कि उनके साथ अन्याय हुआ है कि नही। इन अशिक्षित व्यक्तियों को जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत परेशानियां उठानी पड़ती है। एक तो उनको न्यायिक शब्दावली समझ मे नही आती है दूसरे जानकार व्यक्ति इन्हें जानकारी देने से कतराते है क्योंकि इनके पास धन की कमी होती है और इन्हें न्यायिक शब्दावली समझने मे बहुत अधिक समय लगता है। भारत में कानून काफी व्यापक एवं जटिल है जिसे एक शिक्षित व्यक्ति भी आसानी से समझ नही पाता है। उस पर जब भी अन्याय होता है तो वह भी जटिल न्याययिक पुस्तकों मे उलझने की वजाय अन्याय को सहना उचित समझता हैं। शिक्षित व्यक्ति को न्याय से अलगाव को देखकर अशिक्षित व्यक्ति भी न्याय पानें की इच्छा छोड़ देता है। जिससे लोगों में एक धारणा बन जाती है कि न्याय पाने के लिए मुकदमों में उलझना सही नही है और इसी लिए वे अन्याय को आसानी से सह जाते है। जिसे।न्याय के प्रति एक बाधा के रूप में जाना जाता है। न्याय पाने में सबसे बड़ी बाधा सामाजिक दुर्भावना है जो कि समाज में हर समय व्याप्त रहती है। जिसमे समाज के शक्तिशाली वर्ग कमजोर वर्गों या कुछ वर्गों के प्रति अपनी राय बना लेते है कि अमुक वर्ग

अपराधी प्रवृत्ति के है और उन्हे कठोर से कठोर सजा मिलनी चाहिए। जबकि पीड़ित व्यक्ति वास्तविक रूप से अपराधी प्रवृत्ति का न भी हो तब भी उसे ऐसी सामाजिक दुर्भावना से गुजरना पड़ता है। अन्याय से पीड़ित व्यक्ति को समाज से सहयोग की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। लेकिन समाज अज्ञानतावश या दुर्भावनावस अपराधी की सहायता करने लगता है। जिससे अपराधी, पीड़ित व्यक्ति पर और अधिक दबाव बनाने की कोशिश करने लगता है ताकि पीड़ित व्यक्ति न्यायलय की शरण न ले और उन्हे उनके अपराध की सजा भी न मिले। पीड़ित व्यक्ति भी अधिकतर दबाव में आकर टूट जाते है। उन्हें न्यायलय की शरण न लेना उचित जान पड़ता है अतः सामाजिक सहयोग का अभाव भी न्याय तक पहुंच में बाधा है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश मे जहां एकतरफ अधिकांश जनसंख्या वृद्धजनों, कुपोषितों, विकलांगों, शरीरिक और मानसिक रूप से अक्षम व्यक्तियों से भरी पड़ी है।[5] जिन्हे न्याय पाने के लिए सहारे की अति आवश्यकता होती है।

2. आर्थिक समस्याएं

न्याय पाने में बहुत अधिक धन की आवश्यकता होती है जिसमें न्यायलय फीस, वकील फीस, दस्तावेजों को बनवाने में लगने वाले धन तथा न्याय प्रक्रिया में बहुत अधिक आना जाना पड़ता है जिसमे बहुत आधिक किराया लगता है। अतः बहुत अधिक धन की बरबादी होती है। भारत में आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों, बेरोजगारों, असहायों की बहुत अधिक भरमार है। हालांकि सरकार द्वारा इन लोगों के लिए निःशुल्क विधिक सहायता का उपबन्ध किया गया है। लेकिन अब भी ये सुविधाएं इन लोगों की पहुंच से काफी दूर है। न्याय जैसी खर्चीली व्यवस्था को सहन न कर पाने के कारण पीड़ित व्यक्ति न्याय तक पहुंच में असमर्थता व्यक्त करता है। हालांकि सरकार द्वारा आर्थिक सहायता देकर गरीबों असहायों आदि को समाज से उन्हे जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है, सस्ती उच्च शिक्षा, सरकारी निःशुल्क चिकित्सा सेवाएं आदि जैसी आधारभूत सेवाएं मुफत मे प्रदान की जा रही है ताकि वे समाज से जुड़ सकें। भारत में निर्धनता इस तरह व्याप्त है कि संसार के निर्धनों में हर तीसरा व्यक्ति भारतीय ही है।[6] अतः एक न्यायपूर्ण समाज विकसित करने के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता के अलावा लोगों की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक है।

3. राजनीतिक समस्याएं

न्याय पाने के लिए पीड़ित व्यक्ति को कानूनी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है जो कि एक जटिल प्रक्रिया है। जिसमें बहुत सारे दस्तावेजों को बनवाना पड़ता है। अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा जानबूझकर कानूनी प्रक्रिया को और अधिक जटिल बना दिया जाता है जिससे पीड़ित व्यक्ति को बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। न्याय एक संवेदनशील विषय है जिसमे अन्याय करने वाला व्यक्ति पीड़ित व्यक्ति से बहुत अधिक शक्तिशाली होता है और पीड़ित व्यक्ति को उसके खिलाफ होनें में बहुत अधिक अशुरक्षा महसूस होती है। अपराध करने वाले व्यक्ति की राजनीतिक पकड़ मजबूत होती है। वह आर्थिक रूप से सक्षम भी होता है तथा समाज में उसका बोलबाला होता है। जिससे लोगों को अपने पक्ष मे गवाह पेश करने में कठिनाइयां नही होती है। जबकि कमजोर व्यक्ति न ही आर्थिक न ही राजनीतिक एवं सामाजिक रूप से मुकदमों को लड़नें में सक्षम ही होता है। शक्तिशाली व्यक्ति पीड़ित व्यक्ति को शारीरिक प्रताड़ना, डर एवं प्रलोभन दिखाकर अपने पक्ष में करने की भरपूर कोशिश करता है जिससे पीड़ित व्यक्ति मजबूर होकर अपना पक्ष वापस लेता है तथा अपने आप को न्याय से वंचित करता है। वोहरा समिति रिपोर्ट में भी इस बात का उल्लेख बहुत ही व्यापक ढंग से किया गया है कि 'भारत में राजनीति के अपराधीकरण और अपराधियों, राजनेताओं और नौकरशाहों के बीच सांठगांठ होती है। इसमें उन अपराधिक गिरोहों की भी चर्चा की गई जिन्हें सभी पार्टियों के राजनेताओं का संरक्षण प्राप्त था और सरकारी अधिकारियों का संरक्षण प्राप्त था।'[7] कानूनी प्रक्रिया एवं कानून इतने जटिल होते है कि पीड़ित व्यक्ति कानून के बारें में एवं कानूनी प्रक्रिया के बारें में जब भी कोई जानकारी सम्बन्धित आधिकारी या कर्मचारी से जानना चाहता है तो उसे तुरन्त जानकारी न देकर बाद में आने, समयाभाव का हवाला देने तथा डांटने फटकारने तक का सामना करना पड़ता है।[8] जिससे पीड़ित व्यक्ति न्याय पाने के प्रति उदासीन हो जाता है जो कि न्याय पाने में एक बाधा है।

4. पारिवारिक समस्याएं

लोगों की आम बोलचाल की भाषा में कानून तथा न्याय के प्रति कुछ नकारात्मक सोच लोगों द्वारा फैला दी जाती है। जिससे पीड़ित व्यक्ति को न्याय तक पहुंच में सकारात्मक दष्टिकोण नही बन पाते हैं। पीड़ित व्यक्ति

थोड़ी सी कठिनाइयों में न्याय के प्रति अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित कर देते है। उनमें यह विचार घर कर जाता है कि न्याय उनके लिए नही बना है। भारत की न्यायिक प्रक्रिया इतनी धीमी है कि न्याय पाने के लिए व्यक्ति को 20 से 30 वर्ष तक का समय लग जाता है इतने अधिक समय तक न्याय की आस लगाना उस व्यक्ति के लिए कठिन है जो कि खुद दूसरे पर निर्भर है। अक्सर शारीरिक रूप से अक्षम व्यक्ति अपने सगे सम्बन्धियों द्वारा ही प्रताड़ित किए जाते है और उनका साथ देने के लिए कोई और विकल्प उनके पास नही होता है। जिससे वे न्याय पानें की आशा छोड़ देते हैं। विभिन्न लोगों द्वारा न्याय की भिन्न–भिन्न परिभाषाएं दी जाती हैं। जिससे पीड़ित व्यक्ति जो कानून की कम समझ रखते है उन्हें कानून की थोड़ी बहुत जानकारी रखने वाले लोगों द्वारा आसानी से बेवकूफ बनाए जाते है। उन्हें न्याय पाने के लिए उचित मार्ग से विचलित किया जाता है जो कि न्याय पाने मे एक बाधा है। खासकर उन मामलों में जहां विशेष संरक्षित कानून बनाएं जातें है जिसमें विवाद की स्थिति में दोनों पक्षों में समानता का दृष्टिकोण एवं न्यायिक संतुलन स्थापित किये जाने की जरूरत है। उदाहरण के तौर पर लैंगिक समाजिक एवं राजनीतिक न्याय स्थापित करने से संबंधित जहां भी विशेष संरक्षित कानून बनाए गए हो। न्यायिक प्रक्रिया में बहुत अधिक समय लगता है। खासकर भारत मे जहां न्यायिक प्रक्रिया की कोई समय सीमा तय नही है। जिससे पीड़ित व्यक्ति को न्याय पाने में 20 से 30 वर्ष तक का समय लग सकता है। इतने अधिक समय तक मुकदमे लड़ना खासकर उस व्यक्ति के लिए जो परिवार चलाने का एक मात्र माध्यम है, असम्भव है। क्योंकि ज्यादातर समय न्याय पाने में लगाने से वह व्यक्ति अपने परिवार का ठीक तरह से ध्यान नही दे पाता है। जिससे परिवारिक असंतुलन उत्पन्न होता है जो कि न्याय पाने की खुशी से भी ज्यादा खतरनाक साबित होता है। जिसके कारण पीड़ित व्यक्ति न्याय पाने की इच्छा नही रखना चाहता है। एक बड़ा ही मार्मिक उदाहरण एनसीईआरटी की एक पुस्तक मे मचल लालुंग नामक व्यक्ति के रूप में मिलता है जो कि 23 साल का था उस पर आरोप था कि उसने किसी व्यक्ति को गम्भीर रूप से चोट पहुचाई है जुलाई 2005 में जब उसे छोड़ा गया तो वह 77 वर्ष का हो चुका था इस तरह 54 वर्षो मे उसके मुकदमों की एक बार भी सुनवाई नही हुई।[९]

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध में उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि लोगों की न्याय तक पहुंच में कई सारी बाधाएं है जिससे पीड़ित व्यक्ति को परिवार और समाज से सहयोग का अभाव मिलता है। पुलिस और प्रशासन का रवैया अभी भी अनुकूल नही हो पाया है। लोगों में निरक्षरता और कानून के प्रति अज्ञानता भी न्याय मे बाधा साबित हो रही है। लोगों की कमजोर आर्थिक स्थिति आज सबसे बड़ी विकट समस्या के रूप में व्याप्त है। हालांकि सरकार द्वारा निःशुल्क विधिक सहायता का उपबन्ध किया गया है जो कि अभी तक ज्यादातर लोगों की पहुंच के बाहर ही प्रतीत होती है। अतः एक समान न्यायपूर्ण समाज विकसित करने के लिए समाज में व्याप्त सभी समस्याओं पर ध्यान देने की जरूरत होती है। जिसमें पक्षपात रहित समाज, परिवारिक सहयोग, सक्षम आर्थिक स्थिति, सुचारू प्रशासनिक जवाबदेयता, शिक्षा तथा लोगों में न्याय की प्राप्ति के प्रति प्रोत्साहन बनाएं रखने की आवश्यकता होती है। न्याय तक पहुंच सरकार की जिम्मेदारी के अलावा समाज, परिवार का सहयोग तथा पीड़ित व्यक्ति में न्याय के प्राप्ति के प्रति उत्सुकता भी होनी चाहिए।

सुझाव

व्यक्ति की शिक्षा ही उसके न्याय तक पहुंच की दूरी तय करती है। जो व्यक्ति जितना अधिक शिक्षित होगा कानून जैसी जटिल प्रक्रिया को समझने मे उसे उतनी अधिक आसानी होगी। इसके अलावा पुलिस और कानून के बारे में उसे जागरूक भी होना चाहिए नही तो उसकी सारी शिक्षा व्यर्थ हो जाएगी। पुलिस और प्रशासन को भी पूरी जिम्मेदारी के साथ पीड़ित व्यक्ति के साथ होना चाहिए जिससे पीड़ित व्यक्ति को न्याय मिल सके। इसके अलावा पुलिस और प्रशासन को लोगों में न्याय से लड़ने के लिए प्रोत्साहित करते रहना चाहिए जिससे पीड़ित व्यक्ति में न्याय के प्रति एक विश्वास बना रहें। समाज का भी दायित्व बनता है कि वह निष्पक्ष होकर पीड़ित व्यक्ति का साथ दे तथा समाज में व्याप्त पक्षपातपूर्ण रवैये को त्यागकर सभी लोगों के साथ समान व्यवहार करें। जिससे एक सुदृढ़, निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण समाज का विकाश हो सके।

सन्दर्भ

1. *गाबा, ओ. पी. (2011). राजनीतिक सिद्धांत का एक परिचय. मैकमिलन पब्लिशर्स इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. सं. 416।*
2. *बसु, डी. डी. (2012). भारतीय।संविधान का परिचय. लेक्सिस नेक्सिस बटरवर्थ वाधवा, नागपुर, पृ. सं. 87 एवं 152।*
3. *अग्रवाल आर. सी. एवं भटनागर डॉ. महेश (2010). भारतीय संविधान का विकास तथा राष्टीय आंदोलन, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली, पृ. सं. 253।*
4. *भारत (2022). सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार. प्रकाशन विभाग, पृ. सं. 113,114।*
5. *भारत की जनगणना रिपोर्ट, 2011।*
6. *आहूजा राम (2011). सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ. सं. 47,48।*
7. *मिश्र एस. के. एवं पुरी वी. के. (2012). भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई, पृ. सं. 698, 699*
8. *वोहरा समिति की रिपोर्ट अक्टूबर, 1993।*
9. *जैन डॉ. पुखराज एवं फड़िया डॉ. बी. एल. (2011). भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ. सं. 760।*

9\. *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्. (2006). भारत का संविधान सिद्यांत एवं व्यवहार, पृ. सं. 27।*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 169-171

अर्वाचीन संस्कृतनाट्यकर्त्री : डॉ० नलिनी शुक्ल और उनके रुपक

कु० अर्चना पाण्डेय *

संस्कृत रचना की अजस्र धारा का प्रवर्तन महाकवि वाल्मीकि की हृद्‌गत करुण रस के निःस्यन्दन से प्रारम्भ होकर वर्तमान में गतिमान रहा है, इसके सातत्य में हमारे संस्कृत कवियो ने अनेक विधाओ में अपने कवयन द्वारा श्रीवृद्ध किया है, जिसमें पद्यकाव्य, गद्यकाव्य, गीतिकाव्य, चम्पूकाव्य, रुपक, व्यंग्य साहित्य, रेडियो , नाटक तथा नानाविध नवगीत इत्यादि रचनाओ का बाहुल्य रहा है। रुपक साहित्य के अन्तर्गत समकालीन कवि एवं कवयित्रियों ने महनीय योगदान करते हुए यह सिद्ध किया है कि वर्तमान में भी संस्कृत कवि कर्म अपनी श्लाघनीय स्थिति में है। न केवल कवि अपितु कवयित्री ने भी नाट्य कृतियों के रचना क्षेत्र को अपने रचना धर्म से गतिमान बनाया है। इन नाट्यकर्त्रियो में डॉ0 नलिनी शुक्ला का नाम बड़े आदर से ग्रहणीय रहा है।

प्रस्तुत शोध–पत्र का विवेच्य डॉ0 नलिनी शुक्ला एवं उनकी नाट्य–कृतियो की सूक्ष्म परिचयात्मक गवेषणा उपस्थित करना अभिप्रेत है, जिससे नाट्यकर्त्री एवं नाट्य कृतियो का संज्ञान संस्कृत जगत को प्राप्त हो सके।

परिचय – डॉ0 नलिनी शुक्ला का जन्म 8 जून 1940 ई0 में उ0 प्र0 के इटावा जनपद में हुआ था। इनके पिता पं0 इन्द्रदत्त शुक्ल तथा माता श्रीमती पद्मावती थीं। बाल्यावस्था में ही इनके पिता का निधन हो जाने के कारण मॉ के संरक्षण में ही इनका विकास हुआ। शैशव से ही इनका स्वभाव सहिष्णु और संवेदनशील बना। अपने जीवन में डॉ0 नलिनी अनेक कष्ट तथा दुःखो को सहकर भी यह अपने पथ से भ्रष्ट नही हुई और कर्त्तव्य विमुख भी नही हुई। श्री रामस्वरुप शुक्ल से इनका विवाह हुआ, जो चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कानपुर में निदेशक, निर्माण अभियन्ता थे। इण्टरमीडिएट तक डॉ0 नलिनी विज्ञान की छात्रा रही। बी0ए0 में प्रथम बार संस्कृत पढ़ी। संस्कृत साहित्य में एम0ए0 परीक्षा उत्तीर्ण कर स्वर्ण पदक प्राप्त किया। पातंजल योग सूत्र का विवेचनात्मक अध्ययन इस शोध शीर्षक पर इन्होने पी0–एच0डी0 उपाधि प्राप्त की। तदनन्तर 'यौगिक विभूतियो का स्वरुप निरुपण एवं भागवत पुराण में उनका निदर्शन–एक अध्ययन' (वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में) इस शोध विषय पर इन्होने डी0 लिट्0 की उपाधि प्राप्त की। डॉ0 नलिनी शुक्ला को संस्कृत की विशिष्ट सेवाओ के लिए अनेक मानद उपाधियॉ तथा विविध सम्मान प्राप्त हुए है। सन् 1975 ई0,

* शोधच्छात्रा, संस्कृत एवं प्राकृत भषा विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

सन् 1976 ई0, सन् 1977 ई0, सन् 1980 ई0 तथा सन् 1981 ई0 में उत्तर–प्रदेश संस्कृत अकादमी से डॉ0 श्रीमती शुक्ल को पुरस्कार प्राप्त हुए है।

सन् 1480 ई0 में उद्बोधन–समिति, कानपुर उ0 प्र0 द्वारा उन्हे सुस्कृत भारती की उपाधि तथा सन् 1981 ई0 में संस्कृत अध्यापक परिषद् पूना और मध्यप्रदेश विद्रत्परिषद् एवं सन् 1982 ई0 में जबलपुर द्वारा भी सम्मानित किया गया। सन् 1983–1989 ई0 तक डॉ0 नलिनी केन्द्रीय साहित्य अकादमी में संस्कृत परामर्शदात्री समिति की सदस्य का कार्यवहन किया है। सन् 1983 से सन् 1988 ई0 तक इण्डियन राइटर्स यूनियन केरल प्रदेश की ओर से कन्ट्रीव्यूशन ऑफ राइटर्स अू इण्डियन मूवमेण्ट के प्रकाशन हेतु निदेशक, सम्पादक और लेखिका आदि पदो पर नियुक्त की गई। अप्रैल 1990 ई0 में इन्हें आनरटी मेम्बर आफ बायोग्राफिकल सेण्टर एडवाइजरी काउन्सिल, कैम्ब्रिज, इंग्लैण्ड की सदस्य बनाया गया था। संस्कृत प्रचार मंच, कानपुर की उपाध्यक्ष, संस्कृत दैनिक पत्र ''नवप्रभातम्'' शारदानगर, कानपुर की परामर्शदात्री समिति की सदस्य का कार्यभार भी सॅभाला था। डॉ0 नलिनी जी 15 से अधिक परिषदो और समितियों की अंशकालिक अथवा आजीवन सदस्य के रुप में विविध स्थलो पर सम्मानित रही।

रचनायें – ज्ञातव्य है कि डॉ0 नलिनी शुक्ल ने संस्कृत एवं हिन्दी उभय भाषा में मौलिक रचनायें किया है, जिसमें हिन्दी माध्यम में विरचित कृतियों के अर्न्तगत क्रमशः नीरवगान (गीतकाव्य); कल्लोलिनी(गीतिकाव्य) 31 भारत रत्न जवाहर (खण्डकाव्य) 4 पातंजल योगसूत्र का विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन(शोध ग्रन्थ आदी रचनाऍ हैं।) हिन्दी एवं संस्कृत के अतिरिक्त इनकी अग्रेजी भाषा में दो कृतियॉ भी है जिनके शीर्षक क्रमशः–

1. "Contribution of writers to Indian freedom movement"
2. "Sanskrit as a conservatory of national integration and its international value"

डॉ0 नलिनी ने उर्दू में भी रचनाये किया है इनकी गजल नजमों का संग्रह 'नजराना' नाम से ज्ञेय है। किन्तु मौलिक रुप में डॉ0 नलिनी जी संस्कृत की कवयित्री ही है। इनकी संस्कृत में अग्रलिखित प्रकाशित रचनाऍ है–

(1) प्रकीर्णम् (2) भावांजलि (3) वाणीशतकम् (4) कथासप्तकम् (5) निर्झरिणी (6) संस्कृत पत्रिकासु राष्ट्रिय–भावना (7) तर्कभाषा समीक्षण (8) स्वरुप लहरी (9) कथाम्बरा (10) यज्ञात्म भारत वीणा (11) राष्ट्र भारती (12) उन्मेषः इनके अतिरिक्त इस नाट्यकर्त्री की तीन महनीय नाट्यकृतियॉ हैं–

(1) राधानुनय – यह आधुनिक संगीतनाट्य (ऑपेरा) है। इनके चार दृश्यो में कृष्ण के साथ राधा नृत्य, राधा का भान तथा कृष्ण के द्वारा अनुनय

क्रियायें संगीत एवं नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत की गयी हैं। इसका शारदा पत्रिका, पूना से प्रकाशन हुआ है।

(2) पार्वतीतपश्चर्या – यह तीन दृश्यो का संगीत प्रधान रुपक है। इसमें शिव द्वारा मदन दहन, रति का विलाप, शिव की प्राप्ति के लिए प्रार्वती की घोर तपस्या तथा शिव का प्रसन्न होना आदि प्रसंग रुपायित हैं।

(3) मुक्तिमहोत्सव – यह तीन दृश्यो में विभक्त आधुनिक एकांकी हैं। इसमें स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित ध्वजारोहण पर महिलाओं की स्वतन्त्रता के प्रश्न को उठाया गया है। यह रुपक अभी तक अप्रकाशित है।

'पार्वतीतपश्चर्या' तथा 'मुक्तिमहोत्सव' आधुनिक नारी चेतना से युक्त है। विवेच्य नाट्यकर्त्री की नाट्य कला सहज गुणसम्पन्न तथा कोमल पदावली से सम्पृक्त है। नारी जगत् के कटु अनुभवो को प्रस्तुत करने में इसे पूर्ण सफलता प्राप्त परिलक्षित होती है। पूर्व विवेचनो के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अर्वाचीन संस्कृत नाट्य साहित्य के विरचन में महनीय स्थान रखता है। जिसमें डॉ0 नलिनी शुक्ला और इनकी नाट्यकृतियॉ अर्वाचीन संस्कृत नाट्य साहित्य में अपूर्व है। साथ ही इसका संस्कृत नाट्य साहित्य के शोध–क्षेत्र के अन्तर्गत अनेक विध आयामो में अध्ययन एवं अनुसंधान किए जाने की नितान्त अपेक्षा भी रही है। डॉ0 नलिनी शुक्ला एक सिद्धहस्त कवि एवं नाट्यकर्त्री के रुप में अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में समादृत है।

सन्दर्भ

1. *संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास–1–3 खण्ड, ले0प्रो0 राधा बल्लभ त्रिपाठी, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन नई दिल्ली सन् 2018 ई0*
2. *आधुनिक संस्कृत नाटक–डॉ0 रामजी उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी सन् 1996 ई0,*
3. *नाट्यशास्त्रम्, भरतमुनि प्रकाशक अनु0सं0 सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी सन् 1992 ई0*
4. *दशरुपक, धनन्जय, दुर्गा आफसेट प्रेस, गढ़रोड, मेरठ, सन् 2000 ई0*
5. *संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास ले0– कपिलदेव द्विवेदी, प्रकाशक रामनारायण, लाल विजय कुमार, कटरा इलाहाबाद सन् 2002 ई0*
6. *ऋतम्, संस्कृतपरिषद् महात्मा गांधी मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ*
7. *मङ्गलम्, डॉ0 दिनकर त्रिपाठी, प्रकाशन इलाहाबाद, वाल्यूम–2*
8. *दृक्, आवास विकास कालोनी, झूँसी, इलाहाबाद अंक–13*

मङ्गलम् - वर्ष 14(01) भाग-XXVI फरवरी 2023
ISSN-0976-8149 पृ. 172-184

सामाजिक न्याय बनाम डिजिटल डिवाइड : सर्वे आधारित अवलोकनात्मक विश्लेषण

आशा *

यशस्वी शुक्ला

सारांश

आधुनिक विश्व तीव्र गतिशीलता से ओतप्रोत है क्योंकि यह युग तकनीक और सूचना एवम् प्रौद्योगिकी का युग है, जो अति परिवर्तनशील है। आज किसी देश को महाशक्ति बनने के लिए सैनिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक दृष्टि से ही शक्तिशाली होना पर्याप्त नहीं है बल्कि इससे भी परे तकनीक और सूचना एवम् प्रौद्योगिकी दृष्टि से शक्तिशाली होना अनिवार्य है, क्योंकि जो देश तकनीक और सूचना एवम् प्रौद्योगिकी रूप से महाशक्ति के रूप में खुद को स्थापित कर लेता है, वह अन्य आयामों पर स्वतः ही विजय प्राप्त कर लेगा । इसी कड़ी में प्रस्तावित शोध में भारत सरकार द्वारा भारतीय नागरिकों को तकनीकी और सूचना एवम् प्रौद्योगिकी में सशक्तिकरण के लिए चलाए गए डिजिटल इण्डिया मिशन के उद्देश्यों की पूर्ति और डिजिटल गैप को खतम करने व सामाजिक न्याय की अवधारणा को वास्तविक धरातक पर उतरने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा चलायी गयी दो योजनाओं स्वामी विवेकानंद युवा सशक्तिकरण योजना (स्मार्ट फोन, टैबलेट योजना) और मुख्यमंत्री अभ्युदय योजना का सर्वे आधारित विश्लेषण किया गया है।

शब्द संक्षेपण : *विषय सूचक पदावली; डिजिटल डिवाइड, सामाजिक न्याय, डिजिटल गैप, अभ्युदय योजना, स्मार्ट फोन, टैबलेट*

परिचय

भारत विश्व में चीन के बाद दूसरी सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है। भारत की बढ़ती जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा युवा है, युथ इन इंडिया–2022 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का 27.2 प्रतिशत जो लगभग 371.9 मिलियन युवा आबादी है जिसकी आयु 15 से 29 वर्ष है। दुनिया बदल रही है सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी आज जीवन के सभी क्षेत्रों तक पहुँच बना चुकी है। एक प्रौद्योगिकी प्रेमी जनसंख्या समय की माँग है और देश ऐसे समय का लाभ तभी उठा सकेगा जब उनकी युवा आबादी नवीन तकनीकों से सज्जित हो। सूचना एवं प्रौद्योगिकी उन सभी तकनीकों को संदर्भित करता है जिनका उपयोग दूरसंचार, प्रसारण मीडिया, बुद्धिजीवी निर्माण

---

* शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रबंधन प्रणाली व श्रव्य–दृश्य प्रसंस्करण तथा नेटवर्क आधारित नियंत्रण व निगरानी कार्य को संभालने के लिये किया जाता है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी ने वित्तीय, शैक्षिक, स्वास्थ्य सेवा क्षेत्रों को अधिक गतिशील तथा अप–टू–डेट बनाया। भारतीय समाज का एक बड़ा हिस्सा सूचना व प्रौद्योगिकी तक पहुँच प्राप्त करने में अभी भी असमर्थ रहा हैं, जिससे समाज में एक विभाजन आ गया है। तकनीकी प्राप्त व तकनीकी अप्राप्त के बीच इसी विभाजन को 'डिजिटल डिवाइड' कहते हैं। डिजिटल डिवाइड की संकल्पना समाज में एक नए प्रकार की असमानता, भेदभाव और वर्ग विभाजन को जन्म दे रही है, जिससे सामाजिक न्याय की संकल्पना को आघात पहुंच रहा है।

भारत सरकार राष्ट्रीय स्तर पर और विभिन्न राज्यों की सरकारें राज्य स्तर पर इस डिजिटल डिवाइड को पाटने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। इसी संदर्भ में भारत सरकार ने 2015 में डिजिटल इंडिया मिशन का प्रारंभ किया। ऐसे प्रयास राज्य स्तर की सरकारों ने भी अपने अपने स्तर पर प्रारंभ किए हैं जिनमें से ऐसे ही कुछ प्रयास उत्तर प्रदेश सरकार ने भी किए है। इस शोध पत्र में उत्तर प्रदेश सरकार की ऐसी ही दो योजनाओं का सर्वे आधारित विश्लेषण किया गया है। ये दो योजनाऐं है मुख्यमंत्री अभ्युदय योजना और स्वामी विवेकानंद युवा सशक्तिकरण योजना।

डिजिटल डिवाइड की संकल्पना

डिजिटल डिवाइड शब्द का प्रथम प्रयोग 1990 के दशक में हुआ था। डिजिटल डिवाइड शब्द समाजों व राष्ट्रों के बीच असमानताओं को संदर्भित करता है, इसमें प्रौद्योगिकी तक भौतिक पहुँच में असंतुलन भी शामिल है, साथ ही एक डिजिटल नागरिक के रूप में प्रभावी ढंग से भाग लेने के लिये आवश्यक संसाधन तथा कौशल में असंतुलन भी दर्शाता है। "डिजिटल डिवाइड उन लोगों के बीच के भेद को संदर्भित करता है जिनके पास डिजिटल तथा सूचना प्रौद्योगिकी तक प्रभावी पहुँच है और जिनके पास सीमित या कोई पहुँच नहीं है" (लोडर, 1998) आर्थिक सहयोग तथा विकास के लिए संगठन ने "डिजिटल डिवाइड को एक ऐसी खाई के रूप में परिभाषित किया है जो सूचना व संचार प्रौद्योगिकी तक पहुँचने के अवसरों तथा विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के लिये इंटरनेट के उपयोग के संबंध में व्यक्तियों, घरों, व्यवसायों तथा भौगोलिक क्षेत्रों के विभिन्न सामाजिक आर्थिक स्तरों के बीच पायी जाती है" (ओ इ सी डी, 2001)।

"डिजिटल डिवाइड को इंटरनेट तथा अन्य सूचना प्रौद्योगिकियों तथा सेवाओं के माध्यम से सूचना तक पहुँचने तथा सूचना, इंटरनेट व अन्य तकनीकों का उपयोग करने के लिये कौशल, ज्ञान तथा क्षमताओं में भूगोल, जाति, आर्थिक स्थिति, लिंग व शारीरिक क्षमता के कारण अंतर के रूप में परिभाषित

किया गया है" (लोर, 2003)। डिजिटल डिवाइड एक वैश्विक घटना है जो 'उपलब्ध है' और 'उपलब्ध नहीं है' का अंतर न केवल आर्थिक रूप से गरीब देशों में बल्कि तथाकथित विकसित देशों में, देशों के बीच और किसी एक देश के अंदर में मौजूद है (सिंह, 2004)।

इस तरह इस विभाजन ने एक नई निर्धनता को जन्म दिया है जिसे 'सूचना निर्धनता' कहते है। भारत सरकार और उत्तर प्रदेश सरकार इस डिजिटल डिवाइड को पाटने का निरंतर प्रयास कर रही है। जिसका विश्लेषण इस शोध में किया गया है।

सामाजिक न्याय

विस्तृत अर्थ में, 'सामाजिक न्याय' शब्दावली से 'सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक' तीनों तरह के न्याय का बोध हो जाता है। सीमित अर्थ में, 'सामाजिक न्याय' का तात्पर्य यह है कि सामाजिक जीवन में सब मनुष्यों की गरिमा स्वीकार की जाए। स्त्री–पुरुष, गोरे–काले, जाति, धर्म, क्षेत्र, इत्यादि के आधार पर किसी व्यक्ति को छोटा–बड़ा या ऊंच–नीच न समझा जाए।

सामाजिक न्याय का मूल मंत्र यह है कि संगठित सामाजिक जीवन से जो भी लाभ प्राप्त होते हैं, वे कुछ लोगों के हाथों में सिमटकर न रह जाएं, बल्कि सर्वसाधारण को– विशेषतः निर्बल और निर्धन वर्गों को उसका समुचित हिस्सा मिले ताकि वे सुखी, सम्मानित जीवन जी सकें।

यहां सामाजिक न्याय की अवधारणा को जिस संदर्भ में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है उसका संबंध सिर्फ आर्थिक, सामाजिक, जातीय, वर्गीय पिछड़ेपन को पाटने तक सीमित नहीं है। आधुनिक युग में एक नए प्रकार की वर्ग विभाजन की अभिव्यक्ति देखी जा रही है जिसे डिजिटल डिवाइड कहा जाता है । यहां इसी डिजिटल डिवाइड के संदर्भ में सामाजिक न्याय की अवधारणा को समझने का प्रयास किया गया है और एक नए प्रकार के विभाजन के संदर्भ में सामाजिक स्थिति को समझने की कोशिश की गई है।

शोध आलेख की पद्धति

इस शोध में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति और मिश्रित क्रिया विधि का प्रयोग किया है। प्रस्तुत शोध आलेख प्राथमिक एवं द्वितीयक आकड़ों पर आधारित है। प्राथमिक आकड़ों के संग्रह के लिए सर्वे पद्धति का प्रयोग किया हैं। जिसके लिए गैर संभाव्य प्रतिदर्श का प्रयोग किया है जिसमें उद्देश्यपरक और स्नो बॉल विधि का प्रयोग किया है । द्वितीयक आंकड़ों के रूप में अखबारों, पत्रिकाओं, सरकारी रिपोर्टों, शोध पत्रों, जर्नल आर्टिकल और अन्य ऑनलाइन स्रोतों का प्रयोग किया है। आंकड़ों के प्रदर्शन हेतु चार्ट का प्रयोग किया है।

स्वामी विवेकानंद युवा सशक्तिकरण योजना (स्मार्ट फोन/टैबलेट योजना)

वर्तमान में उत्तर प्रदेश सरकार की अधिकांश सेवाएं इंटरनेट के माध्यम से लाभार्थी द्वारा स्वयं अथवा जन सुविधा केंद्रों माध्यम से प्राप्त की जा रही है। ऐसे में युवाओं के डिजिटल सशक्तिकरण की आवश्यकता हर स्तर पर अनुभव की जा रही है। इस संबंध में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सम्यक विचारोपरान्त "स्वामी विवेकानंद युवा सशक्तिकरण योजना" तैयार की गई, योजना का उद्देश्य प्रदेश के नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों के युवाओं को प्रशिक्षित एवं स्वावलंबी बनाने के लिए स्मार्टफोन / टेबलेट निःशुल्क प्रदान है। योजना वित्तीय वर्ष 2021–22 में पायलट प्रोजेक्ट के रूप में लाई गयी।

योजना का आरंभ 25 दिसंबर 2021 को पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेई की जयंती के अवसर पर भारतरत्न अटल बिहारी बाजपेई इकाना स्टेडियम (लखनऊ) में 60 हजार विद्यार्थियों को स्मार्टफोन तथा 40 हजार विद्यार्थियों को टैबलेट देकर किया गया।

आँकड़ों का विश्लेषण

सर्वे के लिए उत्तर प्रदेश राज्य के लखनऊ जिले के लखनऊ विश्वविद्यालय का चयन किया गया है। गूगल फॉर्म के माध्यम से विद्यार्थियों को प्रश्नावली भेजी। शोध में प्रतिदर्श का आकार 50 है। इस संदर्भ में विश्वविद्यालय में योजना की देखरेख कर रहे अधिकारियों से भी बात की। प्रश्नावली में 26 प्रश्न थे जिसमें से 9 प्रश्न लाभार्थियों की व्यक्तिगत सूचना प्राप्त करने के लिये थे, शेष प्रश्न योजना के संदर्भ में थे।

- ❖ ग्राफ संख्या 1, अध्ययन में 50 में से केवल 20 (40 प्रतिशत) महिलायें हैं। जो लैंगिक गैप को दर्शाती है
- ❖ 24 (48 प्रतिशत) लाभार्थी अन्य वर्गों से हैं, स्पष्ट है सरकार समाज के हासिये पर खड़े लोगों तक पहुँचने में सफता रही। ग्रामीण पृष्ठभूमि के 18 (36 प्रतिशत) लाभार्थी ही लाभान्वित हुए, अतः उन्हें जोड़ने की जरूरी है।
- ❖ 34 (78 प्रतिशत) लाभार्थियों की मासिक आय 25000 रू. से कम है, वहीं 30 (60 प्रतिशत) लाभार्थियों के घर का खर्च एक ही व्यक्ति द्वारा उठाया जा रहा है।

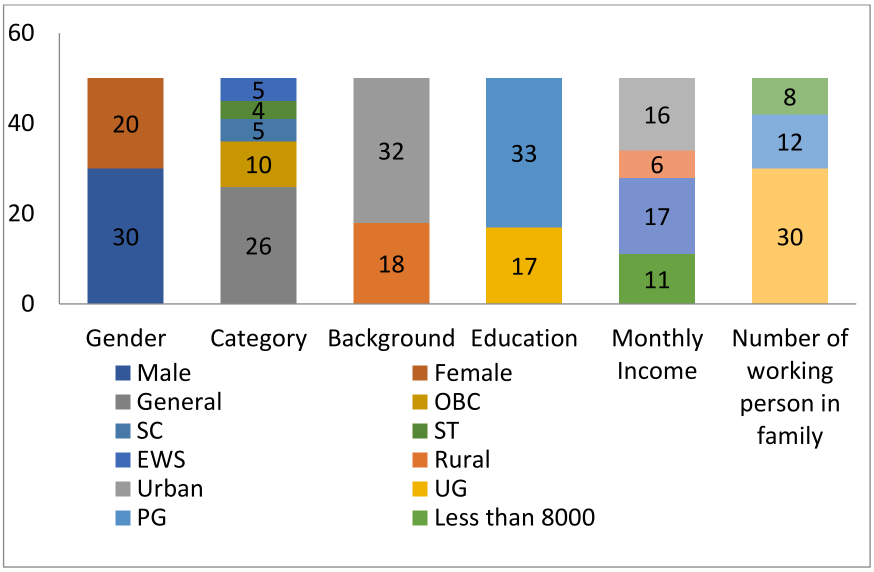

ग्राफ संख्या 1

ग्राफ संख्या 2, 72 प्रतिशत विद्यार्थियों को योजना की जानकारी सरकारी स्रोतों से प्राप्त हुई है अर्थात सरकार विद्यार्थियों को जागरूक करने में सफल रही।

❖ 92 प्रतिशत विद्यार्थियों द्वारा शिक्षा के लिए उपकरण का प्रयोग किया जा रहा है।

❖ 84 प्रतिशत विद्यार्थियों का कहना है कि उपकरण अच्छे ढंग से कार्य कर रहा है, जो उपकरण की उच्च गुणवत्ता का प्रतीक है।

❖ यह प्रश्न करने पर कि सरकार का मूल उद्देश्य क्या है, लगभग 84 प्रतिशत विद्यार्थियों को वास्तविक उद्देश्य की जानकारी थी जो सरकार के आरंभिक जागरूकता प्रयासों का परिणाम था।

अतः उपरोक्त प्रयासों में सरकार की सफलता झलकती है।

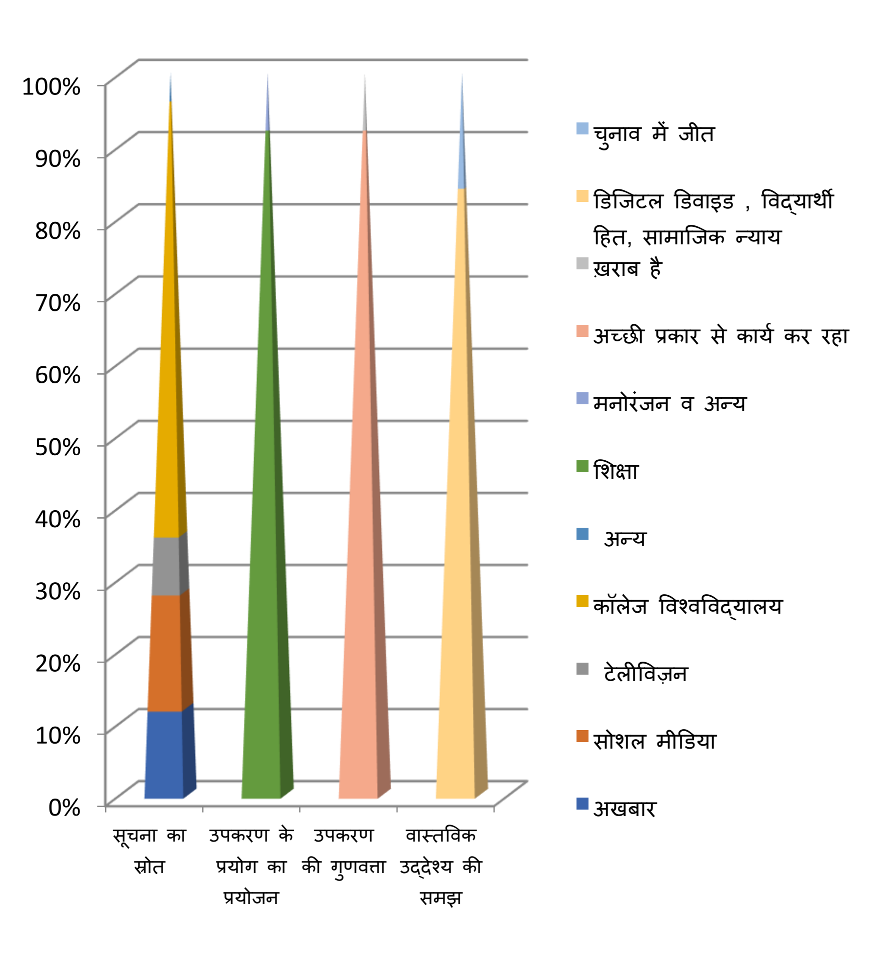

ग्राफ संख्या 2

- ❖ ग्राफ संख्या 3, 90 प्रतिशत लाभार्थी मानते हैं कि योजना का शिक्षा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। 10 प्रतिशत मानते हैं कि कोई विशेष अंतर नहीं आया है। परंतु सभी इस बात पर एकमत है कि इसका शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा है।
- ❖ सरकार की इस योजना से 70 प्रतिशत लाभार्थी पूर्णतया संतुष्ट हैं वहीं 30 प्रतिशत लाभार्थी इससे औसतन संतुष्ट है।

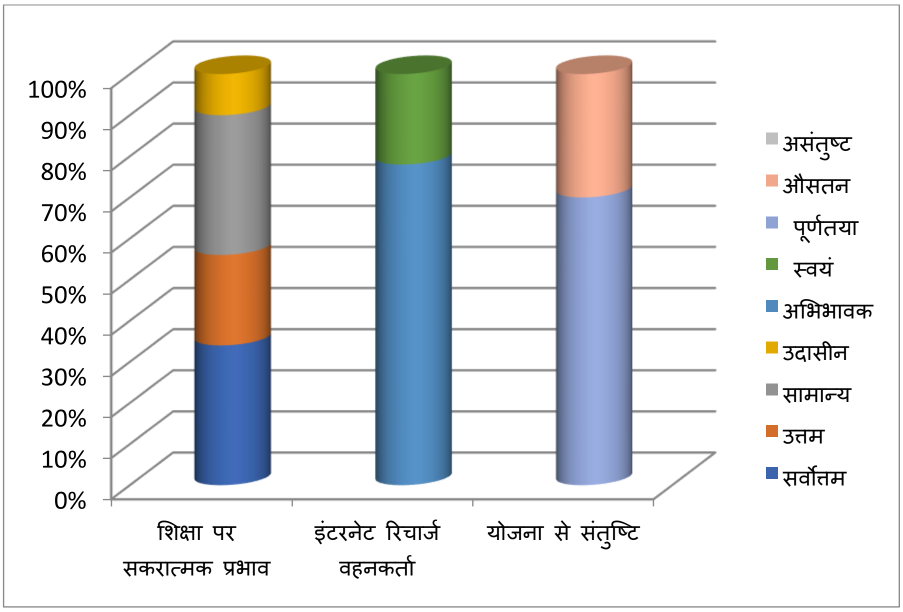

ग्राफ संख्या 3

मुख्यमंत्री अभ्युदय योजना

एक स्वतंत्र तथा लोकतांत्रिक देश में सभी को बड़े सपने देखने का अधिकार है तथा यह एक कल्याणकारी राज्य का दायित्व है कि वह नागरिकों को वे समस्त साधन उपलब्ध कराये जो उनके विकास में तथा उनके सपनों को साकार करने में सहायक हो। ऐसा ही एक सपना देश के लगभग सभी युवा देखते हैं, सिविल सेवा परीक्षा मे सफलता प्राप्त करने का।

भारत की पुरुष जनसंख्या का 37.77 प्रतिशत तथा महिला जनसंख्या का 45.3 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने को मजबूर है। वहीं उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या का 29.43 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा से नीचे है। ऐसे में सिविल सेवा अथवा अन्य प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी के लिये युवा वर्ग के पास पर्याप्त धन व संसाधनों का अभाव है। इसीलिये ऐसे युवाओं के लिये उत्तर – प्रदेश सरकार द्वारा मुख्यमंत्री अभ्युदय योजना की शुरुआत की गयी है। इस योजना के माध्यम से छात्रों को मुफ्त कोचिंग उपलब्ध करायी जायेगी। योजना का शुभारंभ बसंत पंचमी के दिन वर्ष 2021 में मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ जी द्वारा किया गया।

योजना का उद्देश्य

- योजना उद्देश्य आईएएस, आईपीएस, पीसीएस, एनडीए, सीडीएस, नीट जैसी प्रतियोगिताओं के लिए छात्रों को निशुल्क कोचिंग प्रदान करना है।

- आर्थिक–सामाजिक रूप से पिछड़े छात्रों को निशुल्क कोचिंग प्रदान की जाएगी।
- छात्रों को कोचिंग गृह जिले में प्राप्त होगी।

आँकड़ों का विश्लेषण

सर्वे के लिए उत्तर प्रदेश राज्य के लखनऊ जिले के लखनऊ विश्वविद्यालय संस्थान का चयन किया गया है। गूगल फॉर्म के माध्यम से विद्यार्थियों को प्रश्नावली भेजी। शोध में प्रतिदर्श का आकार 20 है। इस संदर्भ में विश्वविद्यालय में योजना की देखरेख कर रहे अधिकारियों से भी बात की। उन्होंने बताया कि फरवरी 2021 से मई 2022 के बीच 6328 विद्यार्थियों ने योजना का लाभ उठाया है। प्रश्नावली में 23 प्रश्न थे जिसमें से 9 प्रश्न लाभार्थियों की व्यक्तिगत सूचना प्राप्त करने के लिये थे, शेष प्रश्न योजना के संदर्भ में थे।

❖ ग्राफ संख्या 1, सर्वे में सम्मिलित 40 प्रतिशत लाभार्थी महिलाएं है जो सामाजिक न्याय की स्थापना में एक अच्छा कदम साबित होगा ।

❖ 40 प्रतिशत विद्यार्थी सामान्य वर्ग के है। शेष 60 प्रतिशत विद्यार्थी विविध वर्गों के है, जिससे स्पष्ट है कि योजना का लाभ वंचित वर्गों को भी मिला है।

❖ 65 प्रतिशत विद्यार्थी एकल परिवार से है। वही 65 प्रतिशत ऐसे परिवार है जहां एक ही सदस्य पर परिवार के खर्च की जिम्मेदारी है। 70 प्रतिशत परिवारों की मासिक आय 5000 रु. से कम है। ऐसे अभ्यर्थियों के लिए यह योजना अमृत के समान है क्योंकि निजी कोचिंग सेंटर का शुल्क उनके परिवार उठा नहीं सकते है।

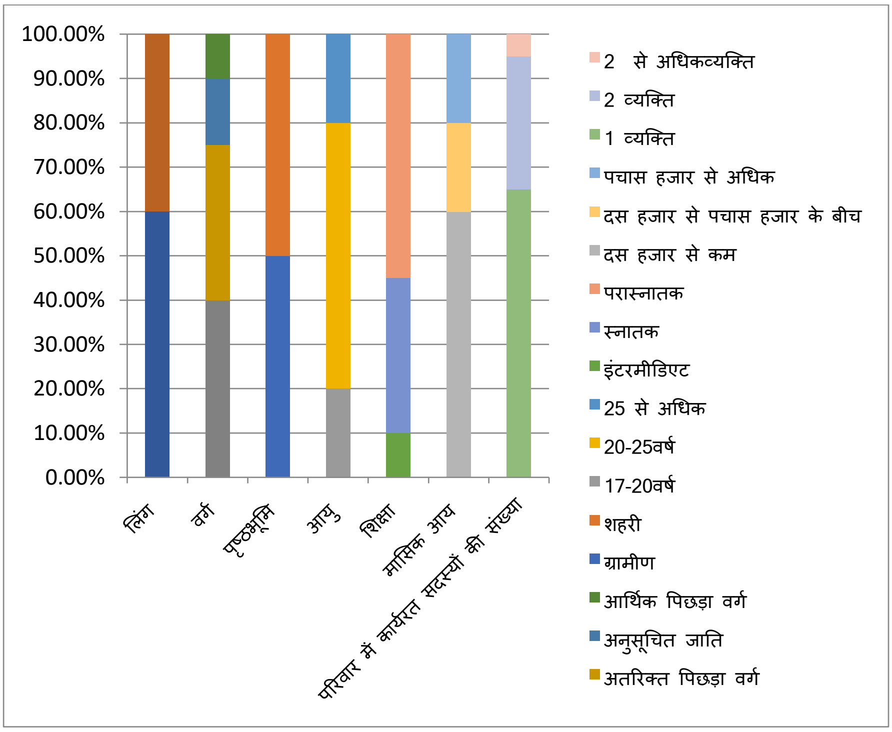

ग्राफ संख्या 1

ग्राफ संख्या 2, 90 प्रतिशत विद्यार्थियों को योजना की जानकारी सरकारी सूत्रों से प्राप्त हुई है।

- ❖ 90 प्रतिशत विद्यार्थियों का यह कहना है कि योजना के अंतर्गत कक्षाएं नियमित रूप से चल रही हैं।
- ❖ 50 प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे थे जो या तो सिर्फ ऑनलाइन अथवा ऑनलाइन–ऑफलाइन दोनों माध्यमों से कक्षाएं कर रहे थे।

इस प्रकार यह शिक्षा में तकनीकी का एक सफल प्रयोग सिद्ध होता है। व सरकार अपने उपरोक्त उद्देश्यों में सफल प्रतीत होती है।

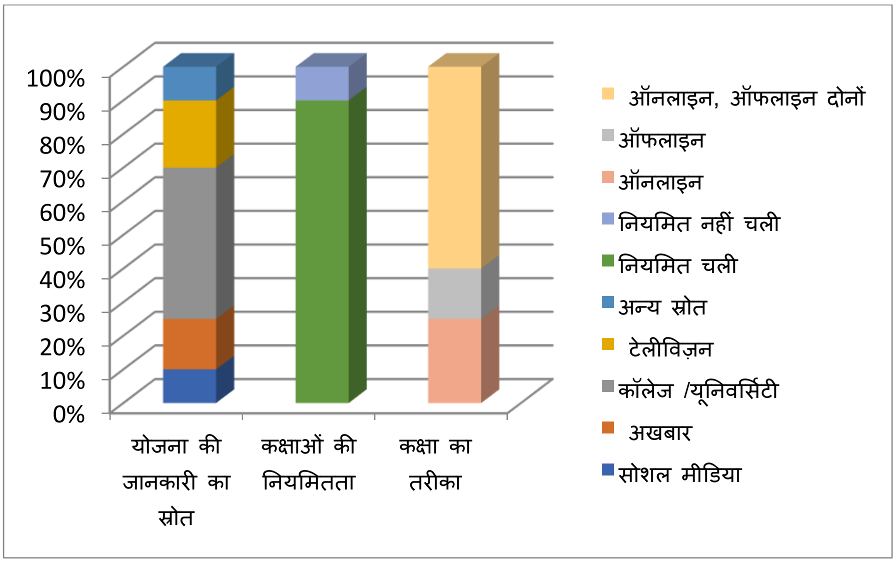

ग्राफ संख्या 2

ग्राफ संख्या 3, 80 प्रतिशत विद्यार्थियों को रजिस्ट्रेशन के दौरान कोई समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। जो योजना के मजबूत अवसंरचना दर्शाता है ।

❖ विद्यार्थियों के संतुष्टि के स्तर को जानने के लिए गूगल फॉर्म में लिकर्ट स्केल का भी प्रयोग किया गया है जो योजना के अंतर्गत किए गए शिक्षण कार्य, प्रदान की गई अध्ययन सामग्री तथा संपूर्ण योजना के संदर्भ में विद्यार्थियों में संतुष्टि के स्तर को प्रदर्शन करता है। 70 प्रतिशत विद्यार्थी योजना के दौरान दिए गए शिक्षण कार्य से पूर्णतया संतुष्ट दिखे। वहीं अध्ययन सामग्री के संदर्भ में 80 प्रतिशत विद्यार्थी पूर्ण संतुष्ट दिखाई दिए। संपूर्ण दृष्टि से 80 प्रतिशत विद्यार्थी योजना से सहमत दिखे, वहीं 15 प्रतिशत विद्यार्थी योजना से औसत संतुष्ट थे। जबकि 5 प्रतिशत विद्यार्थी योजना से असंतुष्ट दिखाई दिए।

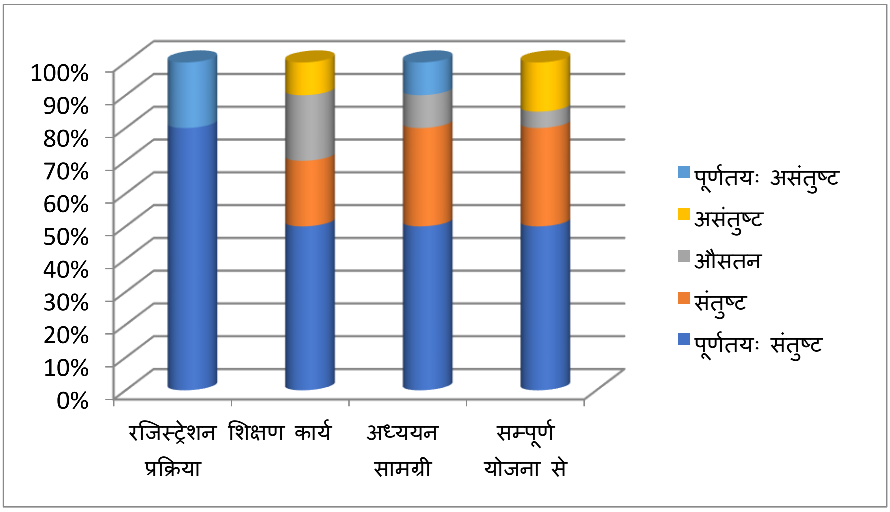

ग्राफ संख्या 3

दोनों योजनाओं का सर्वे आधारित समग्र विश्लेषण

उपरोक्त दोनों योजनाओं का विश्लेषण डिजिटल डिवाइड और सामाजिक न्याय के संदर्भ में सरकार के सफल प्रयास को दर्शा रहा है परंतु उपकरणों की उपलब्धता ही पर्याप्त नहीं है। सरकार को लाभार्थियों की इंटरनेट तक पहुंच भी सुनिश्चित करनी होगी क्योंकि सर्वे में पाया गया 78 प्रतिशत विद्यार्थी इंटरनेट के रिचार्ज के लिए घरवालों पर निर्भर है और बिना इंटरनेट के यह स्मार्टफोन /टैब विद्यार्थियों के लिए उपयोगी नहीं है। योजनाओं के सर्वे में पाया गया कि ग्रामीण पृष्ठभूमि के लोग योजना का लाभ उठाने में पीछे रह गए हैं अतः सरकार को इस संदर्भ में आवश्यक कदम उठाने चाहिए। दोनों योजनाओं का विश्लेषण सामाजिक न्याय व डिजिटल डिवाइड को एक दूसरे के व्युत्क्रमानुपाती दर्शाता है अर्थात एक में वृद्धि तो दूसरे में कमी आएगी।

उपसंहार

डिजिटल डिवाइड को भरने तथा सामाजिक न्याय की वृद्धि में स्वामी विवेकानंद युवा सशक्तिकरण योजना तथा मुख्यमंत्री अभ्युदय योजना उत्तर प्रदेश सरकार के दो सफल प्रयास हैं। सर्वे के आँकडों से स्पष्ट है कि लाभार्थियों का एक बड़ा हिस्सा इनसे पूर्णतया संतुष्ट है। यू.पी.पी.सी.एस. 2021 की परीक्षा में मुख्यमंत्री अभ्युदय योजना के 43 अभ्यर्थियों को सफलता मिली है जो इन योजनाओं की सफलता का साक्षात उदाहरण है।

राज्य सरकार की ये योजनायें राष्ट्रीय स्तर पर चल रही डिजिटल इंडिया मिशन योजना को मजबूती दे रही हैं। ये योजनाएँ जहाँ एक ओर तकनीकी ज्ञान में वृद्धि कर रही हैं, वहीं दूसरी ओर नागरिकों को प्रतियोगी

परीक्षाओं की तैयारी करवाकर उनमें प्रतिस्पर्धा की भावना को भी बढ़ा रही हैं। जिससे निकट भविष्य में नागरिक विश्व में प्रतिस्पर्धा के समय पीछे न रह जाये।

यद्यपि नागरिकों की पृष्ठभूमि, लैंगिक भेदभाव, उचित अवसंरचना का अभाव तथा संसाधनों तक पहुँच में विफलता देश के विकास में एक प्रमुख चुनौती हैं। अतः सरकार के इस तरह के प्रयास इन चुनौतियों के विरुद्ध एक बेहतर प्रयास है और सरकार को इस तरह के प्रयासों का निरंतर विस्तार करते रहना चाहिए। भारत का भविष्य तकनीकी रूप से सजग, प्रतिस्पर्धा की भावना से ओत–प्रोत, जोशीले युवाओं के हाथों में है जो अंततः भारत को एक उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर करेंगे।

संदर्भ

1. 'डिजिटल डिवाइड' समाजिक व आर्थिक पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण. (2021, aug 26). Retrieved from Punjabkesari: https://www.punjabkesari.in/
2. Basu, B. (2021). Digital Divide and Inequities in School Education during Covid-19: An Exploratory Study. Jharkhand Journal of Development and Management Studies, 19(4), 8977-8993.
3. Cohen, E. B. (2011). Navigating Information Challenges. Informing Science and Information Technology. 8.
4. Dasgupta, T. (2018). A Study on Aspects of India's Digital Divide . RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary, 03(11), 689-693.
5. Dragulanescu, N. G. (2002). Social impact of the "Digital Divide" in a Central– Eastern European country. The International Information & Library Review, 34(2), 139-151.
6. foundatio, D. (. (n.d.). Bringing the digital devise for girls in india.
7. Home. (दि.न.). Abhyuday: http://abhyuday.up.gov.in/
8. india, T. o. (2022, oct 18). 415 million exited poverty in India in 15 years: UNDP. Retrieved from Times of india: https://timesofindia.indiatimes.com
9. J., &. C.-2. (2008). Measuring digital divide: The exploration in Macao. Observatorio Journal, 6, 259-272.
10. Kaur, K. a. (2004). Pattern of Inter-State Digital Divide in India. Economic Affairs 2014, 59(3), 379-388.
11. Loader, B. (1998). Cyberspace Divide. Routledge.
12. Lor, P. J. (2003). National Libraries and the Digital Divide.
13. MEKELBERG, Y. (2021, feb 20). Why the digital divide is a threat to social justice. Retrieved from Arab news: https://www.arabnews.com
14. O.P.Gauba. (2018). An Introduction to Political Theory. Mayurbooks.
15. OECD. (2001). Understanding the Digital Divide.

16. Pachler, N. C. (2010). Mobile learning: Structures, agency, practices. doi:10.1007/978- 1-4419-0585-7.
17. Paul, J. (2002). Narrowing the digital divide: Initiatives undertaken by the Association of South-East Asian Nations (ASEAN).
18. Rouse, M. (n.d.). Information and Communications Technology (ICT). Retrieved from techopedia: https://www.techopedia.com/
19. Sheikh, M. M. (n.d.). Digital Divide in India: Prospects and Challenges.
20. singh, M. P. (2004). Information Technology and the Digital Divide in India: Ethical Perspectives. Retrieved from Retrieved from https://biblicalstudies.org.uk
21. Tapashi, D. (2018). A Study on Aspects of India"s Digital Divide. RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary, 03(11).
22. what is digital devide. (n.d.). Retrieved from igi-global: https://www.igi-global.com/dictionary/digital-divide/7600
23. Wilson, E. J. (2004). The information revolution and developing countries. MA: MIT Pres.
24. दीपक कुमार दास एवं डॉ रंजीत कुमार झा. (2022). महिला सशक्तिकरण में प्रधानमंत्री आवास योजना का योगदान / दीपक कुमार दास एवं डॉ रंजीत कुमार झा. अपनी माटी.

Manglam - Year 14(01) Vol. XXVI Feb. 2023
ISSN-0976-8149, PP. 185-195

Examining the Prospects & Challenges of India-China Cooperation in Counterterrorism & Cybersecurity

Prof. Arun Kumar Dixit *

Akhilesh Dwivedi **

Introduction

India and China have a complicated relationship that is defined by a combination of collaboration and competition, as well as sporadic times of tension and conflict, as two major powers in the Asian continent. The two main factors that have moulded India-China ties over time are security and collaboration.

Collaboration between India and China in the security area has taken many different forms, such as joint military drills, border control systems, and counterterrorism cooperation. But there have also been points of contention, including the continuing border conflict, which has recently led to a number of military standoffs and skirmishes. Despite these obstacles, there have been some noteworthy advancements in the security collaboration between China and India. A historic agreement on political parameters and guiding principles for resolving the border dispute was agreed by the two nations in 2005. This agreement provided a framework for handling the issue and preserving peace and tranquilly along the border. In addition, China and India have established a number of channels for communication and engagement on security issues, such as the Counterterrorism Dialogue, the Working Mechanism for Consultation and Coordination on China-India Border Affairs, and the Annual Defense Dialogue.

However, a number of variables, including as disparities in danger assessments, a lack of trust, and geopolitical conflicts, have hindered the efficiency of these methods. India is sceptical of closer

---

* **Principal, D.A-V. College, Kanpur (U.P.)**

** **Research Scholar, D.A-V. College, Kanpur (U.P.)**

security cooperation with China in particular due to its worries on China's aggressiveness in the South China Sea, its rising military capabilities, and its strategic partnerships with India's neighbours (Pant, 2020). Overall, rivalry and collaboration are present in India-China relations, with security and cooperation maintaining important aspects of the two-way relationship. Despite significant difficulties and points of contention, there have been some major advancements in security cooperation, and more growth is possible in this area.

Significance of Counterterrorism and Cybersecurity in Bilateral Cooperation

Given the growing concerns of terrorism and cyberattacks that both nations must contend with, counterterrorism and cybersecurity are two essential areas of collaboration between India and China. India and China are interested in working together to defeat terrorist organisations that pose a danger to regional and international stability. Both nations have previously been the target of terrorist attacks, such as the 2008 Mumbai bombings in India and the 2014 Kunming train station assault in China, and have realised the need of working together to stop such occurrences.

The Shanghai Cooperation Organization (SCO), which offers a platform for intelligence sharing and cooperative operations against terrorist organizations, is one of the agreements and mechanisms for counterterrorism cooperation that China and India have signed in recent years. Both nations have also taken part in collaborative military training programmes and exercises aimed at improving their capacity to respond to terrorist threats. Cyberattacks pose an increasing danger to China and India's essential infrastructure, economic systems, and national security in the field of cybersecurity. Both nations are aware that collaboration is necessary to handle this problem after becoming the victim of state-sponsored cyberattacks and espionage. India and China have created a bilateral conversation on cybersecurity and have signed an agreement to collaborate in areas

such as the sharing of information and best practises, cooperative research, and capacity building. There are worries, too, that cyberspace may be used for espionage and other malicious purposes, undermining confidence and collaboration in this area.

Counterterrorism Cooperation

Given the common threat of terrorism and the necessity for coordinated measures to resist it, cooperation in counterterrorism has been a major area in India and China's bilateral relationship. The Shanghai Cooperation Organization (SCO), of which both China and India are members, is one of the main platforms for bilateral counterterrorism cooperation. The SCO offers a framework for intelligence exchange, cooperative operations, and training initiatives designed to improve member governments' capacity to respond to terrorist threats. India and China have worked together specifically under the framework of the SCO's Regional Anti-Terrorist Structure (RATS), which is the primary platform for counterterrorism cooperation within the organization.

Historical Context and Evolution of India-China Counterterrorism Cooperation

The evolution of India-China counterterrorism cooperation through time reflects changes in the two countries' bilateral ties, regional security dynamics, and the terrorism threat's changing nature. India and China signed an agreement on "Mutual Notification of Nuclear and Missile Missile Tests" in 1996, marking the beginning of their counterterrorism collaboration. In this agreement, there were clauses for working together to stop the spread of nuclear and missile technology as well as to fight the use of such technology by terrorists and other non-state actors.

However, India-China counterterrorism partnership has also experienced hurdles, including disparities in threat assessments, lack of confidence, and geopolitical concerns. For instance, India has voiced worries over China's assistance for terrorist organisations based in Pakistan, which India considers to be a serious security

danger. Despite these obstacles, India and China continue to participate in bilateral and international projects to improve their skills in this area because they understand the need of collaboration in addressing the always changing danger of terrorism.

Current State of Counterterrorism Cooperation & Joint Mechanisms and Agreements

Presently, bilateral and multilateral measures targeted at boosting each country's capacity to combat terrorism make up India and China's counterterrorism cooperation. The two nations established a "high-level mechanism" on counterterrorism and security matters at their first-ever high-level summit on bilateral security cooperation in 2017, which took place. The system was designed to improve capacity building, collaborative training, and intelligence sharing collaboration. India and China took part in the first-ever counterterrorism joint military exercise under the auspices of the Shanghai Cooperation Organization (SCO) in 2018. All of the SCO's members took part in the exercise, called "Peace Mission 2018," which was held in Russia. Additionally, both nations are participants in the SCO's Regional Anti-Terrorist Structure (RATS), the primary framework for counterterrorism cooperation within the group. Between member nations, the RATS is in charge of organising intelligence exchange, collaborative investigations, and training.

As part of their efforts to strengthen their counterterrorism cooperation, India and China have also inked a number of bilateral agreements. For instance, they signed a Memorandum of Understanding (MoU) on collaboration in the fields of drug demand reduction and drug control in 2018. The MoU intends to improve collaboration when it comes to exchanging information and knowledge and creating shared strategies to fight drug trafficking. However, India-China counterterrorism collaboration is hampered by variations in threat assessments and a lack of confidence. India has voiced alarm over China's assistance for terrorist organisations based in Pakistan, which it perceives as a serious security danger. China, on the other hand, has expressed alarm over Tibetan separatist

movements in India, which it regards as a danger to its territorial integrity. Despite these collaborative institutions and agreements, India-China counterterrorism cooperation has hurdles. As I have stated, India is concerned about China's funding for Pakistan-based terrorist organisations, which it regards as a huge security danger. This has been a source of disagreement between the two governments, limiting their capacity to effectively collaborate on counterterrorism. Furthermore, geopolitical concerns and the general status of India-China ties have influenced their counterterrorism collaboration.

Challenges and Obstacles to Effective Counterterrorism Cooperation, Including Differences in Threat Perceptions, Trust Deficits, and Geopolitical Tensions

There are several challenges and obstacles that hinder effective counterterrorism cooperation between India and China. Some of these challenges include:

Differences in threat perceptions: Terrorism and its origins are viewed differently in India and China. Terrorism is seen as originating from Pakistan in India, but China is mainly preoccupied with the Uighur separatist struggle in Xinjiang. These disparities in danger perceptions may make it difficult for the two countries to adopt a cohesive counter-terrorism strategy.

Trust deficits: India and China have a history of distrust and skepticism, making confidence and collaboration in counterterrorism activities challenging. This is exacerbated by the two governments' lack of transparency and information exchange.

Geopolitical tensions: Geopolitical concerns frequently affect India and China's complicated and competitive relationship. This can make it difficult for the two countries to work successfully together in areas such as counterterrorism, where mutual trust and understanding are required.

Border disputes: Border issues between India and China, particularly in the Himalayan area, have strained bilateral ties. This has hampered counterterrorism collaboration since both governments have accused one other of sponsoring terrorist organisations operating in the region.

Domestic politics: Both India and China have complicated domestic politics that might influence their counterterrorism strategies. Domestic political constraints can make it difficult for the two countries to work successfully together, especially on sensitive matters like terrorism.

Addressing these problems and constraints is crucial to strengthening India-China counterterrorism cooperation. This needs both parties to commit to engaging in communication, building trust, and developing a shared understanding of the threat posed by terrorism. It also necessitates the resolve to put aside geopolitical differences and collaborate for the greater interest of regional and global security.

Current State of Cyber Security Cooperation

Although India and China have made some strides toward cybersecurity collaboration, their present level of cooperation is modest. The two nations signed a cybersecurity cooperation memorandum of understanding (MoU) in 2015, which was reaffirmed in 2018. The MoU intends to increase collaboration in areas such as cyber security threat sharing and capacity building. The inaugural meeting of the high-level joint working group on cybersecurity cooperation took place in 2019. The discussion focused on concerns such as data protection, cybercrime, and cybersecurity requirements. Due to the COVID-19 pandemic, the joint working group's second meeting was held remotely in 2020. Aside from the MoU and joint working group, India and China have also participated in international cybersecurity initiatives such as the Shanghai Cooperation Organization (SCO) and the BRICS (Brazil, Russia, India, China, and South Africa) grouping. Both nations have also signed on to the UN Group of Governmental Experts (GGE) on cybersecurity.

However, contemporary cybersecurity collaboration is hampered by a number of problems, including disparities in cybersecurity policy, a lack of confidence, and geopolitical conflicts. Greater trust between India and China in the cybersecurity arena is required, as is the development of a more complete institutional framework for collaboration.

Prospects for Deeper Cyber Security Cooperation

Despite the challenges, there are prospects for deeper cybersecurity cooperation between India and China. Here are some potential areas of collaboration and mutual benefits:

- Joint development of cybersecurity technologies: India and China are both major players in the global technology industry. Collaboration in areas such as artificial intelligence, block chain, and quantum computing could lead to the development of innovative cybersecurity technologies that can benefit both countries.
- Information sharing and incident response: Both countries face cybersecurity threats from a range of sources, including state-sponsored hackers, cybercriminals, and terrorists. Improved information sharing and joint incident response mechanisms can help to address these threats more effectively.
- Capacity building and training: India and China have large and growing technology sectors, but there is a shortage of cybersecurity professionals with the necessary skills and training. Collaboration in capacity building and training can help to address this shortage and improve the overall cybersecurity posture of both countries.

Challenges and Obstacles

Effective cybersecurity cooperation between India and China faces several challenges and obstacles, including

- Differences in data governance and internet regulation: India and China have different approaches to data governance and internet regulation, which can create challenges for cybersecurity cooperation. For example, India has recently introduced new data protection regulations that restrict the flow of data outside the country, while China has strict censorship and surveillance laws that limit online freedom.
- Trust deficits: Trust between India and China has been eroded by historical tensions and recent border conflicts. This lack of trust can make it difficult to establish effective cybersecurity cooperation mechanisms and information-sharing arrangements.

- Geopolitical tensions: India and China have longstanding geopolitical tensions, including disputes over border territories and differences in strategic priorities. These tensions can spill over into the cybersecurity domain, creating additional challenges for cooperation.

Addressing these difficulties would need ongoing efforts on both sides, including improved engagement, trust-building initiatives, and integrated approaches to cybersecurity governance and legislation.

Comparative Analysis of India-China Counterterrorism and Cybersecurity Cooperation with Other Bilateral and Multilateral Partnerships

A comparison of India-China counterterrorism and cybersecurity collaboration with other bilateral and international partnerships can give insights into India-China cooperation's strengths and limitations, as well as highlight possible areas for development. In terms of counterterrorism cooperation, India has alliances with the United States, Israel, and Russia. These collaborations have mostly focused on intelligence sharing, capacity building, and coordinated operations against transnational terrorist organisations. For example, India and the United States have formed a bilateral Counterterrorism Cooperative Working Group and have held a number of joint military exercises centred on counterterrorism operations.

Moreover, in the field of cybersecurity, India has collaborations with the United States, Japan, and the European Union, among others. These collaborations have centred on topics including information exchange, capacity building, and standard setting. For example, India and the United States have created a Cyber Dialogue to improve collaboration on cyber problems such as information sharing, capacity building, and R&D.

In comparison to these collaborations, India-China cooperation in counterterrorism and cybersecurity is still in its infancy. While both nations have put in place several cooperation processes and agreements, such as the India-China Joint Working Group on Counterterrorism and the India-China High-Level

Framework on Cultural and People-to-People Exchanges, there is still much potential for development.

Increased intelligence sharing, cooperative capacity-building initiatives, and coordinated operations against transnational terrorist groups might improve India-China counterterrorism collaboration. Similarly, improved information sharing, cooperative research and development initiatives, and coordinated approaches to cybersecurity governance and regulation might boost India-China collaboration in the cybersecurity area.

Overall, a comparison of India-China counterterrorism and cybersecurity cooperation with other bilateral and multilateral partnerships emphasises the need of ongoing efforts to strengthen cooperation, develop confidence, and discover new areas for collaboration.

Lessons Learned and Best Practices

Lessons learnt and best practises from current collaborations and projects should help influence efforts to strengthen India-China cooperation in counterterrorism and cybersecurity. To begin with, continuous political commitment is required for successful cooperation. High-level political backing can offer the motivation needed to overcome obstacles and assure success in collaborative endeavours. This was obvious in the US-India Joint Working Group on Counterterrorism, which has been operating since 2000 and has contributed to the two nations' increased collaboration in this area. Secondly, building trust is critical for effective cooperation. Trust can be built through regular dialogue, information sharing, and joint activities. Joint military exercises, such as the US-India Yudh Abhyas exercise, have helped to build trust and increase interoperability between the two countries' armed forces.

Thirdly, capacity building is essential for successful cooperation. This can involve joint training programs, technical assistance, and support for institutional development. For example, the US has provided training and technical assistance to Indian law enforcement agencies to help them build their capacity to respond to terrorist threats.

Fourthly, standardization and interoperability are important for effective cooperation. Common standards and procedures can help to ensure seamless coordination and communication between partners. This was evident in the joint operations between the US and Indian navies during the 2004 tsunami relief efforts, where standardization and interoperability facilitated effective coordination and response.

Fifthly, joint research and development can help to drive innovation and address emerging challenges. This can involve joint projects, research collaborations, and knowledge sharing. For example, the US and India have established the US-India Science and Technology Endowment Fund to support joint research and development projects in areas such as cybersecurity and clean energy.

Overall, persistent political commitment, trust building, capacity building, standardisation and interoperability, and collaborative research and development are critical lessons learned and best practises for improving cooperation in counterterrorism and cybersecurity. These approaches can help to guide attempts to strengthen India-China cooperation and find new areas for collaboration.

Conclusion

The research on the prospects and challenges of India-China cooperation in counterterrorism and cybersecurity has revealed the following key findings:

- India and China have made some progress in counterterrorism cooperation, including the establishment of bilateral mechanisms and agreements. However, there are still trust deficits and geopolitical tensions that pose challenges to deeper cooperation.
- Cybersecurity cooperation is still in its early stages, with limited mechanisms and agreements in place. However, there is potential for deeper collaboration, particularly in the areas of information sharing and joint research and development.

- India and China can learn from other bilateral and multilateral partnerships in these areas, including the United States and China's cooperation on cybercrime and the Shanghai Cooperation Organisation's counterterrorism cooperation.

The primary findings of this study are that, while India-China cooperation in counterterrorism and cybersecurity is difficult, there is room for deeper collaboration and mutual gain. India and China may improve their security cooperation by learning from prior partnerships and concentrating on developing confidence and overcoming disagreements.

References

1. *Raman, B. (2004). Counter-Terrorism: India-China-Russia Cooperation. China Report, 40(2), 155–167. https://doi.org/10.1177/000944550404000206*
2. *Gojree, M. U. (2013). India and China: Prospects and Challenges. International Research Journal of Social Sciences, 2(8), 48-54.*
3. *China, India discuss cooperation in counter-terrorism. (2019, January 31). The Economic Times. Retrieved March 29, 2023, from https://economictimes.indiatimes.com/news/defence/china-india-discuss-cooperation-in-counter-terrorism/articleshow/67773657.cms?from=mdr*
4. *Verma, R. (2020). China's new security concept: India, terrorism, China's geostrategic interests and domestic stability in Pakistan. The Pacific Review, 33(6), 991-1021.*
5. *Alık, N. A. H. A. (2022). Emerging Cyber Security Threats: India's Concerns and Options. International Journal of Politics and Security, 4(1), 170-200.*
6. *Patil, S. (2022). India's Cyber Security Landscape. In Varying Dimensions of India's National Security: Emerging Perspectives (pp. 75-90). Singapore: Springer Nature Singapore.*
7. *Pavey, A. (2023, February 15). Japan-India security cooperation: Progress without drama. Stimson Center. https://www.stimson.org/2023/japan-india-security-cooperation-progress-without-drama/*
8. *LIMAYE, S. (2023). INDIA'S ONGOING 'STRATEGIC CORRECTION TO THE EAST" DURING 2022. Comparative Connections: A Triannual E-Journal on East Asian Bilateral Relations, 24(3).*

Manglam - Year 14(01) Vol. XXVI Feb. 2023
ISSN-0976-8149, PP. 196-204

Dr. Ambedkar and Drafting of the Indian Constitution

Prof. Ashok Kumar Rai *

Dr. B.R. Ambedkar in the capacity of the chairman of the drafting committee of Indian constitution had made a very significant contribution to give the Indian Constitution the shape and form as it has today. In this paper it is argued that all the modern principles inculcated in the Indian constitution are materialization of Ambedkars modern thoughts on Governance and Democracy. The paper also argues that owing to his social bent of thought, only Dr. Ambedkar could have done justice to the concept of 'Social Democracy', which is a very important and distinguishing facet of the Indian Constitution. This is so, as he was not just a jurist but also a social reformer. The Articles of the Indian constitution for the inclusion of which, Dr. Ambedkar had to plunge in and convince other members of the constituent assembly are emphasized and discussed. In conclusion it is remarked that the greatest gift of Dr. Ambedkar was not only the constitution itself but also his philosophy of constitutionalism.

Introduction

Dr. B.R. Ambedkar was a great jurist, statesman, philosopher, activist, sociologist, economist, liberalist and an exceptional humanist. Some may add even gore qualities to what has been stated above, as it would always be less to describe him within few words. This dichotomy would be faced by anybody describing him, as he was not an individual but an 'institution' in himself. In the present paper, the endeavor is to provide an insight into Ambedkar as a jurist. His contribution in framing of India's constitution is phenomenal. In the pages to follow, an attempt has been made to analyze and examine the contributions of Dr. Ambedkar in drafting of the constitution and giving it a shape and form as it has today.

---

* **Head & Dean, Department/ Faculty of Law, K. S. Saket Post Graduate College, Ayodhya, Dr. Rammanohar Lohia Avadh University, Ayodhya**

The drafting committee, chaired by Dr. B.R. Ambedkar along with six other members was responsible for the drafting of Indian constitution. In the present paper an attempt is made to highlight the contributions of Dr. B.R. Ambedkar in framing of Indian Constitution. It is argued that considering the backdrop of India at that time, political and otherwise, Ambedkar was the best person who could be vested with the job of drafting Indian Constitution. The paper tries to justify that only Ambedkar could have come up with the constitution that India has today. Subsequently, his role as a chairman of the drafting committee and his contribution to the constitution as a civil rights expert is also discussed. Finally, it is concluded with an observation that Dr. Ambedkar's contribution to the constitution continues even today.

Dr. Ambedkar could have come up with such Constitution

Babasaheb Ambedkar was a name synonymous with Justice, Liberty, Equality and Fraternity the four ideals of the Preamble of the Indian Constitution. He was the most suitable person to be appointed as the chairman of the drafting committee of the Indian constitution. This suitability was with respect to two aspects of his individuality. Firstly, he was amongst the most qualified jurist of India at that point of time, whose works were recognized by legal stalwarts like Ivor Jennings. Secondly, being a "Dalit", Dr. Ambedkar was the best person to know the cruel realities of caste system and suggest any constitutional reforms for removing social inequality. He was a mixed balance of a Social Reformer and Legal Scholar. The idea of justice as envisaged by him was based on the utilitarianism. 'It is the greatest happiness of the greatest number that is the measure of right and wrong'. This was against the positivist school of legal thought that argued that 'society operates according to its own laws, much as the physical world operates according to gravity and other laws of nature'. His greatest gift to the constitution was not the tangible constitution itself but a notion of "Constitutional Morality"' which would help the constitution to remain preserved in most difficult circumstances. He stated "Constitutional morality is not a natural sentiment. It has to be cultivated.

We must realize that our people have yet to learn it. Democracy in India is only a top dressing on an Indian soil which is essentially undemocratic". He was ahead of his contemporaries in terms of his ideas on Democracy. His ideas on democracy were different from what India and World had accepted at that point of time. He was well aware about the realities of India and the non-workability of imported ideas of western democracy in the Indian set-up. The following words of writer Rudyard Kipling would provide a glimpse of pre-independence India. When he was asked about the possibility of self-government in India. 'Oh no!' he answered:' they are 4000 years old out there, much too old to learn that business. Law and order is what they want and we are there to give it to them and we give it them straight'. The above words truly reflect the wanting state of India at that time, but at the same time it also reflects the British ideology on the needs of India, which they very shallowly determined. They provided only 'law and order' and not 'social order'. Their complacency towards `social order' was reflected in the Government of India Act, which was devoid of any 'Bill of Rights'. In UK itself the first comprehensive equality legislation in the form of Equality Act 2010, came almost 60 years after India had set an example by inculcating fundamental rights in Part III, in the Indian constitution.

In United States also there was no equality legislation as such. What we see today as 'affirmative action' in US came in 1961, after Indian constitution had come into force. Moreover, system of providing 'quota' is considered to be illegal by the Supreme Court of United States 5 whereas Indian Constitution guarantees reservation to certain under privileged sections. The loopholes of implementing tailor-made model of Governance and Democracy of the above-mentioned countries were well understood by Ambedkar. Therefore he added dimension of 'Social Democracy' to Indian constitution, which is absent in most other constitutions. Dr. Ambedkar believed that the goal of democracy should be to bring positive changes to the social life.-Therefore the constitution that he gave India is not merely a legal framework for India's governance but as Glanville Austin describes it, it's a "social document". According to him "The majority of India's constitutional provisions are either directly arrived at

furthering the aim of social revolution or attempt to foster this revolution by establishing conditions necessary for its achievement". More than a legal expert, India wanted a true social reformer who could bring about a constitution, which deals with social issues India such as caste-system and social inequality. Dr. Ambedkar truly was a social reformer and therefore none but only he could have come up with a constitution with social empathy towards the underprivileged sections of the Indian Society.

Dr. Ambedkar : The Hercules of Drafting Committee

"The House is perhaps aware that out of the seven members nominated by you (to the drafting committee), one had resigned from the house and was replaced. One died and was not replaced. One was away in America and his place was not filled up and another person was engaged in state of affairs and there was a void to that extent. One or two people were far away from Delhi and for the reasons of Health did not permit them to attend. So it happened that the burden of drafting this constitution fell on Dr. Ambedkar and I have no doubt that we are grateful to him for having achieved this task in a manner which is undoubtedly commendable". The above words of T.T. Krishnamachari, in the constituent assembly are reflective of the stature of reverence acquired by Dr. Ambedkar in the constituent assembly. Dr. Ambedkar was de-facto recognized as the chief architect of Indian constitution. The Herculean contributions of Ambedkar towards giving us this constitution are discussed below.

Judicial Review and Constitutional Supremacy

Articles 32 and 226 of the constitution provide for judicial review, such provision of judicial review gives teeth to various rights provided in the constitution. In India constitution is considered to be supreme, unlike UK. In UK the parliament is considered to be supreme. This shows that in India the will of the 'We the people of India...' as provided in the preamble of the constitution, is the supreme will. Therefore any law, which goes against the constitutional principles, would be subject to Judicial Review and would be declared null and void by the court. In constituent assembly, Dr Ambedkar defended the provisions of Judicial Review as being very necessary.

Dr Ambedkar was a great visionary who foresaw the need of enforcing mechanism of the constitutional rights at state level and also at the level of the Union. Therefore, he provided under Article 226 mechanism to approach High Court for any constitutional breach and Article 32 enabled an individual to approach Supreme Court. He described these provisions which enabled an individual to file a writ as "Heart and Soul" of the Indian Constitution.

Parliamentary Democracy along with Socialistic Safeguards and Directive Principles of the State Policy (DPSP)

Dr. Ambedkar was a liberal democrat and the constitutional values, which he had incorporated in himself while studying abroad, time and again got reflected in his discussions in the constituent assembly. He defined democracy as 'one man, one vote' According to him, our ideal should be to establish such political democracy, where there is a room for establishment of 'economic democracy' also. His idea of democracy was very liberal and therefore he advocated that the elected representatives should adopt any such routes as considered to be fit by them to achieve this economic democracy. He does not ignore even socialism as a means of achieving 'economic democracy'. He pointed out "There are various ways in which people believe that economic democracy can be brought about; there are those who believe in having a socialistic state as the best form of economic democracy; there are those who believe in the communistic idea as the most perfect form of economic democracy" Ambedkar's greatest contribution towards achieving this 'economic democracy' is the part IV of the Indian Constitution, 'Directive Principles of State Policy'.

Unique Model of Governance

A Quasi Federal State Dr. Ambedkar envisioned nature of Indian Constitution as a unitary with federal features. Sir D.D. Basu, authority on Indian Constitution, very aptly describes Indian Constitution in the following words "The Constitution of India is neither purely federal nor unitary, but is a combination of both. It is a union or a composite of a novel type". Dr. Ambedkar himself described Indian constitution in the constituent assembly as follows "Our constitution would be both unitary as well as federal according

to requirements of time and circumstances". Dr. Ambedkar explained the reason behind such nature of Constitution in detail in the constituent assembly. He stated that all the federations work in a very 'tight mould of federalism'. Such a tight structure would not allow state to change into a unitary form when it is required and necessary. Therefore Dr. Ambedkar devised a middle path. He framed draft constitution in such a way that it has features of Unitary as well as Federal constitution. He described the working of Indian constitution as follows: "In normal times, it is framed to work as a federal system. But in times of war it is so designed as to make it work as though it was a unitary system. Once the President issues a Proclamation, which he is authorized to do under the Provisions of Article 275, the whole scene can become transformed and the State becomes a unitary State".

Uniform Civil Code and Fight for Hindu Code Bill

Dr. Ambedkar had a view that the Indian personal laws are not valid on the basis of established legal principles and is in some way very traditional and discriminatory against women. To bring a reformation in personal laws he proposed a Uniform Civil Code, which would replace all the personal laws (which were religiously guided) and will be applicable to all the people irrespective of their religion, caste or creed. Article 44 of the Indian constitution provides for a Uniform Civil Code. As this article is in the form of the Directive Principle, the state is not obligated to come up with a Uniform Civil Code. In the constituent assembly while presenting his views on Civil Code he stated: "I personally do not understand why religion should be given this vast, expansive jurisdiction, so as to cover the whole of life and to prevent the legislature from encroaching upon that field. After all, what are we having this liberty for? We are having this liberty in order to reform our social system, which is so full of inequities, discriminations and other things, which conflict with our fundamental rights." Ambedkar had achieved only partial success in reforming the personal laws. It was in the form of Article 44 in the DPSP that read: "The State shall endeavor to secure for the citizens a uniform civil code throughout the territory of India." Bringing to the fore, a Hindu Code Bill to bring about a reformation in Hindu personal

laws, was a fight Ambedkar had to fight single handedly with only superfluous support from Nehru.

Presidents Power under Indian Constitution: Titular Head

Article 74 of the Indian Constitution provides that, for the exercise of power by the President, there must be a Council of Ministers with the Prime Minister as the Head, to aid, assist and advise the President. The President is also vested with certain executive powers and the scope of such executive power embraces the residue of powers after the powers of the legislative or judicial organs are exhausted or taken away. In constituent assembly Dr. Ambedkar emphasized on the President's power as a Titular head of the state. Dr. Ambedkar doubtlessly emphasized that the President, will not have any independent powers of administration at all since, as a matter of convention, he will be bound by the advice of the Council of Ministers.

Ambedkar as a Social Engineer and Constitution his Engine

The constitution of India is a remedial answer to the system of age-old social injustice in the form of caste system. It also provides special rights and protection to women children and other weaker sections of the society. Prof. A.M. Rajasekhariah has rightly stated, "He (Ambedkar) strove his utmost to incorporate into the constitution of India such provisions as would help establish a new social order based on the lofty principle of political, economic and social justice for one and all. He tried to bring in about all the necessary changes in the Hindu society in order to make it more democratic one". The two important contributions of Ambedkar in the constitution, which had an impact on social justice, are discussed below.

Fundamental Rights

Part III of the Constitution, which provides for Fundamental rights is the greatest gift of the constitution makers, especially Ambedkar. In his book, 'Ranade Gandhi and Jinnah', Ambedkar has expressed his view that the idea of making a gift of fundamental rights to every individual is no doubt very laudable. But the essential question, which has to be answered, is how to make them effective. According to him the rights would be recognized and enforced only if

there is a 'Social Conscience' to do the same. The judiciary, parliament and law all together would not come to rescue the Fundamental Rights if there is an opposition from the community.

Conclusion

It can thus be concluded that Ambedkar's herculean efforts in the drafting committee have resulted in one of the most balanced and encompassing constitutions of the world. Dr. Ambedkar and the Indian Constitution are inseparable; therefore, when any provision of constitution comes up for interpretation, the court heavily relies on what was stated by Ambedkar in the constituent assembly. His ideas on constitutionalism are the touchstones for the Indian Judiciary in deciding any constitutional anomaly. Ambedkar's contribution to the constitution did not end on 26th January 1950, the day of its adoption. Even after his death, his ideas on constitutionalism have helped in the interpretation of the constitution. His legacy of 'constitutional morality' had come to rescue in the case of Kesavananda bharti. In this case the Indian Judiciary had to grapple with the biggest constitutional question ever encountered Can the basic structure of the constitution be amended. While delivering the judgment the courts relied upon his speeches in the constituent assembly and his views on constitutional principles. It was the constitution that saved the constitution. The thirteen judge bench, with the ratio of 7.6, decided that basic structure couldn't be amended. Thus, Dr. Ambedkar's contribution to the constitution of India still continues.

References

1. *Bandyopadhyay, S. (2000), "Transfer of Power and the Crisis of Dalit Politics in India, 1945-47', Modern Indian Studies, 34(4), 2000, p. 913.*
2. *Barbara R. Joshi (ed.), Untouchable! Voices of the Dalit Liberation Movement, (London Zed Books Ltd., 1986), p. 24.*
3. *Basham, A.L. (ed.), "A Cultural History of India", New Delhi: Oxford University Press, 1999.*
4. *Baxi, Upendra and Bhikhu Parekh (eds). 1995b. Crisis and Change in Contemporary India, New Delhi: Sage Publications.*

5. *Bennis Warren & Nanus Burt: Leaders, Harper and Row, 1995. Quoted in Anita Gujrati: Vision in Leadership, assignment paper of Master of Educational Management, 1999, Flinders University of South Australia, Australia, page 1.*
6. *Bhupinder Kumar Ahluwalia & Shashi Alhuwalia, B.R. Ambedkar And Human Rights 72 (Vivek Publishing Company 1981).*
7. *Braj Ranjan Mani, Debrahmanising History: Dominance and Resistance in Indian Society, New Delhi: Manohar, 2007, 136.*
8. *Braj Ranjan Mani, Debrahmanising History: Dominance and Resistance in Indian Society, New Delhi: Manohar, 2007, 251.*
9. *Burns J.M.: Leadership, Harper and Row, New York, 1978.*
10. *Challapalli Swaroopa Rani, "Dalit Feminist Literature and the influence of Ambedkar," in Dalit Voice, Hyderabad: Dalit Voice Publications, 2006, 16.*
11. *Challapalli Swaroopa Rani, "Dalit Women's Writing in Telugu," in Economic and Political Weekly, April 25, 1998, 21.*
12. *Char, S.V. Desika. "Caste, Religion and Country", New Delhi: Sangam Books, 1993.*
13. *Chatterjee, Partha (2004) The Politics of the Governed: Reflections on Popular Politics in Most of the World. New York: Columbia University Press.*
14. *Chatterjee, Partha (2011) Lineages of Political Society: Studies in Postcolonial Democracy Ranikhet: Permanent Black.*
15. *Chatterjee, Partha leaned: The Politics of the Governed, Permanent Black, New Delhi.*
16. *Chirakarode, Paul: Ambedkar: Boudhika VikshobhathinteAgnijwala, Dalit Books, Thiruvalla, 1993.*
17. *Chitkara, M.G. (2002), 'Dr. Ambedkar and Social Justice', A.P.H. Publishing Corporation, New Delhi.*
18. *Christophe Jaffrelot (2005), 'Dr. Ambedkar and Untouchability - Analysing and Fighting Caste', C. Hurst & Company Publishers, London.*
19. *Chistophe Jaffrelot, Ambedkar And The Uniform Civil Code, Outlook, http: // www .outlook india.com /article.aspx?221068 (March 7, 2013).*